ज्योति-विहग

[सौन्दर्य्य और संस्कृति के कवि पन्त]

परिदर्शक

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

सम्वत् २००८

मूल्य ५)

मुद्रक—रामप्रताप त्रिपाठी, सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी　　　　　　　　नवम्बर, सन् १९४२

कवि के अभीष्ट युग

की

भावी प्रजाओं

को

सस्नेह

भेंट

प्रकाशकीय

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प० शन्तिप्रिय द्विवेदी के 'ज्योति-विहग' का प्रकाशन एक सौभाग्यपूर्ण घटना है । हिन्दी-आलोचना के क्षेत्र मे आचार्य्य शुक्ल के अनन्तर श्री द्विवेदी जी का एक प्रमुख स्थान है। उनकी नीरव साहित्य-साधना ने पिछले दो दशको मे हिन्दी को कई अमूल्य रत्न प्रदान किये है। हिन्दी के विद्यार्थियो एव चिन्तको को उन्होंने नई प्रेरणाएँ दी है, और अपनी मनोमोहक किन्तु मौलिक शैली के भीतर वैज्ञानिक आलोचना का जो पथ उन्होने प्रशस्त किया है, उस पर उनके अनुगामियो की सख्या उत्तरोत्तर बढती जायगी।

आधुनिक हिन्दी-कविता-कामिनी के कान्त श्री सुमित्रानन्दन पन्त के प्रति श्री द्विवेदी जी की आस्था उनके नवयौवन के साथ ही उत्तरोत्तर घनीभूत होती गई है। वे इनके सर्वप्रिय कवि एव मर्मस्पर्शी कलाकार है। स्वभावत. अपनी अन्तर्मुखी साधना मे द्विवेदी जी ने पन्त के कवि का पाण्डित्य-पूर्ण अध्ययन एव परिशीलन किया है। पिछले दस-बारह वर्षो मे कवि ने अनेक करवटे बदली है, श्री द्विवेदी को बहुत समीप से इनके परिवर्तन को देखने और समझने की सुविधा मिली है। स्वभावत 'ज्योति-विहग' मे कवि पन्त के सर्वतोमुखी विकास का मार्मिक एव गभीर विवेचन है। हिन्दी के विद्यार्थियो एव चिन्तको को द्विवेदी जी के इस मार्मिक विवेचन से न केवल कविवर पन्त को समझने के लिए प्रत्युत् जीवन और साहित्य के सर्वांगीण अध्ययन के लिए भी अपूर्व सहायता मिलेगी। हमारा विश्वास है, हिन्दी मे 'पन्त' पर लिखी गई अब तक की रचनाओ मे 'ज्योतिविहग' सर्वश्रेष्ठ है, और हिन्दी जगत मे उसका यथेष्ट समादर होगा।

—साहित्य-मन्त्री

निवेदन

असतो मा सद् गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृत गमय ।

'ज्योति-विहग' मे ज्योति चेतना या प्रकाश का, विहग कवि या कलाकार का प्रतीक है । 'ज्योति-विहग' का कवि सचेतन कलाकार है, वह वाणी का वाहन हस है जो समतल (भूतल) पर भी सञ्चरण करता है और जीवन के ऊर्ध्वतल (नभोतल) पर भी ।

छायावाद-युग मे पन्त जी सौन्दर्य्यवादी थे, उसके बाद प्रगतिवादी, अब अध्यात्मवादी हैं । सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् मे उनका रचना-क्रम सुन्दरम्-शिवम्-सत्यम् है। किन्तु पन्त के सोन्दर्य्य, प्रगति और अध्यात्म मे अन्तर नही है, ये सब चेतना से अनुप्राणित होकर एक हो गये है। इनमे से किसी को भी ठीक-ठीक ग्रहण कर लेना सबको पा जाना है।

सन् '४४ मे जब पन्त जी दिल्ली मे रुग्ण-शय्या पर थे उस समय मै 'वीणा' (इन्दौर) मे था। तभी से पन्त जी की कृतियो पर यह पुस्तक लिखने का सकल्प मन-ही-मन चला आ रहा था। सोचा, इसे पन्त जी की पचासवी वर्ष-गाँठ (२० मई, सन् '१९५०) के शुभ अवसर पर उपस्थित कर कृतार्थ होऊँगा। किन्तु अपनी असमर्थता के कारण इसे यथासमय प्रस्तुत नही कर सका। फिर भी मुझे सन्तोष है कि विलम्ब के कारण पन्त जी की अब तक की सभी रचनाओ का समावेश इसमे हो गया है।

आशा है, सहृदय पाठको को पन्त जी की रचनाओ के माध्यम से जीवन और साहित्य के अध्ययन के लिए इस पुस्तक से विस्तृत क्षेत्र मिलेगा।

'ज्योति-विहग' मे मैंने व्यक्ति को नही, कवि को देखा है और उसे देखने के लिए दृष्ट के अनुरूप ही दृष्टिकोण दिया है। मैं कवि और पाठको के बीच एक सूत्रधार हूँ, इसीलिए कवि को यथासम्भव कवि के ही शब्दो (उद्धरणो) मे उपस्थित किया है, ताकि सभी रुचि के पाठको और समीक्षको को स्वय निर्णय करने मे सुविधा हो। इस दृष्टि से यह पुस्तक साहित्य की अब तक की समालोचना-शैली से सर्वथा भिन्न है। अपने आप मे यह एक मौलिक (बुनियादी) कृति है। मेरा प्रयत्न रचनात्मक है। वाणी की उपासना के लिए भविष्य मे इसी प्रकार का साहित्यानुशीलन स्वास्थ्यकर सिद्ध होगा।

यद्यपि पुस्तक मे मै तटस्थ हूँ, परिदर्शक हूँ, कवि का मौन सहचर हूँ, तथापि प्रसंग-वश अपना मन्तव्य भी यथास्थान व्यक्त कर दिया है। यन्त्रो और ग्रामोद्योगो के सम्बन्ध मे कवि से मेरा मतभेद हो गया है। मैं पूर्णत प्रकृतिवादी हूँ, यन्त्र-युग को किसी भी परिमाण मे स्वीकार नही करता।

इस बर्ब्बर-युग मे साहित्य-सृजन का कार्य्य सुगम नही है। जिन महानुभावो ने अपने दाक्षिण्य से मुझे उपकृत किया है, उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

श्रमजीवी मित्र श्रीकृष्ण दवे ने अपनी सुन्दर लिखावट से पुस्तक की प्रतिलिपि तैयार कर मेरा कार्य्य-भार हलका किया है, एतदर्थ साधुवाद।

साहित्य-जगत् के सौभाग्य से पन्त जी स्वस्थ और प्रसन्न मन से वीणापाणि की आराधना मे अनवरत तन्मय है। हमारी यही शुभकामना है, वरदा शारदा अपने इस वाणी-पुत्र के शोभन मस्तक पर अपने स्नेह-वत्सल अञ्चल की अमृत-छाया बनाये रखे।

श्री काशी,
मातृनवमी, सम्वत् २००८

शान्तिप्रिय द्विवेदी

विचार-सरणि पृष्ठ-संख्या

साकल्य : सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्

सुन्दरम् : छायावाद-युग

शिवम् : प्रगतिशील युग

सत्यम् : सांस्कृतिक युग

—०—

श्री सुमित्रानन्दन पन्त
जुलाई, सन् १९५१

साकल्य

[सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्]

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में बनता प्रणय अपार,
लोचनों में लावण्य अनूप,
लोक-सेवा में शिव अविकार।

—पन्त

शिल्पी

द्विवेदी-युग मे खडीबोली की रचना जब समतल-भूमि पर हो रही थी तब हिन्दी-कविता की कमनीयता के कवि का उदय देश के ऊर्ध्वतल हिमाचल के उदयाचल पर हो रहा था। प्रकृति की तरह ही शनैः शनैः उसका विकास हो रहा था। अपने सम्पूर्ण विकास के साथ उदयाचल के कवि पन्त का छायावाद में आविर्भाव हुआ; खडीबोली का प्रवाह वीचियो से पुलकित हो उठा, उसके तटो पर गिरिराज का प्राकृतिक वैभव खिल उठा। अपने जीवन के प्रभात मे कवि ने जगज्जननी से निवेदन किया था—

बना मधुर मेरा जीवन !
नव नव सुमनो से चुन चुन कर
धूलि, सुरभि, मधुरस, हिम-कण,
मेरे उर की मृदु कलिका मे
भर दे, कर दे विकसित मन।

('याचना'.'पल्लव')

कवि का मनोरथ सफल हुआ। 'धूलि, सुरभि, मधुरस, हिमकण' से सुनिर्म्मित उसके विकसित मन की सरस-सजीव सुषमा ही कविता मे साकार हो गयी।

पन्त ने शोभा-सुषमाशाली वनमाली की तरह काव्य-कला की रचना की है। छविकी उँगलियो से किरणों की डोरियो मे स्वप्नो की सुमनावलियो

को गूँथ कर उन्होने कविता का शृगार किया है। उनके शब्दो, भावो और छन्दो मे जीवन-शिल्पी की सुचारुता है। उनकी कलाकारिता अनुपमेय है। उसमे व्रजभाषा की सुघरता और खडीबोली की नागरिकता का अपूर्व समावेश है।

पन्त ने अपना कवि-परिचय एक शिल्पी के रूप मे ही दिया है—

निर्म्माण कर रहा हूँ जग का
मै जोड़ जोड़ मनुजो के मन,
मै काट काट कटु घृणा कलह
रचता आत्मा का मनोभवन।

खर-कोमल शब्दों को चुन चुन
मै लिखता जन-जन के मन पर—
मानव-आत्मा का खाद्य प्रेम,
जिस पर है जग-जीवन निर्भर।

मै जग-जीवन का शिल्पी हूँ
जीवित मेरी वाणी के स्वर,
जन मन के मास-खण्ड पर मै
मुद्रित करता हूँ सत्य अमर।

('युगवाणी')

छायावाद-युग मे पन्त ने कला और प्रकृति को सँवारा था, अब प्रगतिशील युग मे वे सस्कृति और मनुष्य को सँवार रहे हैं। उनके इस नव-निर्म्माण मे भी कला और प्रकृति का ही भावादर्श है। यों कहे कि 'जन-मन के मास-खण्ड पर' अथवा प्रगतिवाद के युग-पट पर वे छायावाद का चैतन्य लोक रच रहे है।

अपनी नूतन कृतियो में कवि की एकमात्र यही टेक, यही आकांक्षा, यही प्रेरणा है—

भू पर जन-सत्ता हो विकसित
अन्तर्जीवन से सम्बन्धित,
शिल्पी-सी चेतना जागरित
करे नव्य मानव मन निर्म्मित।
('स्वर्ण किरण')

कवि युग-स्रष्टा और द्रष्टा है। वह देख रहा है कि इस विकृत युग का रहन-सहन जीवन की शोभा से शून्य है। मनुष्य अपने जीवन का कलाकार नही बन सका है, वह अन्धकार मे निश्चेतन है। कवि मनुष्य के भीतर चेतना का प्रकाश देखना चाहता है—

शत सहस्र दीपो से भी, अह,
बन न सकेगा जन-पथ विस्तृत,
दीपशिखा कहती शिर धुन कर
जब तक होगा हृदय न ज्योतित।
('युगपथ')

सस्कृति और कला के लिए पन्त के हृदय मे बडी विकलता है, क्योंकि उसी से मनुष्य का मनोविकास हो सकता है, उसी से अन्त.प्रकाश मिल सकता है। इस मदान्ध युग की विडम्बना देख कर कवि का हृदय उच्छ्वसित हो उठा है—

जीवन-मन्दिर मे यन्त्रो की मृत्यु प्रतिष्ठित,
मानव के आसन पर दानव-मुख अभिषेकित!

प्रतिभा से आडम्बर, दर्प विनय से पूजित
सस्कृति, ज्ञान, कला कोने मे पडी उपेक्षित।
('स्वर्णकिरण')

हतभाग्य जगत के प्रति सवेदनशील कवि पन्त की चाँदनी-जैसी सुकरुण शुभ्र आत्मा के लिए भी यही कहा जा सकता है—

जग के दुख-दैन्य-शयन पर
वह रुग्णा जीवन-बाला
रे कब से जाग रही, वह
आँसू की नीरव माला!
('गुञ्जन')

युग-युग से कवि, जीवन का जो सौन्दर्य्य-शिल्प अपने अन्त करण मे सँजोता आया है उसे इस विध्वसप्राय युग के बाद आनेवाली नवोदित प्रजाओ मे सदेह देखने की आशा रखता है। कवि विनम्रतापूर्वक कहता है—

मै रे केवल उन्मन मधुकर
भरता शोभा-स्वप्निल गुञ्जन,
कल आयेगे उर-तरुण भृग
स्वर्णिम मधुकण करने वितरण।
('उत्तरा')

नव-निम्र्माण के लिए कवि की उत्कण्ठा, विकलता उसकी नयी रचनाओ मे देखी जा सकती है। 'उत्तरा' मे युग के ध्वस और निम्र्माण का उद्दीप्त चित्रण है। 'युगपथ' के 'रवीन्द्र कवीन्द्र के प्रति' शीर्षक कविता में युग का पीडन, कवि का उद्वेलन और जीवन का रचनात्मक निर्देशन तड़ित-मेघ की तरह ज्वलित-द्रवित है।

'पल्लव' में कवि ने कहा था—

अकेली सुन्दरता कल्याणि !
सकल ऐश्वर्य्यों की सन्धान।

सुन्दरता से कवि का अभिप्राय जीवन की अन्तर्बाह्य सुरम्यता से है। निष्काम कर्म्म की तरह सौन्दर्य्य मे ही कवि, जीवन की सम्पूर्ण सार्थकता मानता है; इसीलिए वह अब भी यही कहता है—

मै फूलो के कुल मे जनमा,
फल का हो मूल्य जगत के हित
उर-शोभा का दे अमर दान
मै झर, चरणो पर हूँ अर्पित
('उत्तरा')

कवि जीवन के सुख, श्री, सुषमा के निर्म्माण का गान गीत-विहग की तरह गा-गा कर युग की सन्ध्या और प्रभात को अपने कलरव से मुखरित करता आया है। हमारे कृतज्ञ हृदय का आभार कवि के ही इन शब्दो मे अपना उद्‌गार पा जाता है—

"सहज चुन चुन लघु, तृण, खर, पात,
नीड़ रच रच निशिदिन सायास,
छा दिये तूने शिल्पि-सुजात !
जगत की डाल-डाल मे वास !
... . .
रिक्त होते जब जब तरु-वास
रूप धर तू नव-नव तत्काल,

नित्य नादित रखता सोल्लास
विश्व के अक्षयवट की डाल।

. . . . . .

दूर वन के ओ राजकुमार!
अखिल उर उर मे तेरे गान,
मधुर इन गीतो से सुकुमार!
अमर मेरे जीवन औ' प्राण।"

कवि अपने जीवन की अर्द्ध शताब्दी को पार कर उसके उत्तर द्वार पर खड़ा है। जिस स्वर्ण युग को कवि मनोजगत में रचता आया है वह युग कल्पना को ही नही, कवि को भी पा जाय, यही शुभकामना है।

काशी,
२६-३-५०

हिन्दी-कविता का क्रम-विकास

गोकुल के गोरस मे पली-खिली व्रजभाषा कभी इस देश की कविता की भाषा थी। उसके नवनीत-स्निग्ध यौवन मे रसिक श्याम की वशी का माधुर्य्य था। उसमे ग्रामीण भारत के शोभा-सम्पन्न जीवन की ललित कला थी। वह मनुष्य और प्रकृति के स्वाभाविक सहयोग का युग था।

हमारे काव्य-साहित्य मे व्रजभाषा की रस-धारा १९ वी सदी तक अखण्ड बहती रही। यातायात की सुविधा बढ जाने से जब इस देश मे भी औद्योगिक क्रान्ति का प्रवेश हुआ तब व्रजभाषा के मधुर प्रवाह मे रस-विक्षेप हुआ। देखते-देखते औद्योगिक युग ने व्रजभाषा को ही नही, बल्कि सम्पूर्ण विश्व-जीवन को कुम्भज की भॉति सोख लिया।

खड़ीबोली

औद्योगिक क्रान्ति बीसवी सदी के साथ आयी। हमारे साहित्य मे यह खड़ी बोली का युग है। इस युग के आरम्भ मे व्रजभाषा का विरोध उसके शृगारिक भावो के कारण हुआ। द्विवेदी जी द्वारा सम्पादित 'सरस्वती' मे व्रजभाषा की शृगारिक रचनाओ पर कई व्यग्य-चित्र प्रकाशित हुए।

द्विवेदीजी ने उस समय की 'सरस्वती' मे प्रकाशित खडीबोली की कविताओ का एक प्रतिनिधि-संग्रह 'कविता-कलाप' नाम से प्रकाशित कराया था। इस सग्रह मे इन पॉच कवियो की कविताएँ सगृहीत है:—(१) राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', (२) पण्डित नाथूराम 'शंकर' शर्मा, (३)

पण्डित कामताप्रसाद गुरु, (४) बाबू मैथिलीशरण गुप्त, (५) पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी। भूमिका मे द्विवेदीजी ने लिखा है—

"इस पुस्तक की अधिकांश कविताएँ बोलचाल की भाषा मे है। कितने ही छन्द भी ऐसे है जिनका आजकल की हिन्दी-कविता मे बहुत कम प्रयोग होता है। किसी-किसी की राय है कि बोलचाल की भाषा मे अच्छी कविता नही हो सकती, और कुछ विशेष प्रकार के छन्दो को छोड कर और छन्दो का प्रयोग करने से कविता का माधुर्य जाता रहता है। क्योकि, उनकी समझ मे, बिना शब्दो को तोडे-मरोड़े ऐसे छन्द बन ही नही सकते। ये बाते कहाँ तक सत्य है, इसके विचार का भार हम कविता पर सम्मति देने के अधिकारी सज्जनों पर छोडते है। हम अपनी तरफ से कुछ नही कहना चाहते। हाँ, इतना हम अवश्य कहेगे कि इस पुस्तक मे जितनी कविताएँ बोलचाल की भाषा मे है, उनमे शब्दो का अंग-भंग बहुत कम हुआ है। इस नये ढग की कविताएँ 'सरस्वती' मे प्रकाशित होते देख बहुत लोग अब इनकी नकल अधिकता से करने लगे है। यह इस बात का प्रमाण है कि इस तरह की भाषा और इस तरह के छन्दो मे लिखी गई कविता दिन पर दिन लोगो को अधिकाधिक पसन्द आने लगी है। अतएव बहुत सम्भव है कि किसी समय हिन्दी के गद्य और पद्य की भाषा एक ही हो जाय। तथास्तु।"—(२ फरवरी, १९०९)।

'कविता-कलाप' की रचनाओ को देखने से ज्ञात होता है कि द्विवेदी जी ने व्रजभाषा के प्रतिकूल खडीबोली को भाषा और भाव के जिस आधार पर प्रतिष्ठित करना चाहा था, वह आधार प्रारम्भिक प्रयास के कारण पुष्ट नही हो सका था। राय देवीप्रसाद को छोड कर अन्य कवियो ने खड़ीबोली का व्यक्तित्त्व स्थापित करने का प्रयत्न अवश्य किया था, किन्तु उनकी भाषा मे ग्राम्य संस्कार बना हुआ था। खड़ीबोली के प्रतिनिधि-कवि गुप्त जी की तत्कालीन कविताओ मे भी अनेक अविकच

शब्द-प्रयोग है। वास्तव मे उस समय २० वी सदी के नही, १९ वी सदी के ही सामाजिक जन खडीबोली मे कविता कर रहे थे, वे अपने अतीत से सम्बद्ध थे, अतएव उनकी भाषा मे लोक-सामान्य शब्दो का भी स्वल्प सयोग हो गया था। इतने ही अश मे खडीबोली बोलचाल के निकट थी। स्वय खडीबोली के आचार्य्य द्विवेदी जी भी खडीबोली को सर्वथा बोलचाल की भाषा नही बना सके। उनकी रचनाओ मे (विशेषत. गद्य मे) सस्कृत, हिन्दी और उर्दू शब्दो का सम्मिश्रण है।

खडीबोली मुख्यतः संस्कृत के सहयोग से भाषा का सम्बल ले रही थी। आगे चल कर भाषा का विवाद सस्कृत के शब्द-क्षेत्र मे चला गया। 'अस्थिरता' और 'अनस्थिरता' का मतभेद उस समय की भाषा-सम्बन्धी सजगता का द्योतक है।

व्रजभाषा के स्थान पर खडीबोली के आ जाने पर भी भाषा के बाद भावो मे कोई विशेष परिवर्त्तन नही हुआ। व्रजभाषा की जिस शृंगारिकता को अवाञ्छनीय समझा जाता था, वह शृगारिकता 'कविता-कलाप' मे भी वर्त्तमान है। प० नाथूराम 'शकर' शर्मा की 'केरल की तारा' और 'वसन्त-सेना' मे तो शृगाररस बहुत ही उत्तेजक हो गया है। यत्र-तत्र गुप्त जी ने भी सुन्दरी नायिकाओ के रूप-वर्णन मे रसिकता का परिचय दिया है। शृगार जीवन का मूलरस है, रसराज है, साहित्य मे भी उसकी उपेक्षा नही की जा सकती।

खड़ीबोली मे भाषा और भाव के परिवर्त्तन का जो आन्दोलन हो रहा था वह युग-विपर्य्यय का सूचक था। जाने-अनजाने हमारे जीवन पर मशीनी युग (औद्योगिक क्रान्ति) का प्रभाव पडने लगा था। प्रथम विश्व-युद्ध के पहले वह प्रभाव हमारे साहित्यिको के सामने स्पष्ट नही हो सका था। (अब इतने वर्षो मे स्पष्ट ही नही, असह्य भी हो गया है)। प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति पर गुप्त जी का ध्यान यान्त्रिक युग की

विभीषिका की ओर गया। 'विश्व-वेदना' में उन्होंने इस कृत्रिम युग की निरर्थक प्रगति पर दृष्टिपात किया है—

छोड कर वह त्रेता युग दूर,
आज हम बढ आये भरपूर।

. . . . . .

गगन मे गति-गृह बने विमान,
जलधि मे दुर्ग-सदृश जलयान।
भूमि पर होता है यह भान—
लोह-पथ पर पुर का प्रस्थान!
भ्रमण ही बढा, मिटी क्या श्रान्ति?
हुई यह कैसी उलटी क्रान्ति!

. . . . .

प्रगति मे यति का नाम नही,
धरा है, धन है, धाम नही!
शयन मे भी विश्राम नही,
और पूछो तो काम नही!
धन्य यह श्रम-साहस इतना!
किन्तु जीवन मे रस कितना?

द्विवेदी-युग में एक ओर व्रजभाषा से खड़ीबोली का द्वन्द्व चल रहा था, दूसरी ओर खडीबोली में उसी कला और संस्कृति का संरक्षण किया जा रहा था जो व्रजभाषा मे थी। जिस यान्त्रिक युग ने हमारे जीवन की तरह ही सस्कृति और कला का अपहरण और शोषण किया, उसी से लोहा लेने के लिए हम साहित्य में खड़ीबोली का आश्रय ले रहे थे, और आधुनिक शिक्षित अग्रेजी का। जीवन में रस और भाव का अभाव होता जा रहा

था, मशीनी युग शस्य-श्यामल देश के कवित्त्व को लुप्त कर सब को गद्य की ओर खीच रहा था। नैसर्गिक जीवन पर कृत्रिम दबाव पड़ने के कारण खडीबोली मे प्रतिरोध की शक्ति आ गई, वह मशीनी युग की ओजस्विनी भाषा बन गयी।

खडीबोली द्वारा हिन्दी-साहित्य ने राजनीतिक युग मे प्रवेश किया। आधुनिक युग के द्वार पर खडे होने पर भी साहित्य का सांस्कृतिक रुख मध्ययुग की ओर था, किन्तु व्रजभाषा की तुलना में कविता में नवीनता उत्पन्न करने के लिए हमारे पास नये आलम्बनो का अभाव था। इसी साहित्यिक अकाल के युग मे खडीबोली को राजा रवि वर्म्मा के कथाचित्रो का आधार मिला। 'कविता-कलाप' की रचनाओ मे उन्ही चित्रो का परिचय है, पाठशाला की सचित्र वर्णमाला की तरह खडीबोली का चित्रपाठ है।

ज्यो-ज्यो देश-काल का प्रभाव जीवन पर प्रतिफलित होने लगा, त्यो-त्यो खड़ीबोली को सामयिक जगत् से भी प्रेरणाएँ मिलने लगी। स्वराज्य, स्वदेशी और भारतीय सस्कृति के आन्दोलनो से खड़ीबोली का काव्य-क्षेत्र विस्तृत हुआ। गुप्तजी की 'भारत-भारती' से खडीबोली का भण्डार भरा।

प्रारम्भ मे व्रजभाषा के काव्य-प्रेमियो की ओर से खडीबोली को भी कटूक्तियाँ मिली, क्योकि उसकी खड़खडाहट मे मधुरता नही थी। क्रमशः खड़ीबोली मे काव्यत्त्व आता गया। 'कविता-कलाप' के बाद द्विवेदी-युग के द्वितीय चरण के प्रतिनिधि कवि ये है—(१) प० महावीरप्रसाद द्विवेदी, (२) प० श्रीधर पाठक, (३) प० अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', (४) बा० मैथिलीशरण गुप्त।

द्विवेदी जी का महत्त्व कवि से अधिक खड़ीबोली के युगप्रवर्त्तक के रूप मे है। उनका काव्य-दायित्त्व गुप्त जी ने सँभाला। खडीबोली का सशक्त व्यक्तित्त्व स्थापित करने का श्रेय गुप्त जी को है। द्विवेदी जी की

साहित्यिक प्रेरणाओ के वास्तविक प्रतिनिधि गुप्त जी ही है; खडीबोली के अन्य प्रतिनिधि-कवि स्वत प्रेरित है, उन पर द्विवेदी जी का प्रभाव नही।

द्विवेदी-युग मे जब खड़ीबोली की कविता का आरम्भ हुआ तब कुछ महानुभावो को उसका भविष्य सन्दिग्ध जान पडता था। प० बालकृष्ण भट्ट ने लिखा था—"खडीबोली मे एक इस प्रकार का कर्कशपन है कि कविता के काम मे ला उसमे सरसता सम्पादन करना प्रतिभावान् के लिए भी कठिन है, तब तुकबन्दी करनेवालो की कौन कहे!"

किन्तु पाठक जी और उपाध्याय जी की कृतियो से द्विवेदी-युग मे ही यह सिद्ध हो गया कि खड़ीबोली मे भी सरसता सम्भव है। उपाध्याय जी ने अपने 'प्रिय-प्रवास' की भूमिका मे लिखा है—"पदावली की कान्तता, मधुरता, कोमलता केवल पदावली मे ही सन्निहित है, या उसका कुछ सम्बन्ध मनुष्य के सस्कार और उसके हृदय से भी है? मेरा विचार है कि उसका कुछ सम्बन्ध नही, वरन बहुत कुछ सम्बन्ध मनुष्य के सस्कार और उसके हृदय से है।" इस दृष्टि से, बिना सामाजिक सम्पर्क के भी, हम काव्य मे कवि के स्वभाव को देख सकते है, वह कितना रूक्ष है, कितना सहृदय!

द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि-कवि

खड़ीबोली मे गुप्त जी संस्कृत की शालीनता और बुन्देलखण्ड की ओजस्विता लेकर आये थे। उनकी भाषा में आर्य्य नागरिकता है, उससे हृदय को उत्साह मिलता है। गुप्त जी का बॅगला से भी काव्य-साहचर्य्य है, किन्तु उनकी भाषा और शैली पर बॅगला का प्रभाव नही पड़ा।

गुप्त जी भावुक नही, उद्भावक है। किसी स्थूल आधार पर ही वे यथाप्रसंग भाव का आविर्भाव कर सकते है। इसीलिए, मुक्तक कविताओ मे जहॉ भाव और आलम्बन दोनो में स्वालम्बन की आवश्यकता पड़ती है, वहॉ उनकी कविता निरवलम्ब हो जाती है, कुछ पक्तियो के बाद भाव

आगे अग्रसर नही हो पाता, रूपक-द्वारा वे मूलभाव का ही स्पष्टीकरण करने लगते है। 'हिन्दू' की भूमिका मे गुप्त जी लिखते है—"यदि हम किसी निबन्ध की एक-एक पक्ति मे रस की खोज करने लगेगे तो काव्यो की तो बात ही क्या, महाकाव्यो को भी अपना स्थान छोड़ना पड़ेगा। एक-एक पत्ते मे फूल खोजने की चेष्टा व्यर्थ होगी और ऐसे फूलो का कोई मूल्य भी न रह जायगा। फूल के साथ पत्ती भी रहती ही है और सच पूछिये तो पत्तियो के बीच मे ही वह खिलता है।"

गुप्त जी का यह विचार वस्तु-काव्य पर ही चरितार्थ हो सकता है। वे कथाकाव्य के कवि है। प्रबन्ध-कवि और राष्ट्रकवि का गौरव उनकी कृतविद्यता के अनुरूप है। उनकी मौलिक और अनूदित कृतियो से खड़ीबोली का काव्य-साहित्य प्रशस्त हुआ है।

पाठक जी और उपाध्याय जी खडीबोली मे मानसिक प्रवासी थे। उनका हृदय व्रजवासी था।

उपाध्याय जी ने सस्कृत की शाद्वलता और ठेठ मानव की स्वाभाविक सरलता लेकर 'प्रिय-प्रवास' की रचना की थी। उसमे गाम्भीर्य और सारल्य का मनोहर समन्वय है, किसी माया-मोह-मुग्ध गृहस्थ के भक्तहृदय-जैसा।

द्विवेदी-युग मे उपाध्याय जी खड़ीबोली के वे सर्वप्रथम कवि है, जिन्होने भाषा और भाव के कला-पक्ष पर बडी सूक्ष्मदर्शिता से विचार किया। 'प्रिय-प्रवास' की भूमिका मे उनकी काव्य-मर्म्मज्ञता देखी जा सकती है। उपाध्याय जी ने गहन-से-गहन और सुगम-से-सुगम भाषा की शब्द-साधना की। 'प्रिय-प्रवास' की सस्कृतप्राय पदावली के बाद उन्होने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' तथा 'चोखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे' मे बोलचाल की भाषा को सुलभ कर दिया। व्रजभाषा मे भी उन्होने कविताएँ लिखी, किन्तु उनका कवित्व 'प्रिय-प्रवास' मे ही मनोहारी है; यथा—

रूपोद्यान-प्रफुल्ल-प्राय-कलिका राकेन्दु-बिम्बानना।
तन्वंगी कल-हासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला-पुत्तली।
शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि-सी लावण्य-लीला-मयी।
श्रीराधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य्य की मूर्त्ति थी।

उपाध्याय जी ने भाव को चित्र-भाषा देकर खड़ीबोली को सजीव किया था। यत्र-तत्र ध्वनि, वातावरण और गति को भी उन्होंने बड़ी सजीवता से मूर्त्तिमान् कर दिया है—

अचल के शिखरों पर जा चढ़ी
किरण पादप-शीश-विहारिणी ।
तरणि-बिम्ब तिरोहित हो चला
गगन-मण्डल-मध्य शनैः-शनैः ।

ध्वनिमयी करके गिरि-कन्दरा,
कलित कानन, केलि-निकुञ्ज को
बज उठी मुरली इस काल ही
तरणिजा-तट-राजित कुञ्ज को।

क्वणित मञ्जु विषाण हुए कई,
रणित शृंग हुए बहु साथ ही ।
फिर समाहित-प्रान्तर-भाग में
सुन पड़ा स्वर धावित-धेनु का ।

ककुभ-शोभित गोरज बीच से
निकलते ब्रजवल्लभ यों लसे,
कदन ज्यों करके दिशि-कालिमा
विलसता नभ में नलिनीश है ।

('प्रिय-प्रवास', प्रथम सर्ग)

ऊपर गौओं और गोपों के साथ गोचारण करके लौटते हुए मुरली-मनोहर गोपाल का गोधूलि-समारोह है ।

नीचे पावस की एक चित्ररेखा : विद्युल्लेखा—

नवप्रभा परमोज्ज्वल लीक-सी
गतिमती कुटिला फणिनी-समा
दमकती दुरती घन-अंक में
विपुल केलि-कला-खनि दामिनी ।

(द्वादश सर्ग)

उपाध्याय जी प्राचीन रुचि के कवि थे, पाठक जी आधुनिक रुचि के । पाठक जी ने अंग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के खण्डकाव्यों का अनुवाद किया था । इतने अंश में हिन्दी की अपेक्षा आधुनिक होते हुए भी वे भाषा की दृष्टि से द्विवेदी-युग के पीछे के कवि थे । उनकी भाषा परम एकदेशीय है । अपने एक लेख में उन्होंने लिखा था, "भाषा के शील-संरक्षण की दृष्टि से पद्य लिखने में आवश्यकतानुसार बोलने की रीति अवलम्बन करने से कोई आपत्ति तो नहीं उपस्थित होती ।"

पाठक जी पुरानी भाषा (प्रायः व्रजभाषा) को नयी लयदारी दे रहे थे । लोक-प्रचलित भाषा की तरह ही उनके छन्द भी लोकगीतों के हैं । शायद वे संगीत के कलाकार थे । गीत-काव्य की मञ्जुल कोमलता उनके छन्दों और भावों में है—

'प्रेम-गुंज सुनाउ मधुकर, प्रेम-द्वन्द मचाउ ।'

पाठक जी ने अतुकान्त रचना ('सान्ध्य अटन') भी की है, किन्तु संगीत से बाहर उनके स्वाभाविक कवित्त्व का परिचय नहीं मिलता ।

पाठक जी ने पुरानी भाषा को नयी लय ही नही दी, नये भाव भी दिये । गुप्त जी प्राचीन कथाओं और राष्ट्रीय जागृति से प्रभावित थे, उपाध्याय जी

और पाठक जी प्रकृति की सुषमा से। प्रकृति से ही द्विवेदी-युग की कविता को नये भाव मिले।

प्रकृति के प्रति पाठक जी का अनुराग उनकी 'काश्मीर-सुषमा' मे देखा जा सकता है। उनकी स्वदेश-वन्दना मे भी राष्ट्रीय भारत 'सुललित प्रकृति-नटी का टीका' है। द्विवेदी-युग के अन्य कवियो मे प्रकृति-चित्रण आयास-प्रयास से अलकृत है, किन्तु पाठक जी के प्राकृतिक चित्रण मे उनके मुग्ध-हृदय के सहज-निःसृत भाव है, स्वाभाविकता ही इनका शृगार है—

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति,
पल-पल पलटति भेस छनिक छबि छिन-छिन धारति,
विमल-अम्बु-सर-मुकुरन महँ मुख-बिम्ब निहारति,
अपनी छबि पै मोहि आप ही तन-मन वारति।

('काश्मीर-सुषमा')

पाठक जी की कविताओ से प्रभावित होकर द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' मे 'श्रीधराष्टक' लिखा था। ऐसा जान पड़ता है कि खडीबोली की प्रतिष्ठापना हो जाने पर भी द्विवेदी जी का हृदय संतृप्त नही था, श्रीधर पाठक की रचनाओं से उनके अतृप्त हृदय को रस-तृप्ति मिली। पाठक जी की भाषा बोलचाल की थी, किन्तु वह शुद्ध खडीबोली नही थी। खडीबोली के प्रतिष्ठाता द्विवेदी जी ने पाठक जी को अपनी प्रणति देकर प्रकारान्तर से व्रजभाषा की सरसता को अपनी स्वीकृति दी।

खडीबोली के निजी व्यक्तित्त्व मे ही जिस रस और भाव की अपेक्षा थी, वह द्विवेदी-युग के बाद छायावाद-युग मे मिला। इसी युग मे गुप्त जी ने मर्म्मस्पर्शी भाव-गीत लिखे—'साकेत' (नवम सर्ग), 'कुणाल' और 'यशोधरा' के गीत। 'यशोधरा' मे यत्र तत्र बड़ी सूक्ष्म भाव-व्यञ्जना है, भाषा और शैली में छायावाद का लालित्य भी—

फलों पर पद रख, कूलो पर रच लहरो से लास,
मन्द पवन के स्यन्दन पर चढ़ बढ़ आया सविलास।
भाग्य ने अवसर पाया री !
मरण सुन्दर बन आया री !

गुप्त जी अपनी सांस्कृतिक श्रद्धा के कारण अन्तर्मुख कवि है। छाया-वाद का अतीन्द्रिय जगत् उनकी काव्य-चेतना मे भी संस्थित है। उनकी कृतियो मे जो अन्तर्मुखी वृत्ति है वह काव्य की अन्तरग कला मे भी रम कर रमणीय हो गयी है। 'द्वापर', 'कुणाल', 'यशोधरा' के कथावन्ध, सलाप और रसोद्रेक मे उनकी बारीक कलाकारिता का परिचय मिलता है। पहिले की कृतियो मे भी उनकी काव्य-चारुता देखी जा सकती है।

विविध विपुल कृतियो के कृती गुप्त जी खडीबोली के प्रेरणा-केन्द्र हे। उनके शब्दो, छन्दो और उद्‌गारो से छायावाद के कवियो को भी खडी-बोली का आरम्भिक सस्कार मिला है।

गुप्त जी की कृतियो से खडीबोली को ओज, उपाध्याय जी और पाठक जी की कविताओ से माधुर्य्य मिला था। ओज और माधुर्य्य राम-काव्य और कृष्ण-काव्य के पर्य्याय हे, एक मे नीति प्रधान है, दूसरे मे अनुभूति प्रधान। एक में लोकव्यञ्जना है, दूसरे मे आत्मव्यञ्जना।

द्विवेदी-युग के बाद छायावाद ने गुप्त जी की रचनाओ से खड़ीबोली को रीति-नीति और माधुर्य्य-भाव से आत्मानुभूति लेकर कविता के एक नये कला-युग मे प्रवेश किया।

छायावाद-युग

द्विवेदी-युग खडीबोली का स्थापत्य-युग था, छायावाद ललित-युग। व्रजभाषा के बाद छायावाद-द्वारा एक बार फिर हिन्दी-कविता मे कला का युग आया। छायावाद खडीबोली का कला-युग है।

आश्चर्य्य होता है कि यन्त्र-प्रखर युग मे छायावाद का आविर्भाव और प्रसार कैसे हो गया !—

विज्ञान की चरम उन्नति हो जाने पर भी यन्त्रो से हमारा नित्य जीवन विचलित नही हो सका था। देश मे मध्यकालीन वैभव शेष था, इसीलिए सामन्तवाद के साथ-साथ पूँजीवाद भी फल-फूल रहा था। अनवरत शोषण होते हुए भी प्रकृति और सस्कृति की उर्व्वरता सर्वथा नष्ट नही हो गई थी, भारत दूसरे देशों को जिला कर जी रहा था, आज की तरह मोहताज नही था। रवि ठाकुर की इन पक्तियो मे उसी विश्वम्भर भारत का परिचय मिलता है—

प्रथम प्रभात उदित तव गगने
प्रथम साम-रव तव तपोवने
प्रथम प्रचारित तव वन-भवने
ज्ञान-धर्म्म कत पुण्य-काहिनी
अयि भुवन-मनोमोहिनी !

चिर-कल्याण-मयि तुमि धन्य
देश-विदेशे बितरिछ अन्न
जाह्नवी यमुना विगलित करुणा
[illegible]
अयि [illegible] !

इसके पहिले कि यन्त्रयुग हमारे जीवन को ग्रस ले, भारत की अरण्य-आत्मा (सन् '२० मे) महात्मा गान्धी का तापस व्यक्तित्त्व पा गयी। उन्होने प्रकृति, सस्कृति और कला की मूल-भूमि (कृषि-भूमि) को कुटीर-शिल्प से स्वावलम्बी बनाने का प्रयत्न किया। साहित्य मे रवीन्द्रनाथ के

भाव-योग से और जीवन मे गान्धीजी के कर्म्म-योग से छायावाद को अपने विकास के लिए अनुकूल वातावरण मिला।

छायावाद हिन्दी मे रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से आया। बँगला मे छायावाद कृष्ण-काव्य के भीतर से अपनी स्वर-साधना कर रहा था। बीसवी सदी मे हम ब्रजभाषा के जिस भाव-जगत् को छोड़ रहे थे, १९ वी सदी मे कविगुरु रवीन्द्रनाथ उसी को 'भानुसिह पदावली' मे नूतन लय से रच रहे थे। अग्रेजी के प्रवन्ध-काव्यो से प्रेरित माइकेल मधुसूदन की रचनाओं का प्रभाव उन पर नही पडा, वे अपने किशोर कण्ठ से 'ब्रजबुलि' मे छायावाद का रस-मधुर हृदय मुखरित कर रहे थे। उस समय लोग उन्हे 'तुतला कवि' कहते थे।

बँगला मे छायावाद गीतिकाव्य का पुनरुत्थान है। वयस्क होने पर रवीन्द्रनाथ का भी काव्य-साहचर्य्य अग्रेजी से हुआ। अपनी भाव-प्रधान रुचि के कारण वे अग्रेजी के नव-प्रवर्त्तक कवियो की रचनाओ से प्रभावित हुए। उनकी भाषा, शैली, सगीत और भावो मे आग्लद्युति आ गयी। लोग उन्हे बगाल का 'शेली' कहने लगे।

कविता की आग्ल अभिव्यक्तियो को अपना कर भी रवीन्द्रनाथ अपने अत.करण में कृष्णोपासक वैष्णव थे। कवि कहता है—'अब भी मेरे हृदय-कुञ्ज मे राधा नित रोती है।' 'गीताञ्जलि' मे भी उनका वैष्णव-हृदय है, शान्त रस मे। कृष्ण-काव्य के बाद रवीन्द्रनाथ को हिन्दी के सन्त-काव्य (मुख्यत कबीर-काव्य) का आत्मयोग मिला था। किन्तु सन्त-काव्य से उन्होने उसका आध्यात्मिक श्रृंगार ही लिया, इसीलिए उनकी रचनाओ में ज्ञान की गरिष्ठता नही, गान की तरलता है। रवीन्द्रनाथ को जहा कही भी जीवन की रस-माधुरी मिली उसे उन्होने मधुकर की तरह संकलित कर लिया। लोकगीतो (बंगाल के बाउल-गीतों) से भी उनके अनुरागी हृदय ने भाव और रस पाया।

जिस समय बगाल मे रवीन्द्रनाथ की रचनाओ से छायावाद का आधिपत्य स्थापित हो गया था, उस समय हिन्दी मे 'कविता-कलाप' का युग था, राजा रवि वर्म्मा के चित्रो का युग ।

रवीन्द्रनाथ ने राजा रवि वर्म्मा के चित्रो की समालोचना की। उनकी समालोचना हमारे सामने नही है, लेकिन उनकी कविताओ से ही हम अनुमान कर सकते है कि कला में वे भावात्मा का दर्शन करना चाहते थे, चित्र मे कविता की तरह रग और रेखाओ की तुकबन्दी नही। वे कला को रूढियों से अवकाश (स्पेस) देकर उसमे कलाकार का आत्मविकास देखना चाहते थे। इसी जागृत दृष्टिकोण के कारण उन्होने सगीत की भी मुक्त साधना की। वे इस अर्थ मे रोमैन्टिक थे कि कुछ गमलो (सीमित नियमो या रूढियो) मे ही उनका प्राकृतिक विकास अवरुद्ध नही हो गया था।

राजा रवि वर्म्मा के बाद बगाल मे श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की चित्रकला का आविर्भाव हुआ। यह नयी काव्य-कला की तरह नयी चित्र-कला थी। भारतीय कण्ठ मे नव्य संगीत की तरह भारतीय रूप, रग, रेखाओ मे ही यह नूतन चित्रकला है। छायावाद के गीतिकाव्य मे कृष्ण-काव्य की तरह ठाकुर-शैली के चित्रो मे अजन्ता की चित्रकला का सस्पर्श है। अजन्ता और ठाकुर-शैली के चिंत्रो मे कलाकार केवल चित्रक नही, बल्कि कल्पक भी है । उसमे कलाकारो का हार्दिक उन्मेष है ।

द्विवेदी-युग और छायावाद-युग की कविता मे जिन चित्र-कलाओं का अन्तर है, वे इन पक्तियो से स्पष्ट हो जाती है—

> निसर्ग ने, सौरभ ने, पराग ने
> प्रदान की थी अति कान्त भाव से
> वसुन्धरा को, पिक को, मिलिन्द को
> मनोज्ञता, मादकता, मदान्धता ।
>
> ('प्रिय–प्रवास')

घने लहरे रेशम के बाल—
धरा है सिर में मैंने देवि !
तुम्हारा यह स्वर्गिक शृंगार,
स्वर्ण का सुरभित भार !

मलिन्दों से उलझी गुञ्जार,
मृणालो से मृदु तार;
मेघ से सन्ध्या का ससार
वारि से ऊर्म्मि-उभार;

—मिले है इन्हें विविध उपहार,
तरुण-तम से विस्तार ।
(पन्त : 'पल्लव')

इन दोनो चित्रों की कला-परम्परा एक है, दोनों अजन्ता और ठाकुर-युग की तरह अभिन्न (रवि वर्म्मा से भिन्न) हैं; अन्तर शैली और उपादान मे है ।

व्रजभाषा की अपेक्षा द्विवेदी-युग मे तथा द्विवेदी-युग की अपेक्षा छायावाद में भाषा, भाव, छन्द और शैली का समयोचित विकास हुआ। व्रजभाषा मे व्यक्ति की प्रधानता थी, द्विवेदी-युग मे समाज की, छायावाद में प्रकृति की। छायावाद मे व्रजभाषा के माधुर्य्य, खडीबोली के ओज और प्रकृति की अतीन्द्रिय अनुभूति का समन्वय है। छायावाद की कविता सदेह भी है और अदेह भी —

वहे है, वह नही, अनिर्वच,
जग उसमे, वह जग मे लय,

साकार चेतना-सी वह,
जिसमे अचेत जीवाशय ।
(पन्त : 'चाँदनी')

छायावाद के भाव मनसिज है। उसमे दर्शन और निर्गुण रहस्यवाद की शुष्कता नही, निःशरीर अनगअप्सरी (सौन्दर्य्य-भावना) की सरसता, मधुरता है ।

छायावाद मे काव्य का एक जीवन्त दृष्टिकोण भी है और शैली-गत दृष्टिकोण भी। जीवन की दृष्टि से उसमे प्राणचेतना का आत्मविकास (सूक्ष्म मनोविकास) है, शैली की दृष्टि से छायाभास। जैसी उसकी अनुभूति है वैसी ही उसकी अभिव्यक्ति भी। अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनो प्रकाश और छाया, चेतना और माया, आत्मा और शरीर की तरह सम्बद्ध है। कवि के शब्दो मे—

मुझको लगता,
मन मे जगता,
यह छायाभा है अविच्छिन्न,
यह आँखमिचौनी चिर सुन्दर,
सुख-दुख के इन्द्रधनुष रगो की
स्वप्न-सृष्टि अज्ञेय अमर !
('स्वर्णकिरण')

विरोध और विकास

द्विवेदी-युग के अनेक महारथियो ने (स्वयं द्विवेदी जी ने भी) व्रजभाषा की तरह ही छायावाद का भी विरोध किया। व्रजभाषा और खड़ीबोली मे प्रतिद्वन्द्विता थी, किन्तु दोनो युगो के रूढि-ग्रस्त महानुभाव छायावाद के विरोध मे साथ थे। उन्होंने छायावाद को 'सजनी-वाद' कहकर उसका उपहास

किया। निःसन्देह व्रजभाषा और छायावाद मे सखीत्त्व है। दोनों की पयोधरा वसुन्धरा मधुरा है ।

व्रजभाषा की कोमलता और मधुरता मे एक युग का अपना स्वतन्त्र स्थान है, उसमे यन्त्र-पूर्व युग का भाव-वैभव है । वही भाव-वैभव छायावाद मे भी है । व्रजभाषा और छायावाद एक ही नैसर्गिक युग मे है, दोनो मे मूलगत साम्य है । किन्तु छायावाद के कई कवियो ने भी कविता की बाह्य रीति-नीति की दृष्टि से द्विवेदी-युग के सुर मे व्रजभाषा का विरोध किया, जब कि स्वयं उन्हे भी खडीबोली के उस गद्य-युग का कोप-भाजन बनना पडा ।

'पल्लव' के 'प्रवेश' मे पन्त जी ने कविता की भाषा और कला के प्रसंग मे व्रजभाषा पर भी दृष्टिपात किया है । पन्त का असन्तोष व्रजभाषा के वीभत्स शृगार और सकीर्ण अलकार से था । मध्ययुग के अन्त प्राण कवियो के लिए पन्त के हृदय मे सम्मान है, इसीलिए 'नक्षत्र' को उन्होने इन शब्दो मे सम्बोधित किया है—

सूर-सिन्धु, तुलसी के मानस !
मीरा के उल्लास अजान !

उनकी 'स्मृति' मे कृष्ण-काव्य के सौन्दर्य्य और सगीत का पवित्र चित्र है—

रूप का राशि-राशि वह रास,
दृगो की यमुना श्याम,
तुम्हारे स्वर का वेणु-विलास,
हृदय का वृन्दा-धाम ।
('पल्लव')

व्रजभाषा और छायावाद मे कला के बहिरंग और अन्तरंग का अन्तर पड़ गया था ।

व्रजभाषा मे कलाकारिता का आतिशय्य हो गया था, कविता अति अलकृता हो गयी थी, जो शोभा के ही भार से दबी हुई थी वह आभरणो का भार कैसे वहन कर पाती ! कविता को शक्ति देने के लिए द्विवेदी-युग खडीबोली का पौरुष लेकर आया। छायावाद ने उस पौरुष मे अर्द्ध-नारीश्वर के नारी-अश की स्नेह-स्निग्ध सहृदयता का रसोद्रेक कर काव्य मे व्रजभाषा की [illegible] बनाये रखी। उसने कृत्रिम अलकारिता के भार से मुक्त कर तन्वगी कविता को उसी के अनुरूप कला की सूक्ष्म व्यञ्जना दे दी।

छायावाद के कविगुरु रवीन्द्रनाथ की सूक्ष्म काव्य-कला का बगाल मे भी बहुत विरोध हुआ था। सन् १९१३ मे 'गीताञ्जलि' पर नोबुल-पुरस्कार मिल जाने पर विरोधियो का विरोध शान्त हो गया; कवि के सम्मान में उन्हे अपना जातीय स्वाभिमान मिला।

नोबुल-पुरस्कार मिलने के बाद रवीन्द्रनाथ का प्रभाव सम्पूर्ण भारतीय साहित्य पर पड़ने लगा। उनका प्रभाव द्विवेदी-युग की कविता पर भी पडा, यह गुप्त जी की 'झकार' (सन् १९१५) मे देखा जा सकता है।

रावीन्द्रिक छायावाद का प्रभाव व्रजभाषा मे भी पहुँच गया था। खडीबोली की स्थापना के पूर्व, बाबू जयशंकर 'प्रसाद' व्रजभाषा मे कविता लिखते थे, 'चित्राधार' मे प्रकाशित उनकी पुरानी कविताओ में छायावाद का आभास मिलता है।

जयशकर 'प्रसाद' जी को खडीबोली की प्रेरणा द्विवेदी-युग से मिली थी, किन्तु 'सरस्वती'-सम्पादक द्विवेदी जी से काव्य-कला-सम्बन्धी मतभेद हो जाने के कारण उनके प्रभाव से बाहर काशी के मासिक 'इन्दु' मे उन्होने अपनी रचनाओ को प्रकाशित कराया।

छायावाद का भावोदय द्विवेदी-युग के अभ्यन्तर मे हो गया था। द्विवेदी जी के सम्पादन-काल मे 'सरस्वती' मे छायावाद की भी कुछ कविताएँ प्रका-

शित हुई हैं। पण्डित मुकुटधर पाण्डेय की रचनाएँ तो 'सरस्वती' मे प्रकाशित होती ही थी, उसमे श्री सुमित्रानन्दन पन्त की 'स्वप्न' शीर्षक कविता भी पहले-पहल द्विवेदी जी के सम्पादन-काल (सन् १९१९) मे प्रकाशित हुई।

कहा जाता है कि पण्डित सूर्य्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने मुक्तछन्द मे लिखी 'जुही की कली' शीर्षक अपनी कविता 'सरस्वती' मे प्रकाशनार्थ द्विवेदी जी के पास भेजी थी, किन्तु वह प्रकाशित नही हुई। पाण्डेय जी और पन्त जी की कविताएँ प्रकाशित होने का कारण यह जान पडता है कि उनमे भाषा और छन्द व्यवस्थित थे, चिरपरिचित थे । अपरिचित भावों के कारण पन्त जी की फिर कोई कविता द्विवेदी जी के समय मे 'सरस्वती' मे प्रकाशित नही हुई ।

द्विवेदी-युग खडीबोली के गद्य के भीतर से पद्य की रचना कर रहा था। छायावाद की भावपूर्ण भाषा का उसके साथ सामञ्जस्य नही हो पाता था। द्विवेदी-युग के पद्योन्मुख गद्य को उसके सस्कारानुरूप जिस प्राञ्जल भाषा और भाव की आवश्यकता थी, उसका प्रस्फुटन मुकुटधर पाण्डेय की कुछ कविताओ मे हुआ। 'सरस्वती' मे प्रकाशित मुकुटधर जी की 'स्वागत', 'अधीर' और 'कुररी के प्रति' शीर्षक कविताओ मे द्विवेदी-युग का सुसंस्कृत लालित्य है—

> प्रस्फुटित मल्लिका कुञ्ज-कुञ्ज,
> कमनीय माधवी पुञ्ज-पुञ्ज,
> पीकर कैसी मदिरा प्रमत्त,
> फिरती है निर्भय भ्रमर-भीर !

ऐसा शोभा-सरस कवि भविष्य के किसी मनोवाञ्छित भावुक कवि का स्वागत कर स्वय कहाँ अदृश्य हो गया ?—

स्वागत, हे सुन्दर सुकुमार !
आओ हृदय-मार्ग से
मेरे प्रियतम प्राणाधार !
आओ हे घनश्याम उदार !

आओ, प्रेम-वारि बरसाओ
विटप-वेलियो मे लहराओ
आओ, झरनो से मिल गाओ,
हे कवि, कुशल अपार !

आओ, साथ उषा के आओ,
किरणो के मिस कर फैलाओ,
विकसित अमल कमल बन जाओ,
पहनो मुक्ताहार !

द्विवेदी-युग मे रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा के प्रकाश से छायावाद का भावोदय हुआ, किन्तु उसकी काव्य-कला का विकास द्विवेदी-युग के बाद हुआ । इस विकास-काल मे छायावाद रवीन्द्रनाथ के प्रभाव तक ही सीमित नही था, छायावाद के हिन्दी-कवियो को भी समुद्र-पार के कवियो का साहित्यिक सहयोग मिला, विशेषत: रोमैन्टिक कवियो का। पन्त जी के शब्दो मे—"द्विवेदी-युग के काव्य की तुलना मे छायावाद इसलिए आधुनिक था कि उसके सौन्दर्य्य-वोध और कल्पना मे पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड गया था, और उसका भाव-शरीर द्विवेदी-युग के काव्य की परम्परागत सामाजिकता से पृथक हो गया था ।"

छायावाद के वृहत्त्रयी

हिन्दी में छायावाद के क्रमागत प्रतिनिधि कवि है—प्रसाद, निराला, पन्त । ये छायावाद की कविता के 'वृहत्त्रयी' है । 'प्रसाद' के बाद अब

इस 'वृहत्त्रयी मे देवी महादेवी जी का शुभ नाम सम्मिलित है। वे मीरा की काव्यात्मा है। उनके गीतो से नवयुवको को गीतकाव्य की नयी भाषा और नयी शैली मिली।

प्रसाद जी और निराला जी की भाषा मे द्विवेदी-युग का गद्य-सस्कार शेष है। उसमे पारुष्य है, परिष्कार नही। फिर भी प्रसाद जी की अपेक्षा निराला जी की भाषा सुगठित है; बँगला के सम्पर्क मे कलात्मक है।

प्रसाद और निराला छायावाद मे नैवन्धिक भाव-काव्य के कवि है, द्विवेदी-युग की प्रवन्ध-शृखला इनकी रचनाओ मे मिलती है। छायावाद का सर्वथा भावमय स्वतन्त्र मुक्तक व्यक्तित्त्व पन्त की 'वीणा', 'पल्लव' और 'गुञ्जन' मे है।

प्रवन्ध-काव्य को प्रसाद की 'कामायनी' और निराला के 'तुलसीदास' से भावात्मक उत्कर्ष मिला है। कथा-वन्ध भाव की तरह ही सूक्ष्म है।

प्रसाद की अपेक्षा निराला जी की कविताओ मे भावो और रसो की विविधता है। प्रसाद जी मुख्यत. शृंगार रस के कवि है, आचार्य्य शुक्ल जी के शब्दो मे उनमे 'मधुचर्य्या' की प्रधानता है।

निराला जी सभी रसों के कवि है। रसों की तरह ही निराला जी की भाषा और काव्यालम्बनो मे भी विविधता है।

निराला जी की विभिन्नरूपा भाषा 'हरिऔध' जी का स्मरण दिला देती है, उन्ही की तरह वे भी गहन-से-गहन और सहज-से-सहज भाषा लिखने मे पटु है। भाषा की तरह ही वे छन्दो के भी नये नये प्रयोग करते रहते है। वे रीतिकुशल कवि है।

प्रसाद और निराला वस्तुत. द्विवेदी-युग के ही नये कवि है। इनकी भाषा का ढाँचा उसी युग का है, नवीनता भावो और छन्दो मे है। प्रसाद जी ने अतुकान्त छन्द दिया था, निराला जी ने मुक्तछन्द दिया।

छन्द की दृष्टि से निराला ने और शब्द-शिल्प की दृष्टि से पन्त ने छायावाद मे रचनात्मक नवीनता दी ।

'रबड-छन्द' और 'कॅगारू-छन्द' कह कर जिस मुक्त छन्द का उपहास किया गया, वह अग्रेजी और बॅगला के लिए नया नही है। किन्तु पन्त ने शब्दो को अपना कवि-व्यक्तित्त्व देकर जिस काव्य-सौष्ठव का परिचय दिया वह अद्वितीय है। पुरुषवाची शब्दो को स्त्रीवाची बना देना किसी सुरुचिपूर्ण अन्त सूक्ष्म शिल्पी के लिए ही सम्भव है। उन्होने बडी बारीक कारीगरी से शब्दो को भावात्मा दी है, इसीलिए 'प्रिय' प्रि' और 'और' औ' भी हो गया है। कविता मे से उन्होने गद्य का खुरदुरापन और फालतूपन निकाल दिया है। यहाँ तक कि कविता की 'पञ्चवटी' मे कनक-मृग की तरह 'है' का भी प्रवेश-निषेध किया है।

शब्दो को संक्षिप्त करके पन्त जी ने कुछ नये शब्द दिये है, यथा, आशी, अनिर्वच, अयास, इत्यादि। भाव-व्यञ्जकता के लिए लोकप्रचलित शब्द भी ले लिये है, ऐसे शब्द 'ग्राम्या' के अतिरिक्त अन्य रचनाओ मे भी है। इधर शब्दो का प्रतीक-प्रयोग पन्त जी अधिक करने लगे है । 'पल्लव' और 'गुञ्जन' मे भावात्मक प्रतीक थे, यथा, उषा, सन्ध्या, इत्यादि । नयी रचनाओं मे अर्थ-द्योतक प्रतीक है, यथा, दिशि, पल, क्षण, धूलि, इत्यादि । उनके प्रतीक शब्द दृश्य-सकेत भी करते है, यथा, 'कुसुमित कर जग का अन्धकार'। 'कुसुमित' को कवि ज्योतित कर देता तो तारो से खिला आकाश ओझल हो जाता। शब्दो के प्रतीक-प्रयोग के अतिरिक्त पन्त जी ने उनका ध्वन्यात्मक प्रयोग भी किया है। चित्र और सगीत ही पन्त जी की कविता के रूप और प्राण है।

जीवन की तरह शब्दो के निर्म्माण मे भी कवि को तपना पड़ा है। 'स्वर्ण-किरण' मे जीवन के निर्म्माण की प्रक्रिया इस प्रकार है—

मन जलता है,
अन्धकार का क्षण जलता है,
मेरा मन तन बन जाता है,
तन का मन फिर कट कर,
छँट कर,
कन-कन ऊपर
उठ पाता है।
मेरा मन तन बन जाता है।

इसी तरह कवि के भाव भी शब्द बन जाते है। शब्द छँट कर, कन-कन सत्त बन कर जीवन्त हो जाते है।

कविता मे शब्दो का निर्म्माण 'तन' के 'मन' से होता है। भावों का निर्म्माण आत्मा के मन से—

तन के मन मे कही अन्तरित,
आत्मा का मन है चिर ज्योतित,
इन छाया-दृश्यो को जो
निज आभा से कर देता ज्योतित।
('स्वर्णधूलि')

इस छायाभास के भीतर से जीवन का सौन्दर्य्य किस प्रकार साकार होता है?—

छाया प्रकाश जग जीवन का
बन जाता मधुर स्वप्न सगीत,
इस घने कुहासे के भीतर
दिप जाते तारे, इन्दु पीत।

देखते-देखते आ जाता,
मन पा जाता,
कुछ जग के जगमग रूप नाम।
रहते-रहते कुछ छा जाता,
उर को भाता
जीवन-सौन्दर्य्य अमर ललाम!
('स्वर्णकिरण')

छायावाद की अन्तरात्मा के अनुरूप जिस
थी वह पन्त की रचनाओ से ही मिला। निराला जी के शब्दों मे—"उनकी सहृदयता के स्पर्श से उनके शब्दो मे एक अजीब जीवन आ गया है जो किसी तरह भी मर नही सकता। उनकी आत्मा साहित्य की आत्मा हो गयी है।.......हिन्दी के निष्ठुर शब्दो को वे इसीलिए इतना सरस कर सके है।"

छायावाद-युग की प्रतिष्ठापना हो जाने पर पुरानी रुचि के साहित्यिको ने भी पन्त की काव्य-प्रशंसा की, जिनमे आचार्य्य शुक्ल जी अन्यतम है।

शब्दो की तरह ही पन्त के छन्दो मे (स्वर-प्रवाह मे) भी एक आन्तरिक साधना है। पन्त ने कविता के हृदय की रचना की है। उनकी रचना सुकुमार है। उसमे कला-लालित्य है; शोभा, सगीत और चित्र है।

पन्त जी प्रकृति के कवि है। पन्त और प्रकृति एकात्म है। द्विवेदी-युग मे श्रीधर पाठक ने जिस प्रकृति की सुषमा की एकान्त झलक दी थी उस प्रकृति को पन्त की कविता से ही विशदता, भव्यता और तन्मयता मिली।

पाठक जी प्रकृति के पर्य्यवेक्षक है, पन्त प्रकृति के पारिवारिक; हिमाञ्चल के अञ्चल-वासी।

पन्त की रचनाओं मे प्रकृति भी मनुष्य की तरह सामाजिक है। 'वीणा' मे वह माँ है, 'पल्लव' और 'गुञ्जन' मे जीवन-सगिनी, 'ज्योत्स्ना'

और 'स्वर्णकिरण' मे सस्कृति और कला की देवी, 'उत्तरा' मे क्रान्तमुखी और सृष्टिकर्त्री।

पन्त जी यद्यपि मधुरता और रमणीयता के कवि है, तथापि चित्रागदा की तरह उनकी कविताओ मे ओज भी है। उनका ओज 'परिवर्त्तन' और 'युगान्त' के बाद की रचनाओ ('युगवाणी', 'उत्तरा', 'युगपथ') मे देखा जा सकता है। माधुर्य्य और ओज का यही सघटन रवीन्द्रनाथ मे भी था।

सास्कृतिक दृष्टि से पन्त के लिए ओज भी माधुर्य्य की तरह आन्तरिक गुण है, अतएव, युग-पुरुष की सम्वर्द्धना उन्होने इन शब्दो मे की है—

'तुम आत्मा के, मन के मनोज।'

काशी,
३।९।४९

अन्तर-दर्शन

तुहिन-विन्दु बन कर सुन्दर,
नभ से भू पर समुद उतर,
मा! जब तू सस्मित-सुमनो को
आभूषित करती नित प्रात,
ऋतुपति के लीलास्थल मे,

मै न चाहती तब वे कण
हो मेरे मुक्ताभूषण,
पर, मेरे ही स्नेह-करो से
सुमन सु-सज्जित हो वे मात!
फूले तेरे अञ्चल मे।

जलद-यान मे फिर लघु भार,
जब तू जग को मुक्ता-हार
देती है उपहार-रूप मा!
सुन चातक की आर्त्त-पुकार
जगती का करने उपकार;

मै न चाहती तब वह हार
करे, जननि! मेरा शृंगार,

पर मै ही चातकनी बन कर
तुझे पुकारूँ बारम्बार
हरने जग का ताप अपार

(पन्त · 'पल्लव')

कवि-श्री सुमित्रानन्दन पन्त की काव्यात्मा हिन्दी के भाव-जगत मे एक निसर्ग-कन्या के रूप मे अवतरित हुई थी।

वसन्त की श्री में कवि मानो अपनी ही अन्तरात्मा का सादृश्य पाकर जिज्ञासा करता है—

उस फैली-हरियाली मे,
कौन अकेली खेल रही मा!
वह अपनी वय-वाली मे?
सजा हृदय की थाली मे—
क्रीडा, कौतूहल, कोमलता,
मोद, मधुरिमा, हास, विलास,
लीला, विस्मय, अस्फुटता, भय,
स्नेह, पुलक, सुख, सरल हुलास!
ऊषा की मृदु लाली मे—
किसका पूजन करती पल पल
बाल-चपलता से अपनी?
मृदु कोमलता से वह अपनी,
सहज-सरलता से अपनी?
मधुऋतु की तरु-डाली मे—
रूप, रग, रज, सुरभि, मधुर मधु,
भर भर मुकुलित अगो मे
मा! क्या तुम्हे रिझाती है वह?

खिल खिल बाल-उमगो मे,
हिल मिल हृदय-तरगो मे !

इस चित्र मे प्रकृति . वालिका और माँ के एकत्र रूप मे है। फैली हरियाली मे अकेली खेलने वाली बालिका प्रकृति के प्रागण मे पन्त की ही काव्यात्मा है, जो कही तो आत्मविभोर है और कही गुडियो और परियो-जैसी अपनी ही प्रतिकृति रच कर सृष्टि मे सखित्त्व का स्नेह-विस्तार करती है।

पन्त की प्रेयसी कविता, 'उच्छ्वास' की वालिका और उसकी समवयस्का सखी बालप्रकृति, ये सब एक ही अन्तर्मुख व्यक्ति की विविध अभिव्यक्तियाँ है जिन्हे 'जगजननी जीवन-विकासिनी' प्रकृति के वात्सल्य का वरदान प्राप्त है। प्रकृति के प्रस्फुटित अंश मे उसका मातृत्त्व है, अस्फुटता में उसका बालापन। बालप्रकृति ही कवि की सहेली है।

सृष्टि मे जो कुछ सरल, सुकोमल एव प्रेमल है उसी से अपनी काव्यात्मा को सजा कर कवि अपनी कविता का व्यक्तित्त्व पा गया है, उसी की तरह ललित-कलित हो गया है। 'उच्छ्वास' की जिस बालिका के लिए कवि ने कहा है—'सरलपन ही था उसका मन', उसी वालिका की सहज सुषमा से कवि का अन्तर्जगत सुसज्जित हो गया है—

"उसके उस सरलपने से
मैंने था हृदय सजाया,
नित मधुर मधुर गीतो से
उसका उर था उकसाया।
कह उसे कल्पनाओ की
कल कल्प-लता, अपनाया;
बहु नवल भावनाओं का
उसमें पराग था पाया।"

इस तरह कला . कलाकार से नही, बल्कि कलाकार ही कला से अनुप्राणित है; कृष्ण राधिका वन गया है।

पन्त की काव्यात्मा में राधा की-सी प्रेमाराधना है, वैसी ही सौन्दर्य्य-मुग्धता है, वैसी ही स्नेह-परायणता—

"अनुपम ! इस सुन्दर छवि से
मैं आज सजा लूँ निज मन,
अपलक अपार चितवन पर
अर्पण कर दूँ निज यौवन

. . . . . .

नव कुसुमो मे छिप-छिप कर
जब तुम मधुपान करोगे,
फूली न समाऊँगी मैं
उस सुख से हे जीवन-धन !"

प्रकृति अनेकरूपा है, नारी ही की तरह। कवि ने नारी को इन शब्दो मे सम्बोधित किया है—'देवि, मा, सहचरि, प्राण !' प्रकृति भी अपने विश्व-कुटुम्ब के सञ्चालन मे इन विविध पदो पर सुशोभित है। कवि ने अपने वयोविकास के अनुसार काव्य मे प्रकृति के सभी रूपो की प्रतिष्ठापना की है, तथापि उसकी किशोर आत्मा ने प्रकृति को मातृ-रूप मे ही पहिचाना था, उसके चरणो मे वालिका की तरह अपने जीवन को निवेदित किया था।

वात्सल्य ही कवि का मूल काव्य-रस है। प्रकृति की लघिमा पा जाने के लिए शैशव ही कवि को अभीष्ट है—'शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु सरल कमनीय।' इसीलिए कवि कहता है—

ऐसी बडी न होऊँ मैं,
तेरा स्नेह न खोऊँ मैं,
तेरे अञ्चल की छाया मे
छिपी रहूँ निस्पृह, निर्भय,
कहूँ—दिखा दे चन्द्रोदय !
('वीणा')

✓बालिका : एक भाव-प्रतीक

माँ का वात्सल्य शिशु के लिए भी सुलभ है और बालिका के लिए भी। फिर कवि की आत्मा शिशु न होकर बालिका क्यो हो गयी ? बालिका मे माँ की रचना अधिक निरीह रूप मे व्यक्त होती है । ऐसा जान पडता है, मानो माँ की मृदुलिमा ही उसमे तनिमा हो गयी है । शिशु सरल होते हुए भी परुष है। कवि की वृत्ति कोमला है । वह सृष्टि मे मातृत्त्व की अहिंसा का उपासक है। वह पृथ्वी पर 'मातृ-वत्सला सत्ता' का सस्थापन चाहता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कवि की कविता मे बालिका-सुलभ सुकुमारता का कारण उसके जन्मदिन के करुण इतिहास मे भी मिलेगा। जन्म के दिन ही कवि की माँ का देहावसान हो गया। मातृ-विछोह के कारण कवि के मानसिक तन्तु बालिका की तरह ही कोमल पड गये । कवि का जीवन बाल्यकाल से ही प्रकृति के पलने में पला—

हमे झुलाते हैं अविराम
विश्व-पुलक-से तरु के पात,
कुसुमित पलनो मे अभिराम !
('पल्लव' : 'विश्ववेणु')

प्रकृति ने पार्वती की तरह कवि का लालन-पालन किया। अहर्निश माँ का ध्यान करते-करते कवि की आत्मा उसी की प्रतिमा हो गयी। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण चतुर्दिक सुस्निग्ध हो गया।

कवि की काव्यात्मा के लिए वालिका एक भाव-प्रतीक है। पन्त ने वालिका के माध्यम से शाश्वत शैशव की भावना को आकार दिया है। वह कवि की मानसी सृष्टि है। चित्रकार जिस तरह व्यक्ति के किसी स्थिति-विशेष (पोज) को चित्र मे अमिट कर देता है उसी तरह पन्त ने जीवन की अवस्था-विशेष (बाल्यकाल) को काव्य मे अक्षुण्ण कर दिया है। काल उसे कवलित नही कर सकता, वह प्रकृति की तरह अमृता है। एक वय मे ही उसका पर्य्यवसान नही, वह 'चारु नभचरी-सी वय-हीन' है, चिर आदि, चिर अभिनव है। देह की सीमा मे वह चिरन्तन सुप्रसन्न चेतना है। 'वीचि-विलास' मे मानो कवि ने अपनी उसी मानसी वालिका का आभास दिया है—

खेल मिचौनी-सी निशि-भोर,
कुटिल काल का भी चित चोर,
जन्म-मरण से कर परिहास,
बढ असीम की ओर अछोर,
तुम फिर फिर सुधि-सी सोच्छ्वास
जी उठती हो बिना प्रयास,
ज्वाला-सी, पाकर वातास।

रवीन्द्र और पन्त

कवि ने नारी को 'सृष्टि के उर की साँस' कहा है। उसी साँस से पृथ्वी को सञ्जीवनी (हृदय की उर्व्वरता) दे देने के लिए कवि की निखिल भावना नारी हो गयी है। वह जीवन की सुरम्यता का कलाधर है.

इसीलिए भावना को ही नही, वातावरण के अनुसार यत्र-तत्र शब्दो को भी उसने नारीत्त्व दे दिया है। शायद बचपन मे परियो की कहानी सुनते-सुनते उनकी शोभा-सुषमा से कवि को अपनी कविता का यह कमनीय कलेवर मिल गया हो।

रवीन्द्रनाथ भी अपनी अभिव्यक्ति नारी में खोजते रहे है। एक स्थान पर उन्होने कहा है—"मै अपने गीतो के द्वारा जो भाव व्यक्त करना चाहता था उसे मैने किसी के कण्ठ से अभिव्यक्त होते नही देखा। यदि ईश्वर ने मुझे कण्ठ दिया होता तो सम्भवतः मै समझा सकता कि मेरे मन मे क्या है! मेरे गीतो को बहुत लोग गाते है किन्तु मै तो सुन कर हमेशा निराश ही हुआ हूँ। केवल एक महिला ऐसी मिली थी जो मेरे मूल स्वर को पकड सकी थी।"

पन्त की दृष्टि से, सृष्टि के पूर्व स्रष्टा की कल्पना-तन्त्री से जो झनकार निकली उसी की सजीव परिणति बालिका मे हुई। अतएव, नारी मे अपना स्वराभास पा जाना कवि के लिए भी स्वाभाविक ही है।

रवीन्द्र और पन्त की बाल्य प्रकृति मिलती-जुलती है। रवीन्द्र ने अपनी संगीत-प्रेरणा के सम्बन्ध मे कहा है—(बचपन मे) "छत पर या खिड़की के पास बैठा रहता, उस समय जो स्वर हवा मे उड़ते-उडते कान पर आते वे ही मन में हमेशा गूँजा करते, उन्ही से मुझे संगीत की प्रेरणा मिली है।"

—कवि के इन शब्दो के साथ पन्त के 'विश्ववेणु' की ये पंक्तियाँ याद आ जाती है:—

हाँ—हम मारुत की मृदुल झकोर,

. . . . . .

हर सुदूर से अस्फुट तान,
आकुल कर पथिको के कान,

विश्व-वेणु की-सी झकार
हम जग के सुख-दुख-मय गान
पहुँचाती अनन्त के द्वार।

रवीन्द्र और पन्त की काव्यात्मा एक है।

रवीन्द्रनाथ के बाद, आधुनिक युग की जो सब से सुन्दर साहित्य-साधना हो सकती है वह पन्त के व्यक्तित्त्व और कवित्त्व मे है। पन्त मे रवीन्द्र का 'उत्तर-यौवन' है।

मेरे कमरे मे ('कल्पवती-कुटीर' में) रवीन्द्र और पन्त का एक सयुक्त चित्र है। उसमे हिम-धवल-केश कविगुरु रवीन्द्रनाथ शुभ्र निर्झ-रिणी-सी दाढी मे भूधर की भाँति गरिमा-मण्डित है। उन्ही के अधोभाग मे ऊर्ध्व-तिग्ममुख (मानो नवजीवन के ओज से ऊर्ज्जस्वित) 'युगवाणी' काल के कवि पन्त का चित्र जुडा है, वह 'वृद्ध विश्व का रूप नवीन' है।

* * *

संस्मरण

छायावाद की हिन्दी-कविता मे पन्त से पहिले सयोग-वश मैंने निराला जी की रचनाएँ पढी। उन दिनों एक ओर निराला जी की कविताएँ नियमित रूप से 'मतवाला' मे प्रकाशित हो रही थी, दूसरी ओर पन्तजी की कविताएँ 'सरस्वती' मे। तब मै निपट अबोध था, मेरे साहित्यिक संस्कार सुषुप्त थे। बाल-कुतूहल-वश 'मतवाला' की ओर आकृष्ट होने पर मेरा ध्यान उसके मुखपृष्ठ की रगीनी की ओर गया, इसके बाद निराला जी के नाम पर। 'निराला' नाम मेरे लिए कम आकर्षक नही था · इसी नाम के कारण उनकी कविता पढने की रुचि हुई। पढने पर ज्ञात हुआ कि कविता नाम की अपेक्षा गम्भीर है। ऐसी गम्भीर कविता के लिए मन उन दिनों परिपक्व

नही था। फिर भी निराला जी की कविता पढने का उत्साह उनके मुक्त-छन्द से मिला। अलकार और पिगल की जटिलता के कारण जो कविता पाठशाला की विद्या की तरह दुर्लभ जान पडती थी, वही मुक्तछन्द मे मन पर से कुछ अनुशासन हट जाने के कारण सुलभ जान पडने लगी। मेरा भी हृदय मुक्तछन्द मे उद्गीर्ण हो उठा।

यह आश्चर्य्य की बात है कि मेरा काव्य-भीरु मन छायावाद मे सब से पहिले उस कवि की कविता से प्रभावित हुआ जो छन्द-रहित होने पर भी प्राय दुर्बोध है। निराला की कविता के भाव उस समय मुझे भले ही सुगम न हो सके हो, किन्तु शब्दो में उनके व्यक्तित्त्व का जो निर्घोष है वह मेरे सुषुप्त भावो को जगाता रहा है। प्रपात और प्रभञ्जन का अभिप्राय अज्ञात होने पर भी वह अन्त शिराओ को स्पन्दित करता ही है।

बचपन की 'हिन्दी-प्रवेशिका' द्वारा मे द्विवेदी-युग के कवियो की कविता से यत्किञ्चित परिचित हो चुका था। विशेषत गुप्त जी की पक्तियों से मेरी रागात्मिका वृत्ति का उद्रेक हो गया था।—(इसका श्रेय देहाती मदरसे के मनोहर व्यक्तित्त्वपूर्ण मुख्याध्यापक मुन्शी कन्हैयालाल जी के सस्वर काव्य-पाठ को है)। देहात से नगर मे आने पर रीति-शास्त्र के काव्यगुरुओ के क्लिष्ट सम्पर्क मे काव्य से उपराम हो गया। काल-प्रवाह मे बहता हुआ मेरा नि.सम्बल जीवन जब फिर साहित्यिक दिशा मे उन्मुख हो गया तब छायावाद ने अपने वैचित्र्य से मुझे आकृष्ट कर लिया।

गुप्त जी के बाद रीति-स्कूल, रीति-स्कूल के बाद निराला जी का काव्य-साहित्य मुझे मिला था। इन सभी काव्य-प्रान्तरो को स्पर्श करती हुई मेरी जीवन-धारा अपना स्वर-सन्धान कर रही थी। अनवरत शोषण के कारण मेरे मानसिक तन्तु छुटपन की तरह ही कोमल और बहिन की सजल-स्नेह-छाया के कारण तरल है। मै अपने मनस्तन्तुओ के अनुरूप तन्त्री को खोज रहा था।

निराला जी की रचनाएँ पढने के थोडे दिनो बाद ही मुझे पन्त जी की भी कुछ कविताएँ पढने का सुअवसर मिल गया। उस समय मैं उनके शब्द-सौन्दर्य्य से ही सम्मोहित हो सका। इसके बाद जब उनकी 'बालापन' शीर्षक कविता पढी तब उसमे मेरे मन का भाव-केन्द्र भी मिल गया। उस समय कवि के प्रति मुझे जो आत्मप्रेरणा हुई वह निराला जी की 'अप्सरा' (उपन्यास) के समर्पण के इन शब्दो मे अभिव्यक्त हो जाती है—'..इन्ही के पास बैठ कर इन्ही से मैं अपना जीवन-रहस्य कहूँगी.. ।'

उल्लसित सौन्दर्य की चित्रकारिता, छन्दो की स्वाभाविकता, भावो की सुकुमारता और शैली की हार्दिक व्यञ्जकता के कारण मुझे पन्त की रचनाओं मे अपना आन्तरिक काव्य-जगत मिला। मैंने उनका अनुकरण भी किया। काव्य मे चाहे मुझे सफलता न मिली हो, लेकिन मेरे शिशु-मन की कला का ललित स्कूल पन्त की रचनाओ मे है। वहाँ मैंने अधिक मनोरमता-पूर्वक कविता का सामीप्य पाया है।

पन्त जी की कविताओ मे मेरे मन के सुस्थिर हो जाने का कारण यह कि मेरे अविकच वय की उन्मुक्तता मे अभिजात सस्कारों की शृंखला भी ओझल थी। वही स्नेह-शृखला मुझे पन्त के भावों और छन्दो में सुकोमल रक्षा-वन्धन की तरह मिली।

यद्यपि पन्तजी भी एक रोमैन्टिक कवि है तथापि उनके रोमैन्टिक रूप मे भारतीय मर्य्यादाशीलता है। वे नव-पुराण कवि है। उनमे पुरातन का सौष्ठव और नूतन का चारुत्व है। उनकी साहित्यिक स्वतन्त्रता मे एक आत्मस्थता है, स्वस्थता है, गार्हस्थिक कुलीनता है—

"वह काँटो मे उलझी साड़ी
मञ्जुल फूलो के गहने,

सरल नीलिमा-मय मेरे दृग
अस्त्र - हीन, सकोच-सने"
—('पल्लव' 'बालापन')

—ऐसी ही है उनकी सरला सुशीला कविता। सास्कृतिक सुषमा के कारण पन्त की कला मे एक सुघर सयम है, वह सौ-सौ छन्दो मे स्वच्छन्द होकर भी अपने 'निस्तल' से बँधी है—वीचियो की तरह, गृहकन्याओ की तरह, नीडोन्मुख आकाश-विहारिणी विहग-वालिका की तरह।

पन्त की कविताएँ पढ कर विस्मय होता था कि इस पृथ्वी पर सचमुच कहीं कोई ऐसा कमनीय कवि भी शोभायमान है! उसका प्रत्यक्ष दर्शन स्वर्गिक सौभाग्य की तरह दुर्लभ जान पडता था।

उन दिनो रस-विभोर होकर मै छायावाद की कविताओ का 'परिचय' मे सकलन कर रहा था, अपने अभाव-ग्रस्त जीवन को भावो से भर रहा था। पन्त जी प्रयाग मे थे। सम्भवत. सन् '२६ मे ('पल्लव' के प्रकाशन-काल मे) उत्सुक हृदय से उनके दर्शनो के लिए मै प्रयाग गया।

प्रयाग पहुँच कर भी आत्महीनता के कारण, शोभा के उस ऐश्वर्य्य-शाली कवि के सामने सहसा नही जा सका। दूसरे दिन मध्यान्होत्तर पन्त जी के निवासस्थान पर जब उनसे साक्षात्कार हुआ तो मन संभ्रम मे पड गया—मै कवि को देख रहा हूँ या कविता को!

कविता ही कवि में साकार थी। 'पल्लव' में प्रकाशित कवि पन्त का चित्र उनकी कविता का ही चित्र है। उसमे मानो प्रकृति का देवीत्त्व है।

'ज्योत्स्ना' मे पन्त ने इन शब्दो मे कल्पना का रूप-निर्देश किया है—'मेधावी नासिका, स्वभाव-संस्कृत मुखाकृति।' यही बात पन्त जी के व्यक्तित्त्व के लिए भी कही जा सकती है।

'पल्लव' के कवि-चित्र मे पन्त की जिस कविता का अन्तःस्वरूप है, 'वीणा' और 'पल्लविनी' के चित्रो में उसी कविता का कलाच्छादन।

अन्यान्य कविता-पुस्तको मे कवि के जो चित्र प्रकाशित है वे उसी कोमल-कलेवर कवि के युग-चित्र है। उस सुकुमार कवि को कालानिल ने अपने झझावात से प्रौढ बना दिया है। उन चित्रो मे मिट्टी की आर्द्र प्रतिमा लोक सन्ताप से तप कर परिपक्व हो गई है।

पन्त के व्यक्तित्त्व और कवित्त्व मे एक ही सुदर्शन शिल्पी का रचना-सौन्दर्य्य है। निःसदेह, 'कवि का सबसे वडा काव्य स्वय कवि है।' कविता पढे चाहे कवि को देखे, दोनो अभिन्न है। कवि और कविता, दोनो एक दूसरे मे लयमान है।

. . . उस दिन (पहिली भेट के दिन) अनुरोध-वश जब कवि ने अपनी कविता ('छाया') सुनाई तब ऐसा जान पडा कि स्वय कविता की आत्मा ही गा उठी।

पन्त के काव्य-पाठ मे चित्र और सगीत है। उगलियो के इगित से भाव को आकार तथा सुकोमल सगीत से रस को उसकी आत्मा दे देते है। पन्त जी वाद्य-कुशल भी है। कविता और वॉयलिन उनकी एकान्त-सगिनी है। उनके स्वर मे जो मोहिनी है वह अग-जग का मन छू लेती है, श्रोता स्वप्नाविष्ट हो जाता है।

प्रत्येक कवि की कविता पढ़ने की अपनी एक टयून होती है, उसी से कवि की कविता का व्यक्तित्त्व ध्वनित होता है। पहली ही भेट मे मेरी आत्मा पन्त की टयून से बँध गयी। पन्त के सगीत मे मेरा गद्य-शुष्क जीवन अपना काव्य-मधुर स्वर-सगम पा गया।

सौन्दर्य्य की साधना

जैसा कि कवित्त्व और व्यक्तित्त्व मे सुस्पष्ट है, पन्त सौन्दर्य्य-प्राण कलाकार है।

कवि ने सौन्दर्य्य के लिए सत्य और शिव को विस्मृत नही किया, उन्हे सौन्दर्य मे ही समाविष्ट कर दिया।

यद्यपि सत्य-शिव-सुन्दर जीवन की विभिन्न अनुभूतियो को व्यक्त करते हैं तथापि देश-काल-पात्र के अनुसार वे एक ही अन्तश्चेतना के स्थानापन्न हैं। 'पल्लव' मे कवि ने कहा है—

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में बनता प्रणय अपार;
लोचनो मे लावण्य अनूप
लोक-सेवा मे शिव-अविकार
स्वरो मे ध्वनित मधुर, सुकुमार
सत्य ही प्रेमोद्गार;
दिव्य-सौन्दर्य्य, स्नेह-साकार,
भावनामय ससार !
('परिवर्त्तन')

सगुण रूप मे सौन्दर्य्य मे ही सत्यम्-शिवम् का केन्द्रीकरण है, वह 'एक सुर मे समस्त संगीत' की तरह है।

सुन्दरम् ही शिव भी है, यह 'वीणा' के इस सम्बोधन से सूचित होता है—

आओ शिव ! आओ सुन्दर !
मुझे सौपने दो तुमको
अपनी वाञ्छाएँ रज-कण-सी,
होने दो निश्चिन्त, निडर !

सौन्दर्य्य में संस्कृति की अभिव्यक्ति है। इस दृष्टि से सुन्दर ही पावन (शिव) है, सुसस्कृत ही सुन्दर है। 'युगवाणी' से यही संकेत मिलता है— 'सुन्दर ही पावन, सस्कृत ही पावन निश्चय।'

कवि का सौन्दर्य्य सकुचित नही, उसमे जीवन की समष्टि सुषमा का समावेश है। देह से लेकर आत्मा तक, व्यक्ति से लेकर विश्व तक, दृगो से लेकर दिगन्त तक के सचेतन निम्र्माण की सुपरिणति सौन्दर्य्य मे है। 'युग-वाणी' मे कवि ने सौन्दर्य्य के इसी व्यापक स्वरूप को जीवन्त करने के लिए नवयुग को उद्‌वोधित किया है—

रम्य रूप निम्र्माण करो हे,
रम्य वस्त्र परिधान,
रम्य बनाओ गृह, जनपथ को
रम्य नगर, जन स्थान ।

रम्य सृष्टि हो रूप जगत की
रम्य धरा श्रृंगार
बाह्य रूप हो रम्य वस्तु का,
होगे रम्य विचार ।

इसी रम्य निम्र्माण को अग्रसर करने के लिए कवि का 'लोकायतन' है। प्रत्येक व्यक्ति जीवन का कलाकार हो जाय, प्रत्येक कृति सौन्दर्य्य का शिल्प बन जाय, यही कवि की शुभाकाक्षा है।

कवि की रचना के उपादान मनुष्य की चेतना के भीतर है। कवि ने एक स्थान पर कहा है—"जहाँ मनुष्य स्वय स्रष्टा हो जाता है वहाँ उसका अन्तरतम चेतन-व्यक्तित्व सक्रिय हो जाता है—उसे सौन्दर्य्य, आनन्द और तृप्ति का अनुभव होने लगता है, जीवन का अन्धकार और मन का कुहासा छिन्न-भिन्न होने लगता है।"

मनुष्य की मानवी भावना का विकास करने के लिए ही सौन्दर्य्य का सजग दृष्टिकोण है।

लोकजीवन के सुरम्य निर्म्माण के लिए 'युगवाणी' मे कवि ने मनुष्य को सारग्राही बनने के लिए प्रेरित किया है—

आज बनो फिर तुम नव मानव ।
चुन चुन सार प्रकृति से अतुलित
जीवन रूप धरो हे अभिनव ।
. . . . .
इस विश्री जगती मे कुत्सित
अन्तर-चितवन से चुन-चुन कर
सार भाग जीवन का सुन्दर
मानव ! भावी मानव के हित
जीवन-पथ कर जाओ ज्योतित ।

जीवन की सार-सकलयित्री 'अन्तर-चितवन' ही मानव की सौन्दर्य्य-दृष्टि (सुरुचि) है ।

कवि जीवन की कुरूप वास्तविकता को भी मधुरता और सुन्दरता का आमन्त्रण देता है—

आओ मेरे स्वर मे गाओ ।
जीवन के कर्कश अपस्वर !
मेरी बंशी मे लय बन जाओ ।
. . . . . .
हे दूषित, हे कलुषित, गर्हित,
हे खण्डित, हे त्यक्त, उपेक्षित,
मेरे उर मे चिर पावन बन,
संगति, सत्त्व, पूर्णता पाओ ।
('युगवाणी)

'सगति, सत्त्व, पूर्णता'—इन कुछ शब्दों में ही सौन्दर्य्य की व्याख्या है, उसकी निम्मर्गाण-कला है ।

अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात करते हुए कवि ने लिखा है—"सन् १९२१ के असहयोग-आन्दोलन में मैंने कॉलेज छोड दिया। इन दो-एक वर्षो के साहित्यिक प्रवास मे ही मेरे मन ने किसी तरह जान लिया था कि मेरे जीवन का विधाता ने कविता के साथ ही 'ग्रन्थि-वन्धन' जोड़ना निश्चय किया है। 'वीणा' मे मैंने ठीक ही कहा था—

> 'प्रेयसि कविते, हे निरुपमिते'
> अधरामृत से इन निर्जीवित शब्दो मे जीवन लाओ।'

बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओ और प्रासादो से लेकर छोटी-छोटी झाड़-फूस की कुटियो से जनाकीर्ण इस जगत में मुझे रहने के लिए मन का एकान्त छायावन मिला जिसमे वास्तविक विश्व की हलचल चित्रपट की तरह दृश्य बदलती हुई मेरे जीवन को अज्ञात आवेगो से झकझोरती रही है ।"

अपने 'एकान्त छायावन' (भाव-जगत्) मे तटस्थ होकर कवि वस्तु-जगत का जो चल-चित्रपट देख रहा था, 'ज्योत्स्ना' मे एक कला-कुशल निर्दे-शक की तरह उसी का डाइरेक्शन कर दिया । वास्तविकता को अस्थि की तरह, स्वस्थ सौन्दर्य्य की त्वचाओ से आच्छादित कर दिया। प्रकृति की मनोरम विभूतियो में विकसित मानवता को मूर्त्त कर पृथ्वी को ही स्वर्ग बना दिया । अपने सम-विषम धरातल में ऊँची-नीची पृथ्वी जैसे चाँदनी मे सरल सुस्मित लगती है वैसे ही 'ज्योत्स्ना' से निर्म्मित मानवीय मनोजगत भी शोभित-प्रफुल्लित है । 'स्वणधूलि' मे उसी 'ज्योत्स्ना' का मनोजगत जाग्रत दिवस का सामाजिक धरातल पा गया है ।

पन्त जी प्रियदर्शी कवि है । उन्होने जीवन को प्रमुदित दृष्टि से देखा है। जीवन उनके लिए 'नित नव उत्सव' है, हाहारव नही । वे आशावादी

कवि है, अतएव भावी पीढी को अपनी सृजन-चेतना के अनुरूप सुन्दर देखना चाहते है ।

युग का प्रभाव

'ज्योत्स्ना' के बाद 'युगान्त' और 'युगवाणी' से कवि अपनी काव्य-रचना के उत्तर-काल मे प्रवेश करता है। छायावाद के बाद यह यथार्थ-वाद का युग है। इस युग मे आकर कवि प्राकृतिक जगत से मानव-जगत मे चला गया। अभावो के भीतर से मनुष्य प्रकट हुआ, प्रकृति पीछे छूट गयी——

'भव अभाव से जर्जर
प्रकृति उसे देगी सुख ?'

प्रकृति पर मोहित कवि मनुष्य पर मुग्ध हो गया——

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सबकी तिल-सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि मे चिर निरुपम।
('युगान्त')

हार गयी तुम
प्रकृति
रच निरुपम
मानव-कृति ।
निखिल रूप, रेखा, स्वर
हुए निछावर
मानव के तन, मन पर
('युगवाणी')

—ये कवि के 'मानसिक सघर्ष'-काल की पक्तियाँ हैं। कवि का मानसिक सघर्ष छायावाद-काल मे ही प्रारम्भ हो गया था, जिसका दार्शनिक किन्तु भावात्मक दर्शन 'पल्लव' के 'परिवर्त्तन' मे मिलता है। उस समय युग की स्थूल अभाव-वाचक परिस्थितियाँ कवि के सामने नही आयी थी। 'आधुनिक कवि' के अपने काव्य-सग्रह के 'पर्यालोचन' मे कवि ने लिखा है—"मेरे जीवन का समस्त मानसिक सघर्ष और अनुभूति की तीव्रता 'ग्रन्थि' और 'परिवर्त्तन' मे प्रकट हुई है। . तब मैं प्राकृतिक दर्शन (नैच्युरेलिस्टिक फिलासफी) से अधिक प्रभावित था और मानव जाति के ऐतिहासिक सघर्ष के सत्य से अपरिचित था। दर्शन मनुष्य के वैयक्तिक सघर्ष का इतिहास है, विज्ञान सामूहिक सघर्ष का।"

'पल्लव' के बाद की काव्यकृतियो मे कवि का जो सघर्ष है उसे दुहरा सघर्ष कहा जा सकता है सामूहिक और वैयक्तिक। एक ओर वह समाज-विज्ञान से प्रेरित है, दूसरी ओर अपने सौन्दर्य्य-वोध से। समूह के स्थूल असन्तोष मे कवि का सूक्ष्म असतोष भी समाया हुआ है। युग-सघर्ष मे कवि समूह के साथ है, नव सृजन मे समूह से मतभेदपूर्ण। यो कहे कि 'ग्रन्थि' का सामाजिक सघर्ष समूह मे और 'परिवर्त्तन' का दार्शनिक द्वन्द्व कवि की नूतन सास्कृतिक चेतना मे अभिव्यक्त हुआ है। 'आधुनिक कवि' के 'पर्य्यालोचन' मे कवि की इसी द्विविध मानसिक स्थिति पर इन शब्दो से प्रकाश पड़ता है—

"जहाँ मनुष्य स्वभाव की सीमाएँ, एक ओर, वर्ग-सघर्ष एवं राजनीतिक युद्धो के रूप मे, मानव जाति के रक्त का उग्र प्रयोग करवा रही है, दूसरी ओर मनुष्य की विकासप्रिय प्रकृति समयानुकूल उपयुक्त साहित्य एव विचारो का प्रचार कर नवीन मानवता का वातावरण पैदा करने के लिए, सास्कृतिक प्रयोग भी कर रही है। भले ही इस समय उसकी देन अत्यन्त स्वल्प हो और अन्धकार की प्रवृत्तियाँ प्रकाश की प्रवृत्तियो पर

कुछ समय के लिए विजयी हो रही हो, किन्तु एक कलाकार और स्वप्न-स्रष्टा के नाते मै दूसरे प्रकार की—सास्कृतिक अभ्युदय की—शक्तियो को बढाने का पक्षपाती हूँ ।"

छायावाद का मनोविकास कवि का रचनात्मक केन्द्र हो सकता है । यद्यपि छायावाद की वैयक्तिक चेतना सामूहिक जीवन से पृथक थी किन्तु इसमे छायावाद का नही, बल्कि सामन्तवाद और पूँजीवाद की सकीर्णता का दोष था जिसने वैभव की तरह जीवनके भाव-सौन्दर्य्य से भी समाज को वञ्चित रखा । छायावाद के तिरोभाव का कारण काव्य के अन्तर्जगत मे नही, बल्कि वस्तु के बहिर्जगत मे था । 'आधुनिक कवि' के पर्य्यालोचन मे पन्त जी ने भी इसी तथ्य का उद्घाटन किया है, ". . वह केवल सामन्त-युग की सास्कृतिक भावना ('एक असीम अखण्ड विश्व-व्यापकता') थी जिसे मैने खोया था, और उसके विनाश के कारण मेरे भीतर नही बल्कि बाहर के जगत मे थे ।. . . ."

नवीन सामाजिक व्यवस्था मे छायावाद जन-जन के उर का सुरभि-श्वास बन सकता है । व्यक्तिवाद को स्वीकार न करते हुए भी कवि, व्यक्तित्त्व के विकास को महत्त्व देता है और 'विकसित सामाजिक प्रथा' से सहयोग मिलने की आशा से सामूहिक जागरण का स्वागत करता है । सच तो यह कि छायावाद मे व्यक्ति का व्यक्तित्त्व भी विकास पा सकता है और समाज का सामूहिक मन भी ।

छायावाद के अवसान का कारण कवि उसमे जीवन के पोषक तत्त्वो का अभाव बतलाता है । कवि के कथनानुसार, "वह (छायावाद) काव्य न रह कर केवल अलकृत सगीत बन गया था ।. . . . .उसमे व्यावसायिक क्राति और विकासवाद के बाद का भावना-वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की 'अन्न-वस्त्र' की धारणा (वास्तविकता) नही आई थी । उसके 'हास-अश्रु आशाऽकाक्षा' 'खाद्य मधु पानी' नही बने थे ।"

परवर्त्ती काल मे कवि ने, मानो छायावाद को नवीन सगुण आधार देने के लिए, ऐहिक निर्म्माण पर जोर दिया—

निर्म्मित करो मास का जीवन
जीवन-मास करो निर्म्माण ।

क्योकि—

इस मासलता मे है मूर्त्तित
अखिल भावनाओ का सार।

('युगवाणी')

आत्मा के लिए देह की तरह भाव के लिए वस्तु आधार है : 'वस्तु-विभव पर ही जन-गण का भाव-विभव अवलम्बित ।'

'पल्लव' मे कवि का सौन्दर्य्य-दर्शन था, 'गुञ्जन' मे सौन्दर्य्य के साथ आत्मचिन्तन, 'युगवाणी' मे वस्तुजगत का निरूपण । इन सभी रचनाओ का दृष्टिकोण एक दूसरे से विच्छिन्न नही, परिपूरक है । कवि का मूल-दृष्टिकोण मानव का अन्तर्विकास है । कवि कहता है—

'एक कली जो मेरे पास
तुम चाहो इसको अपना लो
कर दो इसका पूर्ण विकास ।'

कविता के लिए वास्तविकता का आधार कवि ने ऐतिहासिक विचार-धारा (मार्क्सवाद) मे पाया है। कवि का कहना है कि, "उसमे कल्पना के स्रोत को विशद और वास्तविक पथ मिलता है। छायावाद के दिशाहीन शून्य सूक्ष्म आकाश मे अति काल्पनिक उडान भरने वाली अथवा रहस्यवाद के निर्जन अदृश्य शिखर पर कालहीन विराम करने वाली कल्पना को एक हरी भरी ठोस जनपूर्ण धरती मिल जाती है ।"

आज प्रश्न यह है कि महायुद्ध के बाद की अकालग्रस्त जनता को 'खाद्य-मधु-पानी' अथवा पृथ्वी का हरित-भरित आधार ऐतिहासिक विचार-धारा से मिलेगा या गान्धी-विचार-धारा से ? औद्योगिक स्वाभाविकता किसमे सुरक्षित है ? पृथ्वी की नैसर्गिक शक्ति किसमे सन्तुलित है ?

उद्योगो के अनुसार ही मनुष्य का स्वभाव बनेगा। जहाँ पृथ्वी की स्वाभाविक उर्व्वरता होगी, वही काव्य खिलेगा। पन्त को निभृत प्रकृति का एकान्त छायावन गान्धी के ग्रामोद्योग से ही मिलेगा।

द्विवेदी-युग मे जिस यन्त्र-युग का प्रादुर्भाव हुआ था उसका दुष्प्रभाव दूसरे महायुद्ध के बाद के जीवन और साहित्य पर भीषण रूप मे प्रकट हुआ। शोभादर्शी कवि पन्त ने 'युगवाणी' मे (दूसरे महायुद्ध के दिनो मे) यन्त्र-युग से जीवन की सुषमा का सुदृढ आधार पा जाने के लिए उसमे भी शिवत्त्व देखा था। पन्त की सस्कृति तो आर्ष भूमि पर है ('आर्ष भूमि पर उठे सास्कृतिक स्वर्गारोहण') लेकिन कला की तरह वे जीवन की भी आधुनिक प्रेरणाएँ ग्रहण करते आये हैं। उनकी भारतीय आत्मा पाश्चात्य कलेवर में है।

'पल्लव' के 'प्रवेश' के भ ব।-ন।न्यन्र्च। प्रसंग मे पन्त की आधुनिक रुचि अन्तर्हित है। वे हृदय से कवि और बुद्धि से वैज्ञानिक है। उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण उस समय प्रत्यक्ष हुआ जब व्रजभाषा की तरह छायावाद भी पीछे छूट गया।

'पल्लव' के 'प्रदेश' मे पन्त ने खडीबोली का पक्ष लेते हुए व्रजभाषा के सौन्दर्य्य-मय निर्म्माणके सम्बन्ध मे जो कुछ कहा है वही छायावाद के लिए भी कहा जा सकता है। 'युगवाणी'-काल में छायावाद के प्रति पन्त का जो असन्तोष जगा, वह अनजाने, व्रजभाषाके प्रसग मे, 'पल्लव-काल' में ही व्यक्त हो गया था।

ब्रजभाषा और छायावाद के ह्रास का एकमात्र कारण यह है कि प्रकृति को केवल काव्य मे स्थान मिला था, जीवन मे नही। यन्त्रोद्योगो ने प्रकृति के साथ ही मनुष्य का भी शोषण कर लिया, प्रकृति की सुख-श्री-सुषमा से रिक्त होकर जीवन सूख गया, रूक्ष हो गया।

छायावाद को बीच मे छोड कर द्विवेदी-युग के बाद काव्य मे फिर उपयोगिता का युग आ गया। द्विवेदी-युग मे नैतिक उपयोगिता थी, इस युग मे राजनैतिक उपयोगिता है। छायावाद प्रकृतिशील था, यह युग 'प्रगतिशील' है।

पन्त जी लिखते है—"अपनी युग-परिस्थितियो से प्रभावित होकर मै साहित्य मे उपयोगितावाद ही को प्रमुख स्थान देता हूँ। लेकिन सोने को सुगन्धित करने की चेष्टा स्वप्नकार को अवश्य करनी चाहिये।"

इस दृष्टि से पन्त ने भी अपनी उत्तरकालीन रचनाओ मे युग की उपयोगिता को कल्पक की कलाकारिता से सुगन्धित करने का प्रयत्न किया है। उनका यह सत्प्रयत्न 'युगवाणी' के रूप-पूजन मे भी देखा जा सकता है।

वस्तुजगत की स्थूल भूमि पर आकर कवि की कविता मानसी से मानुषी हो गयी, कवि का अन्तर्जगत बहिर्जगत मे जीवन्त हो गया। 'ज्योत्स्ना' के रूपक मे जिन भावी आत्माओ का आविर्भाव हुआ था, कवि की नवदेही कविता मे उन्ही की 'युगवाणी' है। 'ज्योत्स्ना' के भाव और विचार 'युगवाणी' मे गीत-गद्य बन गये।

कवि 'युगवाणी' मे भी सौन्दर्य्यवादी है, लेकिन उसका सौन्दर्य्य अब 'लोकप्राण' है—

"सुन्दर, शिव, सत्य
कला के कल्पित माप-मान
बन गये स्थूल,

जगजीवन से हो एकप्राण ।
मानव स्वभाव ही
बन मानव-आदर्श सुकर
करता अपूर्ण को पूर्ण
असन्दर को सुन्दर ।"

पन्त की प्रगति

'पल्लव' और 'युगवाणी' -काल को ध्यान में रख कर पन्त जी की साहित्यिक कृतविद्यता के सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र लिखते हैं—"एक ही व्यक्ति ने अपने अल्पकाल में साहित्य की गति को दो बार दो विभिन्न दिशाओं में मोड़ दिया हो, ऐसा दूसरा उदाहरण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है ।"

'पल्लव' में पन्त जी का काव्य-व्यक्तित्त्व इतना मौलिक है कि उसे स्वायत्त करने के लिए अनुकरण नहीं, अन्तःप्रस्फुटन चाहिये । यही बात प्रत्येक व्यक्तित्त्वपूर्ण कला के लिए कही जा सकती है ।

कुछ अंशों में 'पल्लव' की भाषा और छन्द का प्रभाव छायावाद पर पड़ा, किन्तु उसकी संगीतपूर्ण सुसंगत शैली किसी से नहीं सध सकी । शैली तो जीवन के निर्म्माण के अनुकूल बनती है । जिस सुकुमार संस्कार और सूक्ष्म सौन्दर्य्यबोध की आवश्यकता थी उसके अभाव में 'पल्लव' के पन्त का कोई उत्तराधिकारी कवि नहीं आ सका। उनकी प्रतिभा अप्रतिम है ।

हाँ, 'युगवाणी' के छन्द, भाषा और शैली तीनों का प्रभाव प्रगतिवाद पर पड़ा। इसका कारण यह कि जीवन के स्थूल धरातल पर सबकी बाह्य समस्या एक है । 'युगवाणी' से निःसन्देह, युग को वाणी मिली । किन्तु उसमें भी पन्त जी जहाँ कलाकार हैं, जहाँ उनका अन्तःकरण है, वहाँ तक कोई प्रगतिवादी नहीं पहुँच सका ।

अब तक पन्त जी की कला दो से अधिक अध्याय बना चुकी है —

(१) 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव' और 'गुञ्जन'।

(२) 'ज्योत्स्ना' और 'पाँच कहानियाँ'।

(३) 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या'।

(४) 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'उत्तरा', 'युगपथ',-तिनाट्य (सगीत-रूपक) और एकाकी नाटक।

इन अध्यायो को हम उनके साहित्यिक जीवन के चार चरण कह सकते है। किन्तु वस्तुत ये अनेक नही, अन्ततोगत्वा एक है। अपनी सभी कृतियों में पन्त जी मुख्यतः भावनाशील स्वप्नदर्शी कवि है। उनकी प्रगतिशील रचनाओ मे भी वायव्य-जगत के नृत्यशील स्वप्न अपने पदो से युग की पृथ्वी पर थाप दे रहे हैं।

छायावाद-युग मे पन्त ने जिस मनोजगत की रचना अपने कवि-व्यक्तित्त्व की इकाई मे की थी उसे ही उन्होने 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे सामूहिक रूप दे दिया। समूह के साथ समवेत होकर, समाजको अपने साथ लेकर कवि भविष्य की ओर स्वप्न सञ्चरण कर रहा है, अतीत (छायावाद) वर्त्तमान (प्रगतिवाद) को अन्तर्भुक्त कर आगे बढ रहा है। उसी युग के मानव-समाज की ओर सकेत कर कवि 'उत्तरा' मे कहता है—

"मै ही केवल इस धरती पर
धर रहा नही स्वप्नों के पग,
मै देख रहा, छायाओ के
पदचिह्नो से कम्पित भू-मग।"

काशी,
२७।६।४९

काव्यारम्भ : 'वीणा'

"मेरे चञ्चल मानस पर
पाद-पद्म विकसा सुन्दर
बजा मधुर वीणा निज मात !
एक गान कर मम अन्तर !"

पन्त जी जन्मजात कवि है। उनकी प्रतिभा नैसर्गिक है। ऐसे स्वाभाविक कवि को आत्मविकास के लिए फूलो की थाल की तरह शैशव से ही कूर्माचल प्रदेश का प्राकृतिक प्रागण मिला।

उन दिनो की स्मृति मे कवि ने लिखा है—

"मेरा काव्य-कण्ठ अभी तक फूटा नही था। पर प्रकृति मुझ मातृ-हीन बालक को कवि-जीवन के लिए मेरे बिना जाने ही जैसे तैयार करने लगी थी। मेरे हृदय मे वह अपनी मीठी, स्वप्नो से भरी हुई चुप्पी अकित कर चुकी थी जो पीछे मेरे भीतर अस्फुट तुतले स्वरों मे बज उठी। पहाडी पेड़ो का क्षितिज न जाने कितने ही गहरे-हल्के रग के फूलो और कोपलो मे मर्म्मर कर मेरे भीतर अपनी सुन्दरता की रगीन सुगन्धित तहे जमा चुका था। 'मधुबाला की मृदु बोली-सी' अपनी उस हृदय की गुञ्जार को मैंने अपने 'वीणा' नामक संग्रह मे 'यह तो तुतली बोली मे है एक बालिका का उपहार' कहा है।

पर्वत-प्रदेश के निर्म्मल चञ्चल सौन्दर्य्य ने मेरे जीवन के चारो ओर अपने नीरव सम्मोहन का जाल बुनना शुरू कर दिया था। मेरे मन के

भीतर बरफ की ऊँची चमकीली चोटियाँ रहस्य-भरे शिखरो की तरह उठने लगी थी, जिन पर खड़ा हुआ नीला आकाश रेशमी चँदोवे की तरह आँखो के सामने फहराया करता था। कितने ही इन्द्रधनुष मेरे कल्पना के पट पर रगीन रेखाएँ खीच चुके थे, बिजलियाँ बचपन की आँखो को चकाचौध कर चुकी थी, फेनो के झरने मेरे मन को फुसला कर अपने साथ गाने के लिए बहा ले जाते, और सर्वोपरि हिमालय का आकाश-चुम्बी सौन्दर्य्य मेरे हृदय पर एक महान् सन्देश की तरह, एक स्वर्गोन्मुखी आदर्श की तरह तथा एक विराट व्यापक आनन्द, सौन्दर्य्य तथा तप पूत पवित्रता की तरह प्रतिष्ठित हो चुका था।"

इस प्रकार प्रकृति के सान्निध्य से कवि के भाव-प्रवण शिशु-हृदय को परिपोषण और अनुप्रेरण मिला, तत्पश्चात् साहित्य के अध्ययन से वाणी का व्यञ्जन। इस द्विविध सयोगके सम्बन्ध मे कवि लिखता है—"उधर हिम प्रदेश की प्राकृतिक सुन्दरता मुझ पर अपना जादू चला चुकी थी, इधर घर मे मुझे 'मेघदूत', 'शकुन्तला' और 'सरस्वती' मासिक पत्रिका मे प्रकाशित रचनाओ का मधुर पाठ सुनने को मिलता था जो मेरे मन मे भरे हुए अवाक् सौन्दर्य्य को जैसे वाणी की झकारो मे झनझना उठने के लिए अज्ञात रूप से प्रेरणा देता था। मेरे बडे भाई साहित्य और काव्य के अनुरागी थे। वे खडीबोली मे और पहाडी मे प्राय. कविता भी लिखते थे। मेरे मन मे तभी से लिखने की ओर आकर्षण पैदा हो गया था, और मेरे प्रारम्भिक प्रयास भी शुरू हो गये थे जिन्हे मुझे किसी को दिखाने का साहस नही होता था। तब मै दस-ग्यारह साल का रहा हूँगा। उसके बाद मै अलमोडा हाई स्कूल मे पढने चला गया। अलमोडा मे उन दिनो जैसे हिन्दी की बाढ़ आ गई थी, एक पुस्तकालय की भी स्थापना वहाँ हो चुकी थी और अन्य नवयुवको के साथ मै भी उस बाढ मे बह गया। पन्द्रह-सोलह साल की उम्र में मैंने एक प्रकार से नियमित रूप से लिखना प्रारम्भ कर

दिया था । मै तब आठवी कक्षा में था । हिन्दी-साहित्य में तब जो कुछ सुलभ था उसे मैं बड़े चाव से पढ़ता था । मध्ययुग के काव्य-साहित्य (व्रज-भाषा-साहित्य) का भी थोड़ा बहुत अध्ययन कर चुका था । श्री मैथिली शरण गुप्त की 'भारत-भारती', 'जयद्रथ-वध', 'रंग में भंग' आदि रचनाओं से प्रभावित होकर मै हिन्दी के प्रचलित छन्दों की साधना में तल्लीन रहता था । उस समय के मेरे चपल प्रयास कुछ हस्तलिखित पत्रों ('सुधाकर' और 'हिमालय') में, 'अलमोड़ा अखबार' नामक साप्ताहिक में तथा मासिक पत्रिका 'मर्य्यादा' में प्रकाशित हुए थे । इन तीन वर्षों की रचनाओं को मैं प्रयोग-काल की रचनाएँ कहूँगा ।''

रचनाओं का काल-क्रम

प्रयोग-काल पन्त जी की कविता का अभ्यास-काल है, यह प्राय: उनकी स्कूली शिक्षा का समय है । इस अवधि में उन्होंने शब्दों, छन्दों और भावों का अभ्यास उसी तरह किया जिस तरह नया छात्र अक्षर-पुस्तिका पर अपनी लिखावट मश्क करता है । छठवी-सातवीं कक्षा में गुप्त जी की कविता-पुस्तकों से प्रेरित होकर पन्त जी हरिगीतिका, रोला, वीर आदि प्रचलित छन्दों में कविता करते थे । उस समय वे अपनी प्रकृति-सम्बन्धी तथा वर्णनात्मक रचनाओं में द्विवेदी-युग के कवियों और 'कविता-कलाप' की कविताओं से प्रभावित थे । यह उनके काव्याभ्यास का प्रथम चरग है ।

आठवीं कक्षा (द्वितीय चरण) में वे अपने इष्ट मित्रों को कविता में पत्र लिखते थे । उस समय की उनकी स्वतन्त्र कविता के एकाध विषय ये हैं—'तम्बाकू का धुआँ', 'कागज-कुसुम' । 'इन्दु' में प्रकाशित प्रसाद जी की अतुकान्त रचनाओं से पन्त को शैली मिली थी ।

तृतीय चरण (नवीं-दसवी कक्षा) में पन्त की कविता के विषय भी बदले, शैली भी बदली । कवि अपेक्षाकृत रोमैन्टिक हो गया । यह जय-नारायण हाई स्कूल (बनारस) का समय है ।

'वीणा' का रचना-काल (सन् १९१८–'२०) ही पन्त के काव्याभ्यास का तीसरा चरण है। 'वीणा'-काल में राजर्षि विवेकानन्द, कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर और भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू की कृतियों से पन्त को मानसिक और साहित्यिक प्रेरणा मिली। इसी समय काशी में कालिदास के 'रघुवंश' का भी उन्होंने अध्ययन किया था जिसका बाह्य प्रभाव (आलंकारिक प्रभाव) 'ग्रन्थि' पर पड़ा।

'वीणा' के शब्दों, वाग्वन्धों और शैली में यद्यपि किशोर-वय की अपरिपक्वता है तथापि उसमें पन्त ने काव्य की अन्तर्बाह्य साधना (अनुभूति और अभिव्यक्ति) की आत्मस्थता पा ली है। प्रयोग-काल की रचनाओं में काव्य-कला का तूलिकाभ्यास और स-र-ग-म है, 'वीणा' में चित्र और संगीत की सद्यःउपलब्धि। कवि उसमें कला-जगत का नव्य स्नातक है।

'वीणा' में द्विवेदी-युग की भाषा और छन्द का शेष संस्कार, तथा भावों की नूतन उठान है। शैली की विशेषता मुक्तक की गठन, छन्दों की लय और उद्‌गारों के आलंकारिक प्रतीक में देखी जा सकती है।

'वीणा' में कवि के प्रयोग-काल (अभ्यास-काल) की पूर्णता और विकास-काल की आद्यता है। उस समय कवि यद्यपि 'भावना के सूत्र में शब्दों की गुरियों को अधिक कुशलता से पिरोना सीख रहा था', तथापि शैली में उसका व्यक्तित्त्व आ गया था, वह सध गयी थी। कवि की हृद्‌तंत्री : छवि की उँगुलियों से छन्द-तंत्री में बज उठी थी।

'वीणा' के 'विज्ञापन' में कवि ने लिखा है—"कई कारणों से मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत संग्रह हिन्दी-प्रेमियों को 'पल्लव' से अधिक रुचिकर प्रतीत होगा, क्योंकि यह उतना अच्छा नहीं।"—अभिप्राय यह कि 'वीणा' 'पल्लव' की अपेक्षा सुगम है, उसकी कला पुरानी रुचियों को भी दुर्बोध नहीं जान पड़ेगी।

'वीणा' केवल इसी दृष्टि से सरल, सुगम और सुबोध कही जा सकती है कि वह अल्पवय की रचना है, उसमें हृदय का सारल्य है। किन्तु भावों में भोलापन होते हुए भी अल्प-वय की भावाभिव्यक्ति परिणत-वय की अपेक्षा अधिक गूढ़ होती है। 'वीणा' में टेकनिक की गूढ़ता 'पल्लव' से अधिक है, शैली अति अवगुण्ठित है, रहस्याच्छादित है। कवि के शब्दों में ही कवि से पूछने को जी चाहता है——

अये मृदुल ! यह किसके गीत
गाते हो तुम मधुर, पुनीत ?
प्रकट क्यों न कुछ कहते हो ? क्या
वे इतने हैं गुप्त, परम ?
यह कैसा परिहास, सुषम !

'वीणा' की शैली हिन्दी-कविता के क्रम-विकास में एक आकस्मिक पहेली है। उसका उद्गम-स्रोत कहाँ है ? कवि से पूछने पर इसका कोई प्रत्यक्ष समाधान नहीं मिला। कवि ने इतना ही कहा, "क्या सब कुछ बाहर से ही आता है !" 'युगान्त' की तितली में भी कला की यही जिज्ञासा और उसका अन्तर्मुख उत्तर है——

तुमने यह कुसुम-विहग-लिवास
क्या अपने सुख से स्वयं बुना ?
छाया-प्रकाश से या जग के
रेशमी परों का रंग चुना ?

क्या बाहर से आया, रंगिणि !
उर का यह आतप, यह हुलास ?
या फूलों से ली अनिल-कुसुम !
तुमने मन के मधु की मिठास ?

—चित्रिणि ! इस सुख का स्रोत कहाँ
जो करता नित सौन्दर्य्य-सृजन ?
'वह स्वर्ग छिपा उर के भीतर'
क्या कहती यही, सुमन-चेतन ?

'वीणा'-काल की काव्य-प्रेरणा के सम्बन्ध मे कवि ने लिखा है—
"श्रीमती नायडू और ठाकुर की रचनाओ मे मुझे अपने हृदय मे छिपे सौन्दर्य्य और रुचि की अधिक मार्जित प्रतिध्वनि मिलती थी।"

काशी मे (हाईस्कूल मे) पढते समय पन्त ने बॅगला का थोड़ा बहुत अभ्यास किया था। रवि ठाकुर की 'चयनिका' और 'गीताञ्जलि' का रस लिया था। 'वीणा' का आरम्भ इसी अध्ययन-काल मे हुआ। कहा जा सकता है कि कवि, 'वीणा' की कविताओ मे रवि बाबू की प्रतिभा से लाभान्वित है।

भाव की प्रकृति और शैली की आकृति तो प्रत्येक कवि की अपनी ही होती है, फिर भी ॠतुओ (साहित्यिक वातावरण) का प्रभाव उस पर पडता है ।

अध्ययन, मनन, चिन्तन और सौन्दर्य्य-चयन से पन्त को सृजन-शक्ति (रचना-शक्ति) मिली। 'वीणा' के पहिले ही से कवि को सगीत-वोध भी है। छन्दो की स्वर-साधना मे कवि का सगीत-वोध सहायक हुआ, शब्दो के निर्म्माण मे चित्र-वोध। हाँ, 'वीणा' मे वीणा की अपेक्षा नूपुरो का रुनझुन स्वर अधिक सुनाई पडता है। नूपुरो का आकर्षण कवि को मीरा के नृत्य-सगीत से मिला है।

'वीणा' मे पन्त को कविता की जिस नयी कला का सन्धान मिला उसका विकास अग्रेजी कवियो (शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स, टेनीसन) के काव्य-साहचर्य्य से 'पल्लव' मे हुआ।

'पल्लव' के विकास का अकुर 'वीणा' मे है। 'पल्लव' की 'छाया', 'स्वप्न', 'मौन निमन्त्रण' का सकेत-विन्दु 'वीणा' मे मिलता है।

'पल्लव' की अधिकाश रचनाएँ यद्यपि 'वीणा' के बाद की है तथापि दोनो के रचना-काल मे द्वाभा की तरह युग-सन्धि है। 'वीणा'-काल की कई कविताएँ 'पल्लव' मे है। जो कविताएँ अति अस्फुट थी वे 'वीणा' मे रह गयी है, अपेक्षाकृत प्रस्फुटित रचनाएँ 'पल्लव' मे चली गयी है; केवल 'प्रथम रश्मि' अपनी विशिष्टता से 'वीणा' मे 'पल्लव' के प्रस्फुटित काव्य-प्रभात ('रुधिर से फूट पड़ी रुचिमान, पल्लवो की यह सजल प्रभात') की पूर्व-सूचना देती है। 'वीणा' का रचना-काल 'पल्लव' का भूमिका-काल है।

'वीणा' के बाद 'पल्लव' का काव्य-विकास एकाएक नही हो गया।

'वीणा' के बाद जिस काव्य-क्रम से 'पल्लव' का प्रस्फुटन हुआ वह पाठको के सामने नही आ पाया। दोनो के बीच की एकाध कविताएँ पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुई थी, (जैसे, 'प्रथम हम ले बच्चो के साँस. . . युवाओ के छोडे उच्छ्वास', अथवा, 'अरी भोर की मधुर झकोर! इन शयालु पलको पर डोल!'), किन्तु अधिकाश कविताएँ लुप्त हो गयी है। सन् १९२० मे हिन्दू होस्टल मे पन्त की दो सुन्दर कविता-पुस्तके जल गयी—'नीरव तार' और 'कलरव'। सन् १९२९ मे पन्त की अस्वस्थता के कारण उनकी कविता की कई कापियाँ और उनके स्वाध्याय की कई पुस्तके खो गयी।

अब भी कुछ रचनाएँ साहित्यिको (सर्वश्री मैथिलीशरण, रायकृष्णदास, रामचन्द्र टण्डन, जैनेन्द्रकुमार, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन) के पास है। इन्ही रचनाओ में 'सखी' नामक सौ पक्तियो का एक खण्डकाव्य भी है।

नवोन्मेष

'वीणा' के प्रारम्भिक पृष्ठो में हिन्दी-कविता के दो अध्याय सामने आ जाते है:—

(१) यह अति अस्फुट, ध्वन्यात्मक है
बिना व्याकरण, बिना विचार।

(२) इन नयनो को समझाओ,
इन्हे न लडना सिखलाओ,
प्रेयसि कविते! हे निरुपमिते!
कमल-कली मे इन्हे डाल कर
हाय! न यो ही ढुलकाओ
अज्ञाता की केश-राशि मे
इन्हे न कस-कस बँधवाओ।

प्रथम उद्गार मे द्विवेदी-युग की भाषा-सम्बन्धी कट्टरता के प्रति प्रच्छन्न असन्तोष है, दूसरे उद्गार मे रीति-काल की संकीर्ण रूढि-प्रियता के प्रति व्यंग्य।

द्विवेदी-युग के दृष्टिकोण के प्रति छायावाद का मतभेद 'पल्लव'-काल मे प्रकट हुआ। आचार्य्य द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' मे कल्पित नाम से एक लेख लिख कर छायावाद के कवियो पर यह लाञ्छन लगाया था कि उनमे अध्ययन, अनुभव और प्रतिभा का अभाव है और भाषा का अज्ञान। प्रसाद, निराला और पन्त ने द्विवेदी जी के इस मन्तव्य का विरोध किया। पन्त ने एक भाव-गीत ('विहंगम! तेरा कैसा गान?") लिख कर छायावाद के आत्मोन्मेष अथवा स्वतःप्रसूत स्वभाव का सकेत किया था।

रीति-युग और द्विवेदी-युग, दोनो का पन्त की प्रतिभा मे आभार है। उनकी कलात्मकता ने इन दोनो के भीतर से भी सुरुचि का सकलन किया है। पन्त-द्वारा प्रयुक्त सखि, सजनि और अलि व्रजभाषा की याद दिला देती है। हाईस्कूल मे पढते समय पन्त ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा-परीक्षा के लिए स्वाध्याय किया था। परीक्षा नही दी, किन्तु उसी स्वाध्याय-काल मे उन्होने अलकार और पिगल पढा, व्रजभाषा के

मध्यकालीन कवियो की रचनाएँ भी पढी। देव, पद्माकर, बिहारी और मतिराम की कविताओ ने पन्त को शब्द-माधुर्य्य की ओर प्रेरित किया, इन कवियो का पन्त की कला पर यथेष्ट प्रभाव है। शब्दो और भावो की जो सुकुमारता व्रजभाषा मे छुई-मुई की तरह है वह खडीबोली का आधार पाकर पन्त की कविता मे वेतस-लता की तरह सुदृढ हो गयी है। उसमे आत्मनिर्भरता आ गयी है।

पन्त एक सजग कलाकार है। जीवन और साहित्य मे वे स्वस्थ प्रभाव का स्वागत करते है किन्तु अस्वाभाविक दबाव, चाहे वह प्रभुत्त्व का हो चाहे गुरुत्त्व का, उसे मनोविकास के लिए बाधक समझते है। 'वीणा' मे मानसिक दासता से मुक्ति और प्रतिभा के स्वतन्त्र प्रस्फुरण की आकाक्षा है। कवि अपनी दृष्टि और अपनी लेखनी का स्वावलम्बन चाहता है—

'आँखो ने जो देखा, कर को
उसे खीचना सिखलाओ।'

नवीन वातावरण और नवीन आलम्बन देने के लिए कवि कविता का आह्वान प्रकृति के उर्व्वर क्षेत्र मे करता है—

'नव वसन्त ऋतु मे आओ,
नव कलियो को विकसाओ
प्रेयसि कविते! हे निरुपमिते!'

'वीणा' मे कवि ने स्वावलम्बन का जो पद-विक्षेप किया है उसमे यद्यपि परिपुष्टता नही है (किशोर-वय से प्रौढता की आशा की भी नही जा सकती), तथापि उसकी अस्फुट आत्मा की अपनी स्वाभाविक गति-यति है।

नैवेद्य

'वीणा' के पद-विन्यास और शब्द-प्रयोगो मे यत्र-तत्र नव-किसलय की-सी मनोहर सुकोमल अविकचता है—

'मा ! अपने जन का पूजन
स्वीकारो पत्रम्-पुष्पम्'

'स्वीकारो' शब्द मे कितना आत्मीयतापूर्ण सारल्य है, भोलेपन की कैसी तुतलाहट है !

'वीणा' शिशु-काव्य है। उसके लघु-लघु मुक्तको मे कवि के विविध मनोवृत्त्यात्मक क्षणो के ज्योति-विन्दु (तुहिन-विन्दु) है।

पन्त की काव्यकृतियों मे 'वीणा' का वही साहित्यिक स्थान है जो रवीन्द्रनाथ की रचनाओ मे 'क्रेसेण्ट मून' का। दोनो मे बाल-भावना प्रधान है।

कवि कहता है, "वीणा-काल मे मैंने प्रकृति की छोटी-मोटी वस्तुओ को अपनी कल्पना की तूली से रँग कर काव्य की सामग्री इकट्ठी की है। फल-पत्ते और चिडियाँ, बादल,इन्द्रधनुष, ओस-तारे, नदी-झरने, उषा-सन्ध्या, कलरव, मर्म्मर और टलमल जैसे गुडियो और खिलौनो की तरह मेरी बाल-कल्पना की पिटारी को सजाये हुए है।"

कवि की इस 'पिटारी' मे अमूल्य भाव-रत्न है। ये अश्रु-तरल है। इनमे क्रीडा-कलरव नहीं, आत्मद्रव है। कवि की यही कामना है—

'निज चरणो मे पिघल-पिघल
स्नेह-अश्रु बरसाने दे !'

माँ की महिमा के सम्मुख 'वीणा' का कवि अपनी अकिञ्चनता मे साश्रु नयन है—

> 'जो न अश्रु-अञ्जलि देता हो
> वह क्योंकर सुख पायेगा?'

वि ठाकुर के 'सकल अहंकार हे डुबाओ आमार चोखेर जले'–जैसा आत्मपरिष्कार का भाव 'वीणा' मे है—

> 'करुणा-क्रन्दन करने दो!
> अविरल स्नेह-अश्रु-जल से मा!
> मुझको मति-मल धोने दो!'

मोह-मुक्त उज्ज्वल आत्मदर्शन की अभिलाषा कई कविताओं मे है।

'वीणा' आदर्श-प्राण भक्ति-काव्य है। उसमे सरलता, शुभ्रता, सुन्दरता की आकाक्षा, विश्व की अदृश्य शक्ति के प्रति विश्वास और मानवीय सहानुभूति का निश्वास है। सब मिला कर 'वीणा' मे जीवन का अद्वैत दर्शन है।

कवि के अध्यात्म में विरक्ति नही, लोकानुरक्ति है; यहाँ तक कि मनोविकारो को भी वह जीवन की साधना का अलंकरण बना लेना चाहता है—

> "विश्व-प्रेम का रुचिकर राग,
> पर-सेवा करने की आग,
> इसको सन्ध्या की लाली-सी
> मा! न मन्द पड़ जाने दे,
> द्वेष-द्रोह को सान्ध्य जलद-सा
> इसकी छटा बढाने दे।"

'वीणा' मे प्रकृति विश्वजननी के आसन पर विराजमान है। वह सृष्टि की सर्वव्याप्त सत्ता है—

'तेरी सुखमय सत्ता जग को
कहाँ नही जतलाती है?
जहाँ छिपाती है अपने को
मा! तू वही दिखाती है!"

उसी व्यक्त और अव्यक्त सत्ता के प्रति एकाग्र होने के लिए कवि 'मोह, मदन, मद की बलि' दे देना चाहता है।

'वीणा' के गीतो मे पवित्र माधुर्य्य (कौमार्य्य) है। वह सचमुच कवि के 'मनोयोग की वीणा' है। उसमे शिशु का परमहस-कण्ठ है, बालयति का गान है। कवि गाता है—

विटप-डाल मे बना सदन,
पहन गेरुवे रँगे वसन,
विहग-बालिका बन इस वन को
तेरे गीतो से भर दूँ—
सन्ध्या के उस शान्त समय!

'वीणा' विश्वजननी के चरणो मे कवि का निर्म्मल जीवन-नैवेद्य है। मातृरूपा प्रकृति की सरला आत्मा को आकार देने के लिए कवि की काव्यात्मा बालिका के रूप मे प्रणत है। कुसुम-कलिका, विहग-बालिका, अलिबाला, इन सब मे कवि की आत्मपरिणति है।

'वीणा' की बालिका पुजारिणी ही नही, भाव-विहारिणी भी है। वशी की ध्वनि पर वह मोहित हो उठती है, लता-कुन्ज मे सुखद स्वप्न देखती है, किन्तु अभी आत्मविभोर है, यौवन से अपरिचित है—

"कुन्जविहारी से कहती हूँ
कभी—मधुप! निज मादक राग

इस कलिका के ढिग मत गाओ,
नही जानती यह अनुराग!"

'पल्लव' में इसी वालिका का वयोविकास हो जाता है—

"यौवन के मादक हाथो ने
उस कलिका को खोल अजान,
छीन लिया हा! ओस-विन्दु-सा
मेरा मधुमय, तुतला-गान।"

काशी,
शुक्रवार
७।१०।४९

प्रणय-काव्य

'वीणा' में कवि ने कहा था—

बालकाल मे जिसे जलद से
कुमुद-कला ने किलकाया,
तारावलि ने जिसे रिझाया,
मृदु स्वप्नों ने सुहलाया,
मारुत ने जिसकी अलको मे
चञ्चल चुम्बन उलझाया,
उसे आज अपनी ही छवि में
केवल बाले ! न लुभा ले,—
उनका भी तो है कुछ भाग !
—(सन् १९१८)

'वीणा' का यही उद्‌गार 'पल्लव' मे भी प्रतिध्वनित है—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड प्रकृति से भी माया,
बाले ! तरे बाल-जाल मे कैसे उलझा दूँ लोचन ?
भूल अभी से इस जग को !
कोयल का वह कोमल बोल
मधुकर की वीणा अनमोल,
कह, तब तेरे ही प्रिय स्वर से कैसे भर लूँ, सजनि ! श्रवण ?
भूल अभी से इस जग को !

ऊषा-सस्मित किसलय-दल,
सुधा-रश्मि से उतरा जल,
ना, अधरामृत ही के मद मे कैसे बहला दू जीवन !
भूल अभी से इस जग को !
–(सन् १९१८)

यह प्राकृतिक अनुराग ही कवि के काव्य का मूलराग है ।

कवि ने लिखा है—"कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मै घटों एकान्त मे बैठा, प्राकृतिक दृश्यो को एकटक देखा करता था, और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर, एक अव्यक्त सौन्दर्य्य का जाल बुन कर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था । जब कभी आँखे मूद कर मैं लेटता था, तो वही दृश्य-पट चुपचाप मेरी आँखो के सामने घूमा करता था। अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज मे सुदूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी, ये हरित-नील-धूमिल, कूर्माचल की छायाकित पर्वत-श्रेणियाँ, जो अपने शिखरो पर रजत-मुकुट हिमाचल को धारण की हुई है और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और ऊपर उठाई हुई हैं, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव-संमोहन के आश्चर्य्य मे डुबा कर कुछ काल के लिए भुला सकती है। ...."

प्रकृति की सदेह छवि

किशोरावस्था के बाद कवि ने देखा, हिमालय की अधीश्वरी पार्वती-प्रकृति की शोभा केवल पञ्चभूतो मे विकीर्ण ही नही है, बल्कि पञ्चभूतो से विनिर्म्मित किसी शैलबाला की सुकुमार छवि मे सदेह भी है । इसीलिए कवि के जीवन मे वालिका के प्रणय को भी स्थान मिल गया । कवि की प्रेयसी वालिका मे महीयसी प्रकृति की ही प्रतिच्छवि है—

उषा का था उर मे आवास,
मुकुल का मुख मे मृदुल विकास;
चाँदनी का स्वभाव मे भास,
विचारो मे बच्चो के साँस!

विन्दु मे थी तुम सिन्धु अनन्त,
एक सुर मे समस्त सगीत,
एक कलिका मे अखिल-वसन्त,
धरा मे थी तुम स्वर्ग पुनीत।

—('आँसू', 'पल्लव')

उसके अञ्चल मे 'शत वसन्त, शत ग्रीष्म, शरद' का वास है।

कवि और उसकी प्रेयसी, दोनो का अन्तर्बाह्य विकास प्रकृति के आँगन मे ही हुआ है। दोनो हिमालय के तपोवन के ही स्वाभाविक सुमन है। अवस्था-क्रम से प्रकृति के जगत् मे जब प्रवृत्ति का प्रस्फुटन हुआ तो स्वभावत: कवि के हृदय मे नव-यौवन का माधुर्य्य भी जगा।

'ग्रन्थि', 'उच्छ्वास' और 'आँसू' कवि के प्रणय-काव्य है। प्रकृति के पट-दृश्य के साथ इन काव्यो की भाव-कथा सश्लिष्ट है।

ग्रन्थि

'ग्रन्थि' भावात्मक प्रणय-गल्प है। कवि ने कल्पना को सगिनी बना कर अतीत की मधुर स्मृति को जगाया है—

वह मधुर मधुमास था, जब गन्ध से
मुग्ध होकर झूमते थे मधुप-दल;
रसिक पिक से सरस तरुण-रसाल थे,
अवनि के सुख बढ़ रहे थे दिवस-से।

किन्तु इस सुख का दिवसावसान हो जाता है और आनन्द-विहार की नौका ताल मे डूब जाती है—

तरणि के ही सग तरल तरग से
तरणि डूबी थी हमारी ताल मे;
सान्ध्य नि:स्वन से गहन जल-गर्भ मे
था हमारा विश्व तन्मय हो गया।

बुदबुदे जिन चपल लहरो मे प्रथम
गा रहे थे राग जीवन का अचिर,
अल्प पल, उनके प्रबल उत्थान मे
हृदय की लहरें हमारी सो गयी।

. . . . .

जब विमूर्च्छित नीद से मै था जगा
(कौन जाने किस तरह ?) पीयूष-सा
एक कोमल सम-व्यथित नि श्वास था
पुनर्जीवन - सा मुझे तब दे रहा।

. . . . . .

शीश रख मेरा सुकोमल जाँघ पर,
शशि-कला-सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान-मुख मेरा, अचल,
सदय, भीरु, अधीर, चिन्तित दृष्टि से।

. . . . . .

नित्य ही मानव तरगो मे अतल
मग्न होते है कई, पर इस तरह
अमृत की जीवित-लहर की बाँह मे
जगत में कितने अभी भूले भला ?

'ग्रन्थि' की प्रणय-कथा कवि की सुकुमारता के अनुकूल ही है, वह 'लोल लहरो पर कलापति से लिखी' हुई है। इसकी विशेषता कहानी की शैली मे है; घटना की अपेक्षा इसमे नाटकीय सकेतो की सूक्ष्मता है।

नायिका अपनी लज्जा-सुलभ मर्य्यादा मे मौन-दृगी है, नायक अपनी अधीरता मे मुखर। एक श्रवण-सहृदया है, दूसरा उद्वेलित उद्गायक। अभिनय की दृष्टि से दृश्य-योजना सुन्दर है। नायक की विकलता से नारी की संवेदनशीलता भी उत्कण्ठित हो उठती है। किन्तु दृष्टि की तरह ही उसके कण्ठ मे भी सयम है—

निज पलक, मेरी विकलता, साथ ही
अवनि से, उर से मृगेक्षिणि ने उठा,
एक पल, निज स्नेह-श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी।
'नाथ!' कह अतिशय मधुरता से दबे
सरस स्वर मे, सुमुखि थी सकुचा गयी;
उस अनूठे सूत्र ही मे हृदय के
भाव सारे भर दिये, ताबीज-से।

इस प्रकार नायक-नायिका के हृदय मे प्रणय की प्राण-प्रतिष्ठा हो जाती है। उनके प्रेम मे अन्त साक्ष्य है। उस मौन कण्ठ का एक शब्द निःसन्देह ताबीज-सा ही है, मन्त्र-सा।

नायिका की अन्तर्वेदना एकान्त मे भी मौन है, अव्यक्त है। ध्यानस्थ नायिका वातायन से उद्यान की ओर देख रही है। यहाँ पर कवि ने एक मार्म्मिक दृश्य और मनोहर वातावरण की अवतारणा की है—

भीग मालिन की तरल जल-धार से
एक मधुकर मूल मे गिर कर, सजल,

भग्न आशा-से छदो को पोछ कर
पुनः उडने को विकल था हो रहा।
मन्द मारुत से वसन्ती झूम कर
झुक रही थी तरल तिरछी पाँति मे
ललित लोल उमग-सी लावण्य की,
मानिनी-सी, पीन-यौवन-भार से।

तूल-सी मार्जार-बाला सामने
निरत थी निज बाल-क्रीडा मे, कभी
उछलती थी, फिर दुबक कर ताकती,
घूमती थी साथ फिर-फिर पूँछ के।
मन्द मुसकाती, चपल-भ्रू-वीचि मे
हृदय को प्रतिपल डुबाती, आज भी
सगिनी सखियाँ वहाँ आयी, सहज
हास औ' परिहास-निरता, दोलिता।

देख कर अपनी सखी को पलक-सी
ध्यान-लग्ना, एक ने सकेत कर,
यो वयस्का से दबे स्वर मे कहा—
'मग्न है नव-कमल-वन मे हसिनी!'
लक्ष्य कर मार्जार-बाला को पुन.
दूसरी बोली—'अरी, ये खेल अब
खो चुके है, विभव सब तारुण्य के—
मुग्ध, तिरछे, चपल नयनो के लिए।

प्रथम भय से मीन के मधुबाल जो
थे छिपे रहते गहन-जल मे, तरल

ऊर्म्मियो के साथ क्रीड़ा की उन्हें
लालसा अब है विकल करने लगी।
कमल पर जो चारु दो खञ्जन, प्रथम
पख फडकाना नही थे जानते,
चपल चोखी चोट कर अब पख की
वे विकल करने लगे है भ्रमर को।

इन पक्तियो मे स्नेह की सरस फुहियाँ है।

सखियो के बीच मे 'ग्रन्थि' की नायिका गोपिका है, वह अपने हृदय को छिपाना जानती है, सखियो के व्यग्य से विचलित न होकर वह अपनी चातुरी से उन्हे ही परिहास का लक्ष्य बना देती है।

उस प्रेम-गोष्ठी मे सभी सखियाँ अपनी-अपनी मर्म्मकथा सुनाती है। एक सखी कवियो की तरह भावुक है। वह प्रकृति के दृश्यो से अपने विधुर हृदय को व्यक्त करती है—

पकड उड़ते दीप वर्षा-काल के
रख हथेली पर, अँधेरी रात को,
मै नियति की रेख भी हूँ पढ चुकी
सजनि! उनकी खोजती लघु ज्योति मे।

... ...

हरित प्रिय छोटे पगो से जगत की
वेदिका को पार करता देख कर,
एक प्रात:, दूब से भी मैं बहिन!
पग सहस्र मिला चुकी हूँ, ओस-से।

... ...

विरहिणी की कल्पना कर, एक दिन,
एक पीले पात मे अपनी दशा,

विविध यत्नो से सुला कर, मै उसे
बार-बार लगा चुकी हूँ हृदय से।

. . . . . .

स्वप्न के सस्मित अधर पर, नीद मे,
एक बार किसी अपरिचित सॉस का
अर्ध-चुम्बन छोड मै झट चौक कर
जग पडी हूँ अनिल-पीडित लहर-सी।

. .

मधुकरी की मधुभरी वीणा चुरा
गीत गाती हूँ कुसुम-सुकुमार के,
सुरसरी की धार मे हूँ ढूँढती
शक्ति प्रियतम की अमित उपकारिणी।

इस भाव-पूर्ण उद्‌गार को सुन कर एक प्रगल्भा सखी (जो मानो मध्यकाल की नायिका है) प्रेम का स्थूल पाठ सामने रखती है। कहती है—

मन्द चल कर, रुक अचानक, अधखुले
चपल पलको से हृदय प्राणेश का
गुदगुदाया हो नही जिसने कभी,
तरुणता का गर्व क्या उसने किया?

इस प्रेम-काव्य में श्रृंगारिक युग और छायावाद-युग की रुचिरता का सम्मिश्रण है। छायावाद का कलाकार होकर भी 'ग्रन्थि' मे कवि ने मध्ययुग की श्रृगारिकता को उसी तरह अपनाया है जिस तरह पाश्चात्य नागरिक कभी-कभी प्रीति-सम्मेलनो मे पुरातन परिधानो को सामाजिक कुतूहल के लिए पहनते है।

छायावाद की अतीन्द्रिय अनुभूति से कवि अपरिचित नही है, किन्तु 'ग्रन्थि' मे उसकी तरुण आकाक्षा अतृप्त है। वह कहता है—

अनिल-कल्पित कमल-कोमल गात को
अक भर कर रसिक! किसकी चाह की
बॉह तृप्त हुई? तुहिन-जल से हसित
किसलयो को चूम किसका मन बुझा?

'अनिल-कल्पित' शब्द मे छायावाद के वायवी सौन्दर्य (हवाई सुन्दरता) का सकेत है। उसे आकाश-कुसुम भी कह सकते है। मीरा के 'गगन-मण्डल पर' पिया की बिछी सेज की तरह ही छायावाद के आकाश-कुसुम का भी अपना एक अस्तित्त्व है। 'ग्रन्थि' का कवि जानता है कि पार्थिव सौन्दर्य्य अपनी अस्थिरता से छायावाद की सूक्ष्मता की ओर ही अनुप्रेरित करता है—

अह, सुरा का बुलबुला यौवन, धवल
चन्द्रिका के अधर पर अटका हुआ,
हृदय को किस सूक्ष्मता के छोर तक
जलद-सा है सहज ले जाता उड़ा।

कवि स्थूल और सूक्ष्म दोनो को चाहता है, इहलोक और अन्तर्लोक के लिए।

सौन्दिर्य्य और प्रेम की स्थूलता मे भी कवि की सूक्ष्म सुरुचि सजग है, तभी तो वह कहता है—

प्रणय की पतली अँगुलियाँ क्या किसी
गान से विधि ने गढी, जो हृदय को,
याद आते ही, विकल सगीत मे
बदल देती है, भुला कर, मुग्ध कर!

'ग्रन्थि' दुःखान्त है। विरह मे कवि का अन्तर्जगत् अधिक जागृत हो उठा है। सौन्दर्य्य और प्रेम की ऐहिक विफलता के बाद कवि के उद्गार

विक्षिप्त हो गये है। इस विक्षिप्तता मे सामाजिक ओर नैतिक विद्रोह है, किन्तु जीवन से विरक्ति नही, एक मधुर शान्ति है—

आज मै सब भाँति सुख-सम्पन्न हूँ
वेदना के इस मनोरम विपिन मे,
विजन छाया मे द्रुमो की, योग-सी
विचरती है आज मेरी वेदना।
विपुल कुञ्जो की सघनता मे छिपी
ऊँघती है नीद-सी मेरी स्पृहा,
ललित लतिका के विकम्पित अधर मे
काँपती है आज मेरी कल्पना।

'विजन-छाया' मे कवि की वनवासिनी योगिनी-सी वेदना की तितिक्षा है, 'विपुल कुञ्जो की सघनता' मे घनीभूत आकाक्षा है, 'लतिका' के विकम्पित अधर में' प्रेम की स्वप्निल प्रतीक्षा है। इन विरोधी वृत्तियो मे ही प्रेम का व्यक्तित्त्व सुसघटित है। उसमे मनोयोग भी है, मनोरथ भी। प्रकृति के प्रतीको से कवि ने अमूर्त्त मनोवृत्तियो को बड़ी सजीवता से दृग्गोचर कर दिया है।

'ग्रन्थि' के अन्तिम अश मे मनोरागों का चित्राकन है। सौन्दर्य्य, प्रेम, स्मृति, नियति, आशा, उन्माद, आह, अश्रु, वेदना इत्यादि के सम्बन्ध मे कवि की लेखनी किसी कुशल चित्रकार की तूलिका बन गई है, प्रत्येक उद्‌गार साकार भाव बन गया है। आशा का नयन-मनोरम दिव्य रूप देखिये—

देवि ! ऊषा के खिले उद्यान में
सुरभि वेणी में भ्रमर को गूँथ कर,
रेणु की साड़ी पहन, औ' तुहिन का
मुकुट रख, तुम खोलती हो मुकुल को !

'नीहार' के प्रसग मे पन्त ने महादेवी का कवि-परिचय इन शब्दो मे दिया था—"नीहार की कवि वस्तु-जगत् की अनुभूति नही रखती, भावना द्वारा ही वे वस्तुओ को परखती हैं। मेघ-मरुत्, पुष्प-लहर आदि सभी इस जगत के उपकरण मनोवेगो से रञ्जित होकर उनके सामने आते है, मनोराग की आँखो से ही वे उसकी कल्पना करती है।......"

——यही बात छायावाद के प्रत्येक भाव-प्रवण कवि के लिए कही जा सकती है। उसकी कविता मे चाहे वस्तु-जगत् की अनुभूति न मिले, किन्तु जीवन मे वह वस्तु-जगत् से अनभिज्ञ नही रहता। इस हृदय-हीन ससार मे वस्तु-जगत् का भुक्तभोगी भला कवि से अधिक कौन हो सकता है! वस्तु-जगत् को वह अपना वलिदान देता है, भाव-जगत् को वरदान; इसीलिए सृष्टि इतनी सुघर है।

* * *

'वीणा' के बाद 'ग्रन्थि' देखने से ज्ञात होता है कि कवि पूर्व-परिचित चित्र-पट को छोड़कर कुछ देर के लिए किसी अन्य चित्र-पट पर अपनी तूलिका का परीक्षण करने लगा। 'ग्रन्थि' से तत्कालीन साहित्यिक वातावरण का परिचय मिलता है। एक ओर ब्रजभाषा मे रीतिकाल की कला चली आ रही थी, दूसरी ओर खडीबोली मे छायावाद की कला अतुकान्त मे रीतियुग से मुक्त होने का प्रयत्न कर रही थी। 'ग्रन्थि' मे कवि ने विगत और आगत कला का अपने ढग से समन्वय किया, अतुकान्त को अलकृत कर दिया। अन्त्यानुप्रास के अभाव मे भी शब्दानुप्रासो से भाषा मे सगीत आ गया है। पद-प्रवाह मे यद्यपि भाराक्रान्त यौवन की मन्थर गति है, तथापि उसमे यथास्थल माधुर्य्य भी है और ओज भी।

'ग्रन्थि' के प्रणयन मे कवि ने शृंगारिककविता के उपकरणों का पूर्ण उपयोग किया है, किन्तु पुराने उपकरणो को उसने नवीन सौन्दर्य्य दे दिया है। यथा—

इन्दु पर, उस इन्दुमुख पर साथ ही
थे पडे मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे,—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था !
बाल-रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच मे,
अचल रेखाकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य मे ।

इस चित्र मे वही मध्ययुगीन मुख है, वही अलक है, वही अलकार है, किन्तु उपमा और रूपक ने नूतन आकार-प्रकार पा लिया है ।

रसोद्दीपन की तरह उपमा के लिए भी काव्य मे कुछ उपादान रूढ हो गये हैं । 'ग्रन्थि' मे कवि ने नये उपमान और उपमेय दिये है, वे जीवन के अनुभूत क्षणो को प्रत्यक्ष करते है। कवि की नयी उपमाएँ मनोरागो और मनोभावो को व्यञ्जित करती है । यथा—

सजनि ! पतले पत्र-से चित्रित जलद
व्योम मे छाये हुए थे, तनिक भी
वृष्टि की आशा न थी, मै पवन के
गीत अञ्जल मे मधुर, थी भर रही,
जब अचानक अनिल की छवि मे पला
एक जल-कण, जलद-शिशु-सा, पलक पर
आ पड़ा सुकुमारता-सा, गान-सा,
चाह-सा, सुधि-सा, सगुन-सा, स्वप्न-सा ।

इन पक्तियो मे वातावरण और जीवन की सरलता, सरसता, सजीवता है ।

इस तरह की सूक्ष्म उपमाएँ कवि की रचनाओं में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। 'पल्लव' की 'छाया' में तो उपमा और कविता ही उपमा बन गयी है—

तरुवर की छायानुवाद-सी,
उपमा-सी, भावुकता-सी,
अविदित, भावाकुल भाषा-सी,
कटी-छँटी नव-कविता-सी ।

छाया की तरह ही जहाँ अनुभूति केवल बोधगम्य रहती है वहाँ उपमाएँ ऐसी ही सूक्ष्म और संवेद्य हो जाती है ।

कवि की उपमाओं में केवल रूप-चित्र ही नहीं, ध्वनि और व्यञ्जना भी है। आचार्य्य शुक्ल जी ने कहा है कि लक्षणा का पेट बहुत बड़ा है, किन्तु पन्त जी की उपमा का उर इतना विशाल है कि उसी में सभी अभिव्यक्तियों का समावेश हो जाता है ।

कवि ने यत्र-तत्र शब्दों की लय से भी रस को साक्षात् किया है, यथा—

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह !—अहह, कराहते इस शब्द को
किस कुलिश की तीक्ष्ण, चुभती नोक से
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा !

इसमें जीवन के सूनेपन और कराहने का भाव शब्दों की ध्वनि से व्यञ्जित है। अश्रुओं में कुलिश की तीक्ष्ण चुभन से वेदना की सजलता, कोमलता का मर्म्मान्तिक परिचय मिलता है ।

'वीणा' के बाद 'ग्रन्थि' में पन्त की शब्द-सम्पत्ति और राग-शक्ति बढ़ी।

'ग्रन्थि' का लेखन काल वही है जब कवि मध्यकाल और द्विवेदी-युग की कविता का अध्ययन कर रहा था। 'ग्रन्थि' में इन युगों का यत्किञ्चित् प्रभाव किन्हीं पंक्तियों में देखा जा सकता है। 'रघुवंश' के अध्ययन से

भाषा म सस्कृत शब्दो का बाहुल्य है । अलंकार और शैली की नवीनता से ज्ञात होता है कि कवि अंग्रेजी रोमान्टिसिज्म से परिचित हो चुका था ।

'वीणा' में कवि-प्रतिभा का कैशोट था, 'ग्रन्थि' मे तारुण्य, उसमे कवि का रस-मय हृदय आषाढ की नवघटा की भाँति उमड़ पड़ा था ।

'उच्छ्वास' और 'आँसू'

'उच्छ्वास' और 'आँसू' मे घटा की गम्भीरता भी है और विद्युत की चमक भी। 'ग्रन्थि' मे कवि बाहर से चञ्चल और भीतर से गम्भीर है, 'उच्छवास' और 'आँसू' मे बाहर से गम्भीर और भीतर से चञ्चल । उसकी गम्भीरता मे चञ्चलता का ही नेत्रोन्मीलन है, वह 'प्रभा के पलक मार' कर 'गूढ गर्जन' करता है । 'ग्रन्थि' मे जुगनुओ की ज्योति है, 'उच्छ्वास' और 'आँसू' मे बिजलियो की छटा ।

'ग्रन्थि' मे हृदय भीतर से बँधा हुआ है, उसमें—

'.....बहुत दिन से बँधे
हृदय मे संयाम गोपन से पला
प्रेम सम्प्रति फूटना है चाहता ।'

किन्तु 'उच्छ्वास' और 'आँसू' में प्रेम का उत्स उत्साह से बह चला है । नव-वय का संकोच परिणत-वय में मुक्तकण्ठ हो गया है । दृष्टि में, गति मे, सौन्दर्य्य में, यौवन का ओज और आवेग आ गया है—

गिरि का गौरव गा कर झर् झर्
मद से नस-नस उत्तेजित कर,
मोती की लड़ियो-से सुन्दर
झरते है झाग-भरे निर्झर ।

(उच्छ्वास)

'बीणा' का कौमार्य्य 'ग्रन्थि' के प्राकृतिक वातावरण से जीवनी शक्ति पाकर 'उच्छ्वास' और 'आँसू' मे यौवन का निखार पा गया है, मानों कवि के काव्य-स्रोत में वन्य प्रदेश का रसायन घुल-मिल गया।

अधिकांशत. 'वीणा' मे, अशत. 'ग्रन्थि' मे यत्र-तत्र जो वयसुलभ अनगढपन (प्राकृतपन) है वह 'उच्छ्वास' और 'आँसू' मे सुविन्यस्त केशकलाप की तरह सुघड (सुसस्कृत) हो गया है। किशोरावस्था के कण्ठ की तुतलाहट परिष्कृत हो गयी है। शब्दो, छन्दो और भावो में खिले अगो का सामञ्जस्य आ गया है। शब्द साँचो मे ढले, छन्द रागो मे पले, भाव रसों मे पगे है।

'ग्रन्थि' में कवि ने अलकार (चित्र-भाषा) और अतुकान्त (मुक्त-प्रास) की दिशा मे काव्य-कला का प्रयोग किया था। उस प्रयोग मे हृदय का सारल्य और स्वभाव का चापल्य था। भावों में अन्त.करण था और कला मे बहिरग।

'ग्रन्थि' के बाद 'उच्छ्वास' और 'आँसू' मे अलकार और छन्द, काव्य की अन्तरंग कला बन गये है, वे भाव से भी अधिक प्रभावशाली हो गये हैं।

'ग्रन्थि' में अलकार जलद-पख की तरह उभरे हुए थे, 'उच्छ्वास' और 'आँसू' मे वे नीलिमा की तरह अन्तर्लीन हो गये है, वे हृदय को भीतर की गहराई से व्यक्त करते है। उनमें आन्तरिक अभिव्यक्ति है, इसीलिए—

गिरा हो जाती है सनयन,
नयन करते नीरव भाषण,
श्रवण तक आ जाता है मन,
स्वयं मन करता बात श्रवण।

('उच्छ्वास')

कही-कही कवि की दृष्टि (अनुभूति) और उसकी आलंकारिक सृष्टि (अभिव्यक्ति) बहुत ही सूक्ष्म हो गयी है—

सरलपन ही था उसका मन
निरालापन था आभूषन,
कान से मिले अजान-नयन,
सहज था सजा सजीला-तन ।

सुरीले- ढीले अधरो बीच
अधूरा उसका लचका-गान
विकच बचपन को, मन को खीच,
उचित बन जाता था उपमान ।

छपी-सी, पी-सी मृदु मुसकान
छिपी-सी, खिची सखी-सी साथ,
उसी की उपमा-सी बन, मान
गिरा का धरती थी, धर हाथ ।

रँगीले, गीले फूलो-से
अधखिले भावो से प्रमुदित
बाल्य-सरिता के कूलो से
खेलती थी तरंग-सी नित ।
—इसी मे था असीम अवसित !

('उच्छ्वास')

'ग्रन्थि' की तरह 'उच्छ्वास' में भी कवि ने शब्दो की लय या ध्वनि से भाव को आकार दिया है । यथा—

सिसकते, अस्थिर मानस से
बाल बादल-सा उठ कर आज
सरल, अस्फुट उच्छ्वास !

अपने छाया के पखो मे
(नीरव-घोष भरे शखो मे)
मेरे आँसू गूँथ, फैल गभीर मेघ-सा
आच्छादित कर ले सारा आकाश !
—('उच्छ्वास')

उक्त पक्तियो मे स-स ('सिसकते अस्थिर मानस') के शब्दानुप्रास से सिसकने का भाव ध्वनित होता है, 'सरल-अस्फुट उच्छ्वास' मे 'अस्फुट' शब्द से हृदय की निगूढ व्यथा का आभास मिलता है, 'मेरे आँसू गूँथ फैल गम्भीर मेघ-सा' मे 'गम्भीर' शब्द से आँसुओ का पुञ्जीभूत रूप प्रत्यक्ष होता है; 'आच्छादित कर ले सारा आकाश' मे 'आ' के स्वर-प्रसार से मेघ और आकाश का विस्तार आँखो के सामने आ जाता है ।

इस दृष्टि से 'आँसू' की इन पंक्तियो मे भी शब्द-सञ्चरण की सजीवता देखी जा सकती है :

अपलक आँखो मे—
उमड उर के सुरभित उच्छ्वास !
सजल जलधर-से बन जलधार,
प्रेममय वे प्रिय पावस-मास
पुन नयनो में कर साकार;
मूक कणो की कातर वाणी भर इनमे अविकार,
दिव्य-स्वर पा आँसू का तार
बहा दे हृदयोदगार !

'अपलक-आँखो में' पलक ने आँसू को अटका लिया है, 'सुरभित-उच्छ्वास' मे वह श्वास-वायु से हिल-डुल कर उमडने का उपक्रम कर रहा है, 'प्रेममय वे प्रिय पावस मास' मे स्मृति उसे द्रवित कर रही है, 'दिव्य-

स्वर पा आँसू का तार–बहा दे हृदयोद्गार' मे मानो आँसुओ का प्रवाह आ गया है ।

शब्द-सञ्चरण और रस-ससरण ही पन्त की कविता के विशेष उपकरण है।

काव्य मे शब्दो की लय से भावो की ऊर्म्मिलता का, छन्दो की गति से रस की धारावाहिता का परिचय मिलता है। छन्द जब रस का अनुसरण करते है तब उनके संसरण मे पद-प्रवाह मुक्त हो जाता है। मुक्तपद ही मुक्तछन्द है ।

पन्त की रचनाओ मे मुक्तछन्द का वह रूप नही है जो निरालाजी के वाधा-वन्धन-विहीन छन्दो और पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित प्रगतिशील कविताओ मे मिलता है। पन्त के मुक्त छन्द की गति मर्य्यादित है, उसकी स्थिति राष्ट्रमण्डल के अन्तर्गत स्वतन्त्र उपनिवेशो की तरह है।

पन्त की कविता छन्दो में ही स्वच्छन्द है, नियमो मे ही मुक्त है, तटो मे ही तटस्थ है। 'उच्छ्वास' की बालिका मे उनकी कविता का ही मुक्तरूप है—

बाल्य-सरिता के कूलो से
खेलती थी तरंग-सी नित
—इसी मे था असीम अवसित।

'उच्छ्वास' को 'सावन' और 'आँसू' को कवि ने 'भादो की भरन' कहा है। लोक-प्रथा के अनुसार पावस ऋतु मे ही कवि की प्रेम-स्मृति पृथ्वी की हरीतिमा की तरह जग उठी है। इन दोनो कविताओ मे ऋतु-सुलभ प्राकृतिक दृश्यो का दर्शनीय चित्रण है।

प्रकृति के चित्रों मे कवि ने अपने सुख-दुख-मय हृदय को ही चित्रित किया है; कही तो वह उत्फुल्ल है, कही विषाद से धूमिल। उन चित्रों मे मनुष्य और प्रकृति का अभिन्न साहचर्य्य है,—

इस तरह मेरे चितेरे हृदय की
बाह्य-प्रकृति बनी चकाचक चित्र थी;
सरल शैशव की सुखद सुधि सी वही
बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।
('उच्छ्वास')

'उच्छ्वास' और 'ऑसू' मे पन्त की चित्र-कला बडी चटकीली है। उसमे बाह्य रूप, रंग, रेखाओ की ताजगी है; नयी इन्द्रियो की जवानी है।

यत्र-तत्र सौन्दर्य्य की तरह कवि का विरह भी अतिरञ्जित है। उसमे वेदना से अधिक कल्पना है। कवि के ही शब्दो मे यह कहने को जी चाहता है—

विरह है अथवा यह वरदान ?
कल्पना मे है कसकती वेदना,
अश्रु मे जीता, सिसकता गान है;
शून्य आहो मे सुरीले छन्द है,
मधुर लय का क्या कही अवसान है!
('ऑसू')

पन्त के प्रणय-काव्य कल्पना से चमत्कार-पूर्ण है, किन्तु 'ग्रन्थि' मे कुछ वास्तविकता है, 'उच्छ्वास' मे भाविकता, 'ऑसू' मे कल्पना ही कल्पना। इसीलिए, 'ग्रन्थि' मे कथा-भाग स्पष्ट है, 'उच्छ्वास' मे इगित, 'ऑसू' मे लुप्त। कवि की काव्य-कला स्थूल आधार छोड़ कर क्रमशः सूक्ष्म होती गयी है।

कल्पना से चमत्कृत होते हुए भी सामाजिक संस्पर्श के कारण 'ग्रन्थि' और 'उच्छ्वास' मे मार्म्मिकता है। 'ग्रन्थि' मे नायक की पारिवारिक निरीहता ('बाल्य मे ही हो गयी थी लुप्त हा! मातृ-अञ्चल की अभय

छाया मुझे . ' और 'उच्छ्वास' मे बालिका का भोलापन ('वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल-घर') हृदय मे समवेदना जगा देता है, कवि और पाठक के बीच एक रागात्मक सम्बन्ध जुड जाता है।

कवि जहाँ समाज के सम्पर्क मे है वहा उसके शब्दो मे एकदेशीय स्वाभाविकता भी है। 'ग्रन्थि' और 'उच्छ्वास' के बाद 'ग्राम्या' मे यह स्वाभाविकता विशेष रूप से है ।

सौन्दर्य्य और प्रेम

बचपन से ही प्रकृति के उल्लसित वातावरण मे पन्त के बाल्य सस्कार सुख-सुषमा-मय है, इसीलिए वे विरह से अधिक सौन्दर्य्य के कवि है। कवि के अश्रु-सजल प्रेम मे भी सौन्दर्य्य की ही पूजा है—

हाय ! मेरा जीवन
प्रेम औ' आँसू के कन !
आह, मेरा अक्षय धन,
अपरिमित सुन्दरता औ' मन !

('आँसू')

प्रेम करुण इसलिए हो गया है कि सौन्दर्य्य समाज मे कण्टकाकीर्ण है—

कुटिल काँटे है कही कठोर,
जटिल तरु-जाल है किसी ओर;
सुमन-दल चुन चुन कर निशि-भोर
खोजना है अजान वह छोर !

—नवल कलिका थी वह ।

'विपुल मृदुल सुमनो से सुरभित' इस 'विस्तृत जग-उपवन' मे कवि ने अपने सौन्दर्य्य की अभीष्ट सीमा 'नवल कलिका' (सरला बालिका) में पा ली थी, किन्तु सामाजिक जटिलता ने सुलभ को दुर्लभ कर दिया ।

बाल्य, कैशोर्य्य और यौवन की भावनाओं के अनुसार पन्त की कविता मे भी रूपान्तर होता आया है। फिर भी कवि को शैशव से अधिक ममता है—'शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु सरल कमनीय।'

रूप का आकर्षण शैशव मे भी रहता है, क्योकि शैशव स्वय स्वरूपमान है। सृष्टि मे जहाँ कही उसे अनुरूपता मिलती है उस पर मुग्ध हो उठता है; तितलियो, फूलो, लहरियो और नक्षत्रो के लिए उसका लालायित मन अपने रूप-मोह को व्यक्त करता है ।

भावना के अनुसार कामना का रसोद्रेक होता है। शैशव में सख्य भाव है, कैशोर्य्य मे वही भाव सुस्पष्ट हो जाता है। पन्त का मनोजगत प्राय. कैशोर्य्य के ही अनुराग से अनुरञ्जित है। तुलसीदास ने कहा है, 'नारि न मोहि नारि के रूपा', किन्तु पन्त की कविता मे सजातीय प्रेम सम्भव हो गया है ।

कैशोर्य्य मे शैशव की सरलता और यौवन की मधुरता की वय सन्धि है। इसीलिए, उसकी निरीहता मे यौवन की सी सरस किन्तु निर्दोष प्रेम-क्रीड़ा रहती है। पन्त जी के शब्दो मे—"प्रेम का प्रारम्भिक उद्रेक पवित्र होने के कारण, उसमे यौन-तत्त्व न रहने या अव्यक्त रहने के कारण, किशोर-किशोरियो मे सजातीय प्रेम ही—लडकी का लडकी के प्रति, लडके का लडके के प्रति—पहिले उत्पन्न होता है। वह प्रेम यौन-ससर्ग छोड़ कर और सभी रूपो मे —चुम्बन, परिरम्भण, विरह आदि में अभिव्यक्ति पाते देखा जाता है। उसमे न आस्कर वाइल्ड की गन्ध है, न साफो (ग्रीक कवयित्री) के Lesbianism की ।"

यही अयौन-प्रेम कवि की सौन्दर्य्य-पूजा का केन्द्र-विन्दु है। अपने कैशोर्य्य मे केन्द्रित होकर कवि, जीवन के सभी रसो मे सात्त्विक है। वह रस-योगी है ।

सौन्दर्य्य मे प्रकृति की दिव्यता के कारण प्रेम अयौन है। कवि के लिए

सौन्दर्य्य एक व्यापक तत्त्व है, उसमे सृष्टि की समष्टि-महिमा है। कवि जीवन की जिस सर्वव्याप्त सुषमा का उपासक है, उस सुषमा का माध्यम नारी भी हो सकती है, किन्तु सौन्दर्य्य उसी मे सकुचित नही, इसीलिए कवि कहता है—'नारी की सुन्दरता पर मे होता नही विमोहित।'

कवि के लिए सौन्दर्य्य, हृदयोल्लास का रुचिर प्रतीक है। यह प्रतीक मानुषिक भी है और प्राकृतिक भी। नर-नारी मानुषिक प्रतीक है। कवि प्राकृतिक प्रतीको से सौन्दर्य्य को विशदता प्रदान करता आया है।

कवि ने नारी को पुरुष की आँखो से भी चाहा है। कवि विरागी नही. अनुरागी है; रूप-रग-रस से उसका मन भी मोहित हो जाता है—

मोहित हो, कुसुमित पुलिनो पर
मैने ललचा चितवन डाली,
बहु रूप, रग, रेखाओ की
अभिलाषाएँ देखी-भाली।

मैने कुछ सुखमय इच्छाएँ
चुन ली सुन्दर, शोभाशाली,
औ' उनके सोने-चाँदी से
भर ली प्रिय प्राणो की डाली।

('गुञ्जन')

कवि का मुग्ध-हृदय जीवन की मधुरता के लिए सयोग-शृगार को अगीकार करता है। 'भावी पत्नी के प्रति' में उसने बडी सुकोमल भावनाओं से नारी को रमणीय व्यक्तित्त्व दिया है। इसके बाद, 'मञ्जरित आम्र-वन-छाया मे', 'आज रहने दो गृह-काज', 'प्रिये लालस-सालस वातास', 'तुम्हारी साडी का सित छोर' इत्यादि पक्तियों मे उसका परिणत-वय रस-विह्वल हो उठा है। किन्तु यह सब काव्य का लोकोत्तरानन्द मात्र

है, प्रत्यक्ष जगत् मे तो कवि को सामाजिक निर्म्माण के लिए आत्मोत्सर्ग करना पडा है ।

नवजीवन की साधना

एक ऐसे स्वार्थ-सकुल युग मे जब कि प्रत्येक मनुष्य जीवन की समस्त सुख-सुविधाएँ केवल अपने लिए चाहता है, मनुष्य की व्यक्तिगत महत्त्वा-काक्षाओ के कारण चारो ओर हाहाकार फैला हुआ है, कवि स्वय तप कर अपने मन का आदर्श-निर्म्माण करना चाहता है—

तप रे मधुर मधुर मन !
विश्व-वेदना मे तप प्रतिपल,
जग-जीवन की ज्वाला में गल
बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल,
तप रे विधुर विधुर मन !
अपने सजल स्वर्ण से पावन
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,
स्थापित कर जग मे अपनापन,
ढल रे ढल आतुर मन !
—('गुजन')

कवि अनासक्त नही, सुख-सुषमा के प्रति वह स्वभावतः आकर्षित है। किन्तु शोषण और अपहरण के इस युग मे शिवत्त्व (जीवन की साधना) के लिए वह सौन्दर्य्य का लोभ सवरण कर सकता है। 'गुन्जन' मे यही सकेत है—

अधरो पर मधुर अधर धर,
कहता मृदु स्वर मे जीवन—
बस एक मधुर इच्छा पर
अर्पित त्रिभुवन-यौवन-धन !

पुलकों से लद जाता तन,
मुँद जाते मद से लोचन;
तत्क्षण सचेत करता मन
ना, मुझे इष्ट है साधन !

पन्त की साधना में बुद्ध का विराग नहीं, कलाप्राण कृष्ण का अनुराग है। कवि ने सौन्दर्य्य और प्रेम का परित्याग नहीं किया, बल्कि उसी को सामाजिक निश्चिन्तता देने के लिए वह लोक-साधना की ओर अग्रसर हो गया।

कवि के प्रणय-काव्यों में सामाजिक कुरूपताओं के प्रति असन्तोष है। 'ग्रन्थि' में विषम वैवाहिक प्रथा की विडम्बना है, 'आँसू' और 'उच्छ्वास' में समाज की संकुचित सन्दिग्ध दृष्टि। कवि का सामाजिक असन्तोष स्पष्ट और विशद रूप में उत्तरकालीन रचनाओं ('युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि') में प्रकट हुआ है। छायावाद-युग में कवि समाज का केवल एक असहाय अंग था, अब वह ऐतिहासिक शक्ति पा गया है।

अपने प्रणय-काव्यों के प्रसंग में कवि ने स्वयं अपने जीवन पर दृष्टिपात किया है। कवि कहता है—

"ग्रन्थि के कथानक को दुःखान्त बनाने की प्रेरणा देकर जैसे विधाता ने उस युवावस्था के प्रारम्भ में ही मेरे जीवन के बारे में भविष्य-वाणी कर दी थी।

.....मेरे मन ने किसी तरह जान लिया था, कि मेरे जीवन का, विधाता ने कविता के साथ ही ग्रन्थि-बन्धन जोड़ना निश्चित किया है। 'वीणा' में मैंने ठीक ही कहा था—

प्रेयसि कविते ! हे निरुपमिते !
अधरामृत से इन निर्जीवित शब्दों में जीवन लाओ।

. . . . १९२१ मे मैने 'उच्छ्वास' नामक प्रेम-काव्य लिखा, और उसके बाद ही आँसू ! मेरे तरुण हृदय का पहला ही आवेश प्रेम का प्रथम स्पर्श पाकर जैसे उच्छ्वास और आँसू बन कर उड गया । 'उच्छ्वास' के सहस्र दृग-सुमन खोले हुए पर्वत की तरह मेरा भविष्य-जीवन भी जैसे स्वप्नो और भावनाओ के घने कुहासे से ढँक कर अपने ही भीतर छिप गया ।

. इसी भूधर की तरह वास्तविकता की ऊँची-ऊँची प्राचीरो से घिरा हुआ यह सामाजिक जगत् जो मेरे यौवन-सुलभ आशा-आकाक्षाओ से भरे हुए हृदय को अनन्त विचारो, मतान्तरो, रूढियो, रीतियो की भूल-भुलैया-सा लगता था, जैसे मेरी आँखो के सामने से ओझल हो गया । और यौवन के आवेशो से उठ रहे वाष्पो के ऊपर मेरे हृदय मे जैसे एक नवीन अन्तरिक्ष का उदय होने लगा ।"

कवि के वर्तमान साहित्य मे उसी नवीन अन्तरिक्ष (नवोदित समाज) का आलोक-प्रसार है—

"हँसी, लो, स्वर्ण किरण,
शिखर आलोक वरण !
विचरती स्वर्ण किरण,
धरा पर ज्योति चरण ।
. . . . . .
युगो का तमस हरण
करे यह स्वर्ण किरण ।"

काशी, निशीथ
२९-१२-४९

नारी

स्नेहमयि ! सुन्दरतामयि !

तुम्हारे रोम-रोम से नारि !
मुझे है स्नेह अपार;
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि !
मुझे है स्वर्गागार।
तुम्हारे गुण है मेरे गान,
मृदुल-दुर्बलता, ध्यान;
तुम्हारी पावनता, अभिमान,
शक्ति, पूजन-सम्मान;
अकेली सुन्दरता कल्याणि !
सकल ऐश्वर्य्यो की सन्धान ।

('पल्लव')

'वीणा' मे कवि ने बालिका का व्यक्तित्त्व धारण किया था, 'पल्लव' मे उसी का तारुण्य । कवि नारी के शैशव और यौवन सेतदाकार है । अर्द्ध-नारीश्वर मे स्वयं कवि कही पर नारी है, कही पर ईश्वर । जहाँ वह पुरुष है, प्रणयी है, वहाँ वह अपने ही अर्द्धांश की सुषमा पर मुग्ध है; अपनी ही छवि पर विस्मित । 'पल्लव' मे कवि का यही द्वित्त्व व्यक्तित्त्व है । प्रणय मे यही युग्म व्यक्तित्त्व दो तन एक प्राण (अद्वैत) हो जाता है ।

मूल मे नारी एक सहृदय सृजन-शक्ति है। सामाजिक सीमाओ के अनुसार उसके अनेक अवस्थान है, वह 'देवि, मा, सहचरि, प्राण' है। इन विविध रूपो मे मातृत्व का स्थान सर्वोपरि है, नारी के शेष सम्बन्धो मे उसी का सुसस्कृत सामाजिक संगठन है। पारिवारिक दृष्टि से मातृत्त्व पूज्य है, किन्तु फ्रायडियन दृष्टि से वह भी घृण्य जान पड़ता है। मनुष्य जड-देह नही, सचेतन प्राणी है, उसकी अनुभूतियो मे अन्त सज्ञा है; इसीलिये वैज्ञानिक सम्बन्धो को उसने हार्दिक सौष्ठव दे दिया है। काव्यकी अप्सरा और विज्ञान की अपरा नारी समाज की वसुन्धरा है—माता, कन्या, बहिन, पत्नी। 'वीणा' की बालिका की दुग्धधवल आत्मा 'पल्लव' के यौवन मे भी पावन है—

तुम्हारे छूने मे था प्राण,
सग में पावन गगा-स्नान,
तुम्हारी वाणी मे कल्याणि !
त्रिवेणी की लहरो का गान !
उषा का था उर मे आवास,
मुकुल का मुख मे मृदुल विकास;
चाँदनी का स्वभाव मे भास
विचारो में बच्चो के साँस !

छायावाद-युग मे पन्त ने नारी को उसकी सास्कृतिक महिमा-सुषमा मे देखा था। छायावाद के बाद ज्यो-ज्यो सामाजिक वास्तविकता स्पष्ट होने लगी, त्यो-त्यो न केवल नारी का, बल्कि समस्त मानव-समुदाय का अशोभन मुख कवि के सम्मुख प्रत्यक्ष होने लगा। कवि ने शोषित-पीडित समूह की भाँति ही नारीके माध्यम से भी युगो का कदर्य्य इतिहास देखा है। ऐतिहासिक दृष्टि से, आर्थिक स्थिति के अनुसार समाज की

नैतिक सीमाएँ निर्धारित होती आई है। मध्ययुगो की ओर देख कर कवि कहता है—

नही रहे जीवनोपाय तब विकसित,
जीवन-यापन कर न सके सब इच्छित।
नैतिक सीमाएँ बहु कर निर्धारित,
जीवन-इच्छा की जन ने मर्य्यादित।
('युगवाणी')

ऐसे परिमित वातावरण मे नारी भी केवल एक सम्पत्ति मात्र थी—

क्षुधा-काम-वश गत युग ने
पशुबल से कर जन शासित
जीवन के उपकरण सदृश
नारी भी कर ली अधिकृत।
('युगवाणी')

आज उस नारी की सामाजिक स्थिति क्या है?—

सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,
पूतयोनि वह : मूल्य चर्म पर केवल उसका अकित;
अंग-अग उसका नर के वासना-चिह्न से मुद्रित,
वह नर की छाया, इगित सचालित, चिर-पदलुण्ठित!
वह समाज की नही इकाई, शून्य समान अनिश्चित
उसका जीवन-मान मान पर नर के है अवलम्बित।
मुक्त हृदय वह स्नेह प्रणय कर सकती नही प्रदर्शित,
दृष्टि, स्पर्श, सज्ञा से वह हो जाती सहज कलकित।
('ग्राम्या')

आज नारी ही 'काम-कारा की वन्दिनी' नही है, बल्कि, काराध्यक्ष पुरुष भी अपने वातावरण से सस्कार-मुक्त नही है, उसका स्वाभाविक मानवपन खो गया है—

धिक् रे मनुष्य, तुम स्वच्छ, स्वस्थ, निश्छल चुम्बन
अंकित कर सकते नहीं प्रिया के अधरों पर ?
मन में लज्जित, जन से शकित चुपके गोपन
तुम प्रेम प्रकट करते हो नारी से, कायर !
क्या गुह्य क्षुद्र ही बना रहेगा, बुद्धिमान !
नर नारी का स्वाभाविक, स्वर्गिक आकर्षण ?

('ग्राम्या')

लज्जा का कारण भीतर है, बाहर नहीं। कवि उद्बोधित करता है—

'खोलो वासना के वसन नारी-नर !'

छायावाद-युग में कवि ने जिस प्रकृति से सौन्दर्य्य-चयन किया था, उसी से प्रणय की प्रशस्त प्रेरणा ग्रहण करने का संकेत देता है—

पशु-पक्षी से फिर सीखो प्रणय-कला, मानव !
जो आदि जीव, जीवन-संस्कारों से प्रेरित।

यह आत्मविस्मृत मानव के प्रति कवि का व्यंग्य है : मनुष्यमें मानवीय चेतना तो है ही नहीं, अपनी कृत्रिमता में पशु-पक्षियों से भी निकृष्ट हो गया है। यदि वह पशु-पक्षियों की नैसर्गिक चेतना पा जाय, तो एक स्वाभाविक क्रम से पुन: मानवीय मनोविकास की ओर अग्रसर हो सकता है।

मनुष्य देह की निम्न आकांक्षाओं में ही सीमित नहीं है, वह मनोयोगी है। 'ज्योत्स्ना' इन्दु से कहती है—"मनुष्य को पशु-पक्षियों की आँखों से देख कर उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता, नाथ ! उसे पशु-पक्षियों से अपना आदर्श सीखना नहीं। अपनी ही आत्मा के प्रकाश में अपना महत्त्व समझ कर उसे अपनी वृत्तियों का विकास करना है।"

कवि प्रेम के लिए दैहिक संस्कारों का मानसिक परिमार्जन चाहता है। यद्यपि 'क्षुधा-तृषा ही के समान युग्मेच्छा प्रकृति प्रवर्त्तित' है, तथापि

मनोयोगसे 'कामेच्छा प्रेमेच्छा बन कर' मनुजोचित हो जाती है। 'स्वर्ण-किरण' मे एक प्रेम-प्रश्न है, जिससे देह के साथ प्रणयके सम्बन्ध पर प्रकाश पड़ता है—

'क्या है प्रणय?' एक दिन बोली—'उसका वास कहाँ है?
इस समाज मे? देह-मोह का
देह-द्रोह का त्रास जहाँ है?'
देह नही है परिधि प्रणय की,
प्रणय दिव्य है, मुक्ति हृदय की,
यह अनहोनी रीति
देह वेदी हो प्राणो के परिणय की।

देह-मोह (इन्द्रियासक्ति) और देह-द्रोह (इन्द्रिय-दमन) शृगार-काव्य और निर्गुण-काव्य की तरह अपने आतिशय्य पर है। यही आतिशय्य आधुनिक देहात्मवाद और अध्यात्मवाद मे भी है। पन्त दोनो का स्वाभाविक परिमाण चाहते है। वे जीवन की सगुण (सन्तुलित) साधना की ओर है, प्रणय उनके लिए सौन्दर्य्य और स्नेह का सास्कृतिक अनुष्ठान है।

पन्त ने प्रगतिवादियो की तरह समाज का ऐतिहासिक समीक्षण और निरीक्षण किया है; किन्तु उनका जीवन-दर्शन दृष्टिगत ही नही, अन्तर्गत (मननशील) भी है। यही पर वे प्रगतिवादियों से भिन्न है। उनकी ऐतिहासिक दृष्टि देखती है—'योनि-मात्र रह गई मानवी'; किन्तु सास्कृतिक आत्मा (अन्तरात्मा) कहती है—'योनि नही है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित।' इसीलिए 'पल्लव' की 'देवि, मा, सहचरि, प्राण' 'युगवाणी' में भी 'जननि, सखी, प्यारी' है। पन्त की प्रगतिशीलता मे गार्हस्थिक गरिमा है, आर्योचित आभिजात्य है, सामाजिक साधना है। वे नारी के व्यक्तित्त्व (अन्तर्निर्माण) की स्थापना चाहते है।

पन्त की अन्तर्दृष्टि मे मध्य-युग की सकीर्ण नैतिकता और आधुनिक युग की अति-भौतिकता दोनो एक ही-जैसी निष्प्राण है। मध्य-युग की ओर देख कर वे कहते है—"उसका नैतिक मानदण्ड स्त्री की शरीर-यष्टि रहा है। उस सदाचार के एक अञ्चल-छोर को हमारी मध्य-युग की सती ओर हमारी बाल-विधवा अपनी छाती से चिपकाए हुई है और दूसरे छोर को उस युग की देन वेश्या।"—सामन्त-युग की यह विरासत पूँजीवाद को मिली, क्योकि दोनो का समाज अर्थ-प्रधान है। किसी भी आर्थिक युग मे मूलभूत परिवर्त्तन नही हो सकता। प्रगतिवाद भी अर्थोन्मुख है, इसीलिए वह अपने आर्थिक साम्य से मनुष्य को बाह्य मुक्ति (मास-मुक्ति) ही दे रहा है। नवीन भौतिकवादियो से कवि कहता है—

हाड-माँस का आज बनाओगे तुम मनुज-समाज?
हाथ-पाँव सगठित चलावेगे जग-जीवन-काज?
दया द्रवित हो गये देख दारिद्रच असंख्य तनो का?
अब दुहरा दारिद्रच उन्हे दोगे निरुपाय मनो का?
आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम!
मानव की मूर्त्ति गढोगे तुम सँवार कर चाम?

('युगवाणी')

पन्त ने हाड़-माँस-चाम की उपेक्षा नही की है, किन्तु वह उनका साधन है, साध्य नही।

'युगवाणी' मे कवि ने स्वस्थ नैतिक विकास के लिए मनुष्य की 'मास-मुक्ति' को भी महत्त्व दिया है—

मास-मुक्ति है भाव-मुक्ति,
औ' भाव-मुक्ति जीवन-उल्लास,
मास-मुक्ति ही लोक-मुक्ति
भव जीवन का जो चरम विकास।

मास-मुक्ति से कवि का अभिप्राय है ऐहिक आत्मपीडन से मनुष्य की मुक्ति। 'मांस' कायिक केन्द्रीकरण है नैतिक तथा आर्थिक अत्याचारो का। सामाजिक कदाचारो मे युगो से मनुष्य का अवरुद्ध पशुत्त्व (मास-तत्त्व) ही क्षुब्ध हो उठा है—

युग-युग से रच शत-शत नैतिक वन्धन,
बॉध दिया मानव ने पीडित पशु तन।
विद्रोही हो उठा आज पशु दर्पित,
वह न रहेगा अब नवयुग मे गर्हित।
नही सहेगा रे वह अनुचित ताड़न,
रीति-नीतियो का गत निर्म्मम शासन।
वह भी क्या मानव-जीवन का लाञ्छन?
वह, मानव के देव-भाव का वाहन।

आज शरणार्थियो की समस्या के रूप मे मध्यकालीन नैतिक और आर्थिक मान्यताएँ छिन्न-भिन्न हो रही है। वे मान्यताएँ पतिता के जीवित शरीर को शव की तरह घेर कर किस तरह मातम मना रही है और सक्रान्ति-युग का प्रबुद्ध युवक किस प्रकार शरीर के शिवत्त्व (अन्तश्चैतन्य प्रेम) को परितोष और प्रश्रय देता है, यह 'स्वर्णधूलि' की 'पतिता' कविता मे देखा जा सकता है। मालती का पति केशव कहता है—

मन से होते मनुज कलकित,
रज की देह सदा से कलुषित,
प्रेम पतित-पावन है, तुमको
रहने दूगा मैं न कलकित!

पन्त जी देह की सीमाओ में विभक्त नर-नारी को मनुष्यता मे पूर्ण देखना चाहते है। 'स्वर्णधूलि' की 'परकीया'-शीर्षक कविता मे उन्होने कहा है कि यदि भीतर प्रेम नहीं है, तो विवाह से ही कोई पवित्र नही हो

जाता। समाज मे सती और पतिता की तरह स्वकीया और परकीया का वर्गीकरण भी कवि को कृत्रिम और स्वार्थजन्य जान पडता है।

बाह्य दृष्टि से पन्त और प्रगतिवादियो मे साम्य होते हुए भी अन्तर यह है कि प्रगतिवादी वस्तु (यथार्थ) से ऊपर नही उठ पाते, पन्त वस्तु के अन्तस् (भाव) मे भी प्रवेश करते है। उनके लिए पशु-तन्त्र 'मानव के देव-भाव का वाहन' है। यही पर वे सास्कृतिक प्रेक्षक भी है, पृथ्वी पर मानव के मन.स्वर्ग के सर्जक है। प्रगतिवादियो का वस्तु-सत्य पन्त की सीमा नही, सोपान है:—

'भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान,
जहाँ आत्मदर्शन अनादि से समासीन अम्लान।'
('ग्राम्या' : 'बापू')

पन्त वस्तु-सत्य के सोपान पर जिस आत्मवाद का उत्थान देखना चाहते है, उसे पिछली नैतिक सकीर्णताओ से सजग करते है—

मानव के पशु के प्रति,
हो उदार नवसंस्कृति।
('युगवाणी')

पन्त मनुष्य की दुर्बलताओ के प्रति सहानुभूतिपर्ण है।

भारतीय नारी या तो सामन्त-युग की शोभा-शायिनी है, या आधुनिक युग की ऐश्वर्य्य-विलासिनी। उसमे अपने व्यक्तित्त्व का अभाव है। वह पुरुषो के ही भावो की भामिनी है।

सामन्त-युग की नारी विभिन्न आर्थिक श्रेणियों मे शरीर से ही सामाजिक मूल्य चुका रही है कही तो वह अभिसारिका की तरह अपने ही 'चरण-चाप से शकित' हो उठती है, कही रूपगर्विता की तरह अपनी ही शोभा के भार से कुम्हला जाती है, कही नव-परिणीता की तरह अपनी

ही चितवन से लज्जित हो उठती है। जहाँ अति दैन्य है, वहाँ नारी धार्मिक बलि-पशु की तरह 'असहाय, मूक, पगु, अपढ, अन्ध-विश्वासो से निर्म्मित माँस की लोथ, निष्प्राण, पति-प्राण सती' है।

मध्ययुग की परम्परा मे पली जो सम्पन्न नारी 'कुल-वधुओ-सी सलज्ज सुकुमार स्वीट पी' की तरह केवल 'ऊँची डाली' (उच्च वर्ग) की शोभा-मात्र रह गई, उसका भी हार्दिक विकास नही हो सका, मानवता के प्रति वह 'वधिरा-निष्ठुरा' है।

आधुनिक शिक्षिता नारी की स्थिति भी मध्ययुग-जैसी ही है (बिहारी के बाद बाइरन की कविता की तरह), केवल उसकी प्रसाधन-कला और चेष्टाएँ बदल गई है—

पशुओ से मृदु चर्म्म, पक्षियो से ले प्रिय रोमिल पर,
ऋतु-कुसुमो से सुरँग सुरुचिमय चित्र-वस्त्र ले सुन्दर,
सुभग रूज, लिपस्टिक, ब्रौस्टिक, पोडर से कर मुख रजित,
अगराग, क्यूटेक्स, अलक्तक से बन नख-शिख शोभित,
'सागरतल से ले मुक्ताफल, खानो से मणि उज्ज्वल,'
रजत-स्वर्ण मे अकित तुम फिरती अप्सरि-सी चञ्चल।
शिक्षित तुम सस्कृत, युग के सत्याभासो मे पोषित,
समकक्षिणी नरो की तुम, निज द्वन्द्व-मूल्य पर गर्वित।
लहरी-सी तुम चपल लालसा-श्वास-वायु से नर्त्तित,
तितली-सी तुम फूल-फूल पर मँडराती मधु क्षण हित!
मार्जारी तुम, नही प्रेम को करती आत्म-समर्पण,
तुम्हे सुहाता रग-प्रणय, धन-पद-मद, आत्म-प्रदर्शन!

('ग्राम्या')

कवि का मन इस 'आधुनिका' को 'नारी' कहने मे कुण्ठित हो जाता है—

तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी, मार्जारी,
आधुनिके, तुम नही अगर कुछ , नही सिर्फ तुम नारी !

यह आधुनिका केवल बाह्य सौन्दर्यमण्डित है, 'नारी-उर की विभूति से (हृदय-सत्य) से वञ्चित' है, इसमे 'प्रेम, दया, सहृदयता, शील, क्षमा, परदु.ख-कातरता, तप, संयम, सहिष्णुता, त्याग, तत्परता' नही है। यह पूँजीवादी विकृतियो की अनुकृति है। पूँजीवाद के साथ-साथ इसका भी अस्तित्त्व लुप्तप्राय है।

मध्ययुग मे नारी का व्यक्तित्त्व सामाजिक अवरोधो के कारण अवगुण्ठित था, पूँजीवादी युग मे आंग्ल-शिक्षिता नारी स्वतन्त्रता पाकर भी आत्मविकास नही कर सकी, वह पुरुष का स्थान पाने की प्रतिद्वन्द्विता करने लगी। उसमे भी मध्ययुगीन नारी की आत्महीनता है । इस अधोगति से ऊपर उठने के लिए कवि नारी को उत्साहित करता है—

तुममे सब गुण है : तोडो अपने भय-कल्पित वन्धन,
जड़ समाज के कर्दम से उठ कर सरोज-सी ऊपर
अपने अन्तर के विकास से जीवन के दल दो भर।
सत्य नही बाहर : नारी का सत्य तुम्हारे भीतर,
भीतर ही से करो नियन्त्रित जीवन को, छोडो डर।
('ग्राम्या')

छायावाद-युग मे कवि ने सुन्दरता को 'सकल ऐश्वर्यों की सन्धान' कहा था, अब प्रगतिशील युग मे वह कहता है—

जग-विकास-क्रम मे सुन्दरता कब की हुई पराजित,
तितली, पक्षी, पुष्प-वर्ग इसके प्रमाण है जीवित ।
हृदय नही इस सुन्दरता के, भावोन्मेष न मन मे ।
अगो का उल्लास न चिर रहता, कुम्हलाता क्षण मे !
('ग्राम्या')

छायावाद-युग मे कवि ने जिस सुन्दरता को प्रधानता दी थी, उसमे भावोन्मेष भी था, इसीलिए नारी को उसने 'सुन्दरतामयि' के साथ 'स्नेहमयि' सम्बोधन दिया था। मध्ययुग (ब्रजभाषा-युग) मे जो कुछ सुन्दर, सत्य ओर शाश्वत (शिवत्त्व) था, उसी के समावेश से छायावाद का भाव-विकास हुआ था। अब कवि देखता है कि 'आज सत्य, शिव, सुन्दर केवल वर्गो मे है सीमित।' कवि समस्त समाज मे मानवता के 'नवल रुधिर' की तरह सत्य-शिव-सुन्दर का नूतन सञ्चार-प्रसार चाहता है।

कला भी नारी की तरह उच्च वश की मर्य्यादा के स्वर्ण-पिञ्जर मे सीमित है, जीवन्मृत है। कवि के लिए कला का सौन्दर्य्य गौण हो गया, नारी का आत्मोत्कर्ष—प्राणोत्कर्ष सर्वोपरि। कवि कहता है—

नारी की सुन्दरता पर मै होता नही विमोहित,
शोभा का ऐश्वर्य्य मुझे करता अवश्य आनन्दित।
विशद स्त्रीत्त्व का ही मै मन मे करता हूँ नित पूजन,
जब आभादेही नारी आह्लाद प्रेम कर वर्षण
मधुर मानवी की महिमा से भू को करती पावन।
('ग्राम्या')

इस तरह कवि नारी को रूपसी ही नही, प्रेयसी-श्रेयसी-भूयसी देखना चाहता है।

वैचारिक प्रयोग के लिए अपने कहानी-सग्रह ('पाँच कहानियाँ') मे पन्त ने वर्त्तमान समाज के बौद्धिक और आर्थिक स्तरो के अनुसार नारी के विभिन्न चरित्रो का चित्रण किया है। पाँच कहानियाँ की पात्रियाँ भी यद्यपि चारो ओर के वातावरण से घिरी हुई है, तथापि उन्ही मे से किसी-किसी मे लेखक ने अपनी अभीष्ट मानवी का मुख दिखला दिया है। एक 'पार्वती' है, जो इस मर्त्यलोक मे अपनी सीधी-सादी प्रेमपूर्ण गृहस्थी म स्वर्ग का सञ्चालन कर रही है। एक 'सरला' है—"श्वेत लिलियो की

सुकुमार सृष्टि। कम-से-कम देह की सामग्री मे जैसे आत्मा उतर आई हो।"
एक 'कला' है, जिसका प्रकृति के आँगन मे ही विकास हुआ है। वह लिखना-पढना नही जानती, पर भले-बुरे को पहचानती है। गेंदा, गुलदावदी, बेला, जूही की तरह वह वस्तुओ का मूल्य उनके आकार-प्रकार, रूप-रग से, मनुष्यो का मूल्य उनके हाव-भाव-चेष्टाओ द्वारा आँक लेती है। 'वह सहज सुन्दरपरिस्थितियो की सहज सुन्दर सृष्टि है।'

'युगवाणी' का प्रगतिशील कवि 'पाँच कहानियाँ' ओर 'ग्राम्या' मे भी लोक-जीवन की ओर है। तथा कथित जनवादी जब कि राजनीतिक उपयोगिता की कृत्रिम दृष्टि से ही लोक-भूमि में भ्रमण करते है, पन्त ने कवि की स्वाभाविक दृष्टि से लोकगीतो और लोककथाओ की जन्मभूमि को देखा है। वहाँ नारी आत्मनिर्भर है, वह अपनी श्रम-साधना मे प्रकृति की सदेह आत्मा है, उसका व्यक्तित्त्व मौलिक है। पन्त ने 'ग्राम-नारी' की भूरि-भूरि सराहना की है। यद्यपि 'चिर-दैन्य, अविद्या के तम से' वह पीडित है, तथापि, 'कर रही मानवी के अभाव की आज पूर्त्ति।'

'दैन्य' और 'अविद्या' युग की विश्वव्यापी आर्थिक और वौद्धिक समस्या है। यह केवल ग्राम-नारी की ही नही, बल्कि शिक्षित-अशिक्षित सम्पूर्ण नागरिक नर-नारी की भी समस्या है। पूँजीवादी युग की आर्थिक व्यवस्था की तरह ही वौद्धिक व्यवस्था भी अब विश्रृंखल हो रही है। शिक्षित-अशिक्षित सभी को हडतालो का सहारा लेना पड रहा है। शिक्षितो की विद्या भी केवल अर्थंकरी विद्या थी, वह सरस्वती की नही, लक्ष्मी की उपासना थी।

वर्ग-भेद और वर्ण-भेद की तरह अब नर-नारी का गुण-भेद भी मिटता जा रहा है। आधुनिक महिलाएँ स्त्री-पुरुष-समानाधिकार का आन्दोलन कर रही है।

समाज की विभिन्न श्रेणियो द्वारा परिचालित ये नाना आन्दोलन किसी सद्भाव से प्रेरित नही जान पडते। केवल वैधानिक विवशता से मनुष्य के भीतर जो आदिम बर्बरता (हिसा और स्पर्द्धा) दबी हुई थी, वही समय पा कर उभर रही है। मनुष्य भीतर से सुसस्कृत नही हो सका था। वस्तुत अर्थतन्त्र (रूप और रुपया) पर स्थापित सभ्यता का गगनचुम्बी प्रासाद अपनी ही खोखली नीव के कारण ढह रहा है। ये आन्दोलन उसके भग्न-चिह्न (मलबे) है। शिक्षा, सस्कृति, कला, राजनीति ये सब खँडहर होने जा रहे है।

वर्त्तमान युग अभाव-क्रान्ति का युग है। प्रकृति, सस्कृति और कला का भावात्मक दृष्टिकोण अभी ओझल है। पन्त जी का कहना है—"मनुष्य की दैहिक प्रवृत्तियो और सामाजिक परिस्थितियो के बीच मे जितना विशद सामञ्जस्य स्थापित किया जा सकेगा, उसी के अनुरूप, जन-समाज की सास्कृतिक चेतना का भी विकास हो सकेगा। आने वाला युग मनुष्य की क्षुधा-काम की प्रवृत्तियो मे विकसित सामाजिक सामञ्जस्य स्थापित कर हमारे सदाचार के दृष्टिकोण एव सत्य-शिव-सुन्दरम् की धारणाओ मे प्रकारान्तर उपस्थित कर सकेगा।"

पन्त की दृष्टि उज्ज्वल भविष्य की ओर है। 'युगवाणी' का कवि भविष्य के समाज मे प्रत्यक्ष देखता है—

> जीवन के उपकरण अखिल कर अधिकृत,
> गत युग का पशु हुआ आज मनुजोचित।

काशी,
निशीथ
३।११।४९

काव्य-कला

"कविता हमारे परिपूर्ण क्षणो की वाणी है। हमारे जीवन का, हमारे अन्तरतम-प्रदेश का सूक्ष्माकाश ही सगीतमय है, अपने उत्कृष्ट क्षणो मे हमारा जीवन छन्द ही मे बहने लगता, उसमे एक प्रकार की सम्पूर्णता, स्वरैक्य तथा सयम आ जाता है। प्रकृति के प्रत्येक कार्य्य, रात्रि-दिवस की ऑखमिचौनी, षड्ऋतु-परिवत्तन, सूर्य्य-शशि का जागरण-शयन, ग्रह-उपग्रहो का अश्रान्त नर्त्तन,—सृजन, स्थिति, सहार,—सब एक अनन्त छन्द, एक अखण्ड-सगीत ही मे होता है।

कविता विश्व का अन्तरतम सगीत है, उसके आनन्द का रोम-हास है, उसमे हमारी सूक्ष्मतम दृष्टि का मर्म्म-प्रकाश है।"

—पन्त

'पल्लव' के 'प्रवेश' मे पन्तजी ने काव्य-कला पर विस्तृत दृष्टिपात किया है। इससे 'पल्लव' की कला पर ही नही, बल्कि छायावाद की काव्य-कला पर भी मनोहर प्रकाश पडता है। कविता की तरह ही 'पल्लव' के 'प्रवेश' की भाषा भी कवित्त्वपूर्ण है, उसमे कवि का गद्य-शिल्प है, कविता की चॉदनी स्निग्ध सगमर्म्मर का ताजमहल बन गयी है।

मध्ययुग की कविताओ को निरखनें-परखने के लिए ब्रजभाषा मे रीति-शास्त्र है। छायावाद की रचनाओ के लिए कोई वैसा स्थिर शास्त्र नही बनाया जा सकता, क्योकि उसकी कला कविता की तरह ही, बाह्य नही, आन्तरिक है। उसमे भावो की मानसिक प्रक्रिया (मनोवृत्त्यात्मक गति-विधि) है।

काव्य के निर्म्माण मे रूढिवादी लोग कवि के मस्तिष्क को आचार्य्यत्त्व के घटाटोप से ढँकते आये है, इससे कवि के व्यक्तित्त्व का विकास नही हो सका, वह बौना रह गया। शैशव मे प्राय सभी का मन भाव-प्रवण रहता है, वही मन जब अपने मूल स्वभाव के अनसार विकसित होता है तब उसे कवि का व्यक्तित्त्व मिल जाता है। रीतिकालीन कविता में वह व्यक्तित्त्व दब गया था, छायावाद मे उसे स्वाभाविक उभार मिला। कवि ने अपना मूल व्यक्तित्त्व (शैशव) और उसका भाव-जगत पा लिया, वह बोल उठा—

आज शिशु के कवि को अनजान
मिल गया अपना गान।

दूर, उन खेतो के उस पार,
जहॉ तक गई नील-झकार,
छिपा छायावन मे सकुमार
स्वर्ग की परियो का ससार,
वही, उन पेडो मे अज्ञात
चाँद का है चाँदी का वास,
वही से खद्योतो के साथ
स्वप्न आते उड-उड कर पास।
इन्ही में छिपा कही अनजान
मिला कवि को निज गान।

('गुञ्जन')

शिशु के मन मे रमने के लिए जैसे वात्सल्य की आवश्यकता है वैसे ही कविता को अपनाने के लिए भी। शास्त्रो के शासन से धर्म्म के मर्म्म

की तरह काव्य का भाव भी लुप्त हो जाता है। रस-सिद्ध कवि की कविता के लिए समीक्षा भी रसात्मक ही होनी चाहिये।

'पल्लव' के 'प्रवेश' मे प्न्त को कवि और समीक्षक का अलग-अलग व्यक्तित्त्व नही धारण करना पडा। दोनो एक है, स्रष्टा ही द्रष्टा भी बन गया है। पन्त ने काव्य-कला को नवीन दृष्टि-भगिमा दी है। खुले पलको से सृष्टि को स्वायत्त कर लेने वाले कवि ने मुद्रित पलको मे उसका अन्वीक्षण कर लिया है। कवि का यह उद्‌गार उसके काव्य-सम्बन्धी विचारो पर भी चरितार्थ होता है——

मीलित नयनो का अपना ही
यह कैसा छायामय-लोक
अपने ही सुख-दुख, इच्छाएँ,
अपनी ही छवि का आलोक।

('पल्लव' 'स्वप्न')

कवि होने के कारण, पन्त के काव्य-विवेचन मे एक स्वाभाविक सरसता ह। अपने रस-वोध और सौन्दर्य्य-वोध से उन्होने काव्य -कला का मार्म्मिक निरूपण किया है। ऐसा जान पडता है कि पन्त के बाल्य सस्कारो मे सृष्टि का रूप-रग-स्वर सब कुछ बडी सजीवता, सुस्पष्टता से भास्वर हो गया था।

शब्दों का व्यक्तित्त्व

'पल्लव' के प्रारम्भिक प्राक्कथन ('विज्ञापन') मे ही कवि का रोमैन्टिक दृष्टिकोण सामने आ जाता है, जब कि वह व्याकरण के जड-विधान का व्यतिक्रम करता है। व्याकरण मे प्रत्येक शब्द एक निश्चित परिधि मे कीलित हो गये है, वे हिलते-डुलते नही, स्थाणुवत् स्थिर है। कवि ने शब्दो मे अपनी साँस भर कर उन्हे सञ्चालित कर दिया है, वे गतिशील हो उठे है, उनमे भाविकता आ गई है।

पन्त शब्दो के निर्म्माता है। छात्रावस्था मे ही उनका शब्द-भण्डार इतना विशाल हो गया था कि सहपाठी उन्हे 'मशीनरी ऑफ वर्ड्स' कहा करते थे। किन्तु पन्त की प्रतिभा टकसाली नही, कुदरती थी। शब्दो के चयन मे कवि की सुरुचि 'मधुकरी' की तरह सजग है—

सूँघ, चन कर, सखि ! सारे फूल,
सहज बिंध, बँध, निज सुख-दुख भूल,
सरस रचती हो ऐसा राग
धूल बन जाती है मधुमूल।
—('पल्लव' 'मधुकरी')

इसी तरह पन्त ने शब्दो को सूँघ-सूँघ कर उनकी विशेषताओ का सञ्चयन किया है।

इन थोडी-सी पक्तियो मे ही काव्य-कला की सम्पूर्ण प्रक्रिया आ गयी है, शब्दो से राग, राग से रस की निष्पत्ति का सकेत कर दिया गया है।

शब्दो के गन्ध-बोध से कवि ने उनकी आत्मा पहिचान ली है। यहाँ तक कि पर्य्यायवाची शब्दो के सूक्ष्म पार्थक्य को भी स्पष्ट कर दिया है। कवि कहता है—

"भिन्न-भिन्न पर्य्यायवाची शब्द, प्राय, सगीत-भेद के कारण, एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपो को प्रकट करते है। जैसे 'भ्रू' से क्रोध की वक्रता, 'भृकुटि' से कटाक्ष की चञ्चलता, 'भौहो' से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय मे अनुभव होता है। ऐसे ही 'हिलोर' मे उठान, 'लहर' मे सलिल के वक्ष स्थल की कोमल कम्पन, 'तरग' मे लहरो के समूह का एक दूसरे को धकेलना, उठ कर गिर पडना, 'बढो बढो' कहने का शब्द मिलता है, 'वीचि' से जैसे किरणो मे चमकती, हवा के पलने मे हौले-हौले झूलती हुई हँसमुख लहरियो का, 'ऊर्मि' से मधुर मुखरित हिलोरो का, हिल्लोल-कल्लोल से ऊँची-ऊँची बाँहे उठाती हुई उत्पातपूर्ण तरगो का आभास

मिलता है। 'पख' शब्द मे केवल फडक ही मिलती है, उडान के लिए भारी लगता है, जैसे किसी ने पक्षी के पखो मे शीशे का टुकडा बाँध दिया हो, वह छटपटा कर बार-बार नीचे गिर पडता हो, अग्रेजी का 'Wing' जैसे उडान का जीता-जागता चित्र है। उसी तरह Touch मे जो छूने की कोमलता है, वह 'स्पर्श' मे नही मिलती। 'स्पर्श' जैसे प्रेमिका के अगो का अचानक स्पर्श पा कर हृदय मे जो रोमाञ्च हो उठता है, उसका चित्र है, ब्रजभाषा के 'परस' मे छूने की कोमलता अधिक विद्यमान है, 'joy' से जिस प्रकार मुँह भर जाता है, 'हर्ष' से उसी प्रकार आनन्द का विद्युत्-स्फुरण प्रकट होता है। अग्रेजी के Air' में एक प्रकार की transparency मिलती है, मानो इसके द्वारा दूसरी ओर की वस्तु दिखाई पडती हो, 'अनिल' से एक प्रकार की कोमलता-शीतलता का अनुभव होता है, जैसे खस की टट्टी स छन कर आ रही हो, 'वायु' मे निर्म्मलता तो है ही, लचीलापन भी है, यह शब्द रबर के फीते की तरह खिच कर फिर अपने ही स्थान पर आ जमता है, 'प्रभञ्जन' ' wind' की तरह शब्द करता, बालू के कण और पत्तो को उडाता हुआ बहता है, 'श्वसन' की सनसनाहट छिप नही सकती, 'पवन' शब्द मुझे ऐसा लगता है जैसे हवा रुक गई हो, 'प' और 'न' की दीवारो से घिर-सा जाता है, 'समीर' लहराता हुआ बहता है।"

शब्दो पर ऐसी बारीक निगाह अब तक किसी की नही गयी थी।

हाँ, सस्कृत-काव्य मे पर्य्यायवाची शब्दो की प्रधानता है। इसका कारण वर्णवृत्त है। सस्कृत आर्य्य भारत की राजभाषा है, इसीलिए उसके वर्णवृत्तो मे एक 'नृपोचित गरिमा' है। पन्तजी लिखते है, सस्कृत मे—

"पर्य्यायो की तो प्रचुरता है, पर भावो के छोटे-बडे चढाव-उतार, उनकी श्रुति तथा मूर्छनाओ, लघु-गुरु भेदो को प्रकट करने के लिए पर्य्याप्त शब्दो का प्रादुर्भाव न हो सका। वर्णवृत्तो के निर्म्माण मे विशेषणो तथा

पर्य्यायो से अधिक सहायता मिलने के कारण उपर्युक्त अभाव विशषणो की मीडो से ही पूरा कर लिया गया। यही कारण है कि Ripple, Billow, wave, tide आदि वस्तु के सूक्ष्म भेदोपभेद द्योतक शब्दो के गढने की ओर सस्कृत के कवियो का उतना ध्यान नही रहा जितना तुल्यार्थ शब्दो के बढाने की ओर।"

सस्कृत के अभावो की पूर्त्ति राष्ट्रभाषा हिन्दी कर रही है, उसमे जीवन का विस्तार आ गया है। सस्कृत के युग मे जीवन का इतना यान्त्रिक विस्तार नही हो सका था। मन्त्रो की तरह ही उसके सुदृढ सगठित सक्षिप्त शब्दो का व्यक्तित्त्व मितभाषी वर्णवृत्तो मे गाम्भीर्य्य पा गया है। सस्कृत मे जीवन घनिष्ठ जान पडता है, यह उसकी सन्धि और समास से भी सूचित होता है।

शब्दो के व्यक्तित्त्व के अनुसार ही उसके छन्दो का भी निर्म्माण होता है। पन्त जी कहते है—"प्रत्येक भाषा के छन्द उसके उच्चारण-सगीत के अनुकूल होने चाहियें।" इस दृष्टि से भी उन्होने शब्दो की आकृति-प्रकृति का पर्य्यवेक्षण किया है। छन्दो के प्रसग मे वे लिखते है—"यदि अग्रेजी और बँगला के शब्द हिन्दी के छन्दो मे कम्पोज कर कस दिये जायें तो वे अपना स्वर खो बैठे। सस्कृत के शब्द जैसे नपे-तुले, कटे-छँटे (diamond cut) होते है वैसे बँगला और अग्रेजी के नही, वे जैसे लिखे जाते है वैसे नही पढे जाते। बँगला के शब्द उच्चारण की धारा मे पड स्पञ्ज (sponge) के टुकडो की तरह स्वर से फूल उठते और अग्रेजी के शब्दो का कुछ नुकीला भाग उच्चारण करते समय विलायती मिठाई की तरह मुह के भीतर ही गल कर रह जाता, वे चिकने-चुपडे, गोल तथा कोमल होकर बाहर निकलते है।"

पन्त जी सस्कृत, अग्रेजी और बँगला के मर्म्मज्ञ है। उनकी प्राञ्जल रुचि मे इन सब की विशेषताओ का समन्वय है।

शब्दो के गौरव को पन्त जी ने स्वर के स्पर्श से पहिचाना है। उनका कहना है कि शब्दो का व्यक्तित्त्व भावना और सगीत के 'राग' से व्यक्त होता है। राग के द्वारा ही शब्द परस्पर सम्बद्ध होते है, अपना तारतम्य अथवा सामञ्जस्य पाते है। पन्तजी के शब्दो मे—"राग ध्वनि-लोक की कल्पना है। जो कार्य्य भाव-जगत मे कल्पना करती, वह कार्य्य शब्द-जगत मे राग, दोनो अभिन्न है। राग ध्वनि-लोक-निवासी शब्दो के हृदय मे परस्पर स्नेह तथा ममता का सम्बन्ध स्थापित करता है।

राग का अर्थ आकर्षण है, यह वह शक्ति है जिसके विद्युत्स्पर्श से खिच कर हम शब्दो की आत्मा तक पहुँचते, हमारा हृदय उनके हृदय मे पहुँच कर एक भाव हो जाता है।

जिस प्रकार समग्र पदार्थ एक दूसरे पर अवलम्बित है, ऋणानुबन्ध है, उसी प्रकार शब्द भी, ये सब एक ही विराट परिवार के प्राणी है।

प्रत्येक शब्द एक-एक कविता है, लक्ष और मल-द्वीप की तरह कविता भी अपने बनाने वाले शब्दो की कविता को खा-खा कर बनती है।"

इस प्रकार कवि के लिए शब्द अक्षरो के निस्पन्द समूह नही, सजीव सृष्टि है। सृष्टि की तरह उनमे भी एक अनुक्रम है, वे राग के अनुरागी है, अनुगामी, सहगामी और अग्रगामी है। शब्दो की इस क्रम-बद्धता को ही कवि ने 'ऋणानुबन्ध' कहा है। काव्य में शब्द समष्टिवादी है। 'राग' मे उनकी एकता का नाद है। शब्द एक दूसरे मे घुल-मिल कर, अपने अस्तित्त्व का विसर्जन कर, महत्त्वपूर्ण हो जाते है। उनमे अमृतत्त्व आ जाता है। वे 'लक्ष' और 'मल द्वीप' की तरह जीवित रहते है।

शब्द अपनी व्यक्तिगत सत्ता खोकर काव्य के रसात्मक व्यक्तित्त्व की शक्ति पा जाते है। कवि कहता है—"शब्दो के भिन्न-भिन्न कण एक होकर रस की धारा के स्वरूप मे बहने लगते, उनकी लँगडाहट मे गति

आ जाती, हम केवल रस की धारा को ही देख पाते है, कणो का हम अस्तित्त्व ही नही मिलता ।"

राग-द्वारा शब्द रस बन जाते है, अर्थ-द्वारा भाव। शब्द और राग की तरह शब्द और अर्थ भी अभिन्न है, 'गिरा-अर्थ जल-बीचि-सम गनियत भिन्न न भिन्न।' पन्त जी भी इसी ओर सकेत करते है—"कविता मे शब्द और अर्थ की अपनी स्वतन्त्र सत्ता नही रहती, वे दोनो भाव की अभिव्यक्ति मे डूब जाते हे ।"

जहाँ शब्द और अर्थ मे आत्मीयता रहती है वहाँ वे ताल और नृत्य की तरह भावो का समारोह करते है ।

शब्दो के प्रति काव्य और अध्यात्म का दृष्टिकोण एक-सा जान पडता है, दोनो की दृष्टि सूक्ष्म है, दोनो क्षणभगुर को शाश्वत मे विलीन कर देते है, कण को सुमेरु और क्षण को समय बना देते है। जैसा कि कवि ने कहा है, शब्द 'एक ही विराट परिवार के प्राणी है', इस रूप में उनकी व्यक्तिगत स्थिति अहब्रह्म की तरह है , किन्तु जब 'लक्ष और मल-द्वीप की तरह कविता भी अपने बनाने वाले शब्दो की कविता को खा-खाकर बनती है', तब शब्द खल्विद ब्रह्म हो जाते है, उनका अहकार अत साक्षात्कार (आत्मानुभूति) मे विसर्जित हो जाता है ।

चित्र-भाषा और चित्र-राग

कविता के लिए पन्त जी चित्र-भाषा और चित्र-राग चाहते है ।

चित्र-भाषा वह है जिसमे शब्द 'अपने भाव को अपनी ही ध्वनि मे आँखो के सामने चित्रित कर सके ।'

शब्दो से भाव जब साकार ही नही, सस्वर भी हो उठते है तब चित्र-भाषा ही चित्र-राग बन जाती है। भाषा की चित्रमयता और भाव की रस-मयता के सयोग से चित्र-राग की रचना होती है। चित्र-भाषा भाव के लिए है। जब भाषा भाव को आकार देकर उसके अन्तस मे राग का उद्रेक कर

देती है तब वह चित्र-भाषा न रहकर चित्र-रा ग हो जाती है। कवि के शब्दो मे, "भाव और भाषा का सामञ्जस्य, उनका स्वरैक्य ही चित्र-राग है। जैसे भाव ही भाषा मे घनीभूत हो गये हो, निर्झरिणी की तरह उनकी गति और रव एक बन गये हो, छुडाये न जा सकते हो ।"

कविता की परिपूर्णता भाव और रस मे है। जहाँ भाव है वही रस भी है, जहाँ चित्र-भाषा है वही चित्र-राग भी है। चित्र और सगीत का पार्थक्य काव्य मे दूर हो जाता है, दोनो अनिवार्य्यत एक हो जाते है। शब्दो मे जैसे भाव अन्तर्गर्भित रहते है वैसे ही भावो मे रस भी, अतएव, चित्र-भाषा और चित्र-राग दोनो मे रूप और रस की तरह साहचर्य्य है।

चित्र और राग, भाव और रस, जब कि दोनो अविच्छिन्न है, तब दोनो के लक्षण भी एक साथ ही लक्षित होते है। इसीलिए कवि ने चित्र-भाषा के लिए जो कुछ कहा है वह चित्र-राग पर भी घटित हो जाता है। कवि कहता है—

"कविता के शब्द सस्वर होने चाहिये, जो बोलते हो, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पडे, जो झकार मे चित्र, चित्र मे झकार हो, जिनका भाव-सगीत (चित्र-राग) विद्युद्धारा की तरह रोम-रोम मे प्रवाहित हो सके, जिनका सौरभ सूँघते ही साँसो द्वारा अन्दर पैठ कर हृदयाकाश मे समा जाय, जिनका रस मदिरा की फेन-राशि की तरह अपने प्याले से बाहर छलक उसके चारो ओर मोतियो की झालर की तरह झूलने लगे, अपने छत्ते मे न समा कर मधु की तरह टपकने लगे, अर्द्धनिशीथ की तारावली की तरह जिनकी दीपावली अपनी मौन जडता के अन्धकार को भेद कर अपने ही भावो की ज्योति मे दमक उठे, जिनका प्रत्येक चरण प्रियगु की डालकी तरह अपने ही सौन्दर्य्य के स्पर्श से रोमाचित रहे, जापान की द्वीप-मालिका की तरह जिनकी छोटी-छोटी पक्तियाँ अपने

अन्तस्तल मे सुलगी ज्वालामुखी को न दबा सकने के कारण अनन्त श्वासोच्छासो के भूकम्प मे काँपती रहे ।"

कवि का यह गद्य-काव्य उसके मन्तव्य का स्वय एक सजीव दृष्टान्त है । उसकी कविताओ मे भी उसका ज्वलन्त दृष्टिकोण देखा जा सकता है—

उड गया, अचानक, लो, भूधर
फडका अपार पारद के पर !
रव-शेष रह गये है निर्भर !
है टूट पडा भू पर अम्बर !
धँस गये धरा मे सभय शाल !
उठ रहा धँआ, जल गया ताल !
—('उच्छ्वास')

धधकती है जलदो से ज्वाल,
बन गया नीलम-व्योम प्रवाल,
आज सोने का सन्ध्याकाल
जल रहा जतुगृह-सा विकराल,
पटक रवि को बलि-सा पाताल
एक ही वामन-पग मे—
लपकता है तमिस्र तत्काल,
—धुँए का विश्व विशाल !
चिनगियो से तारो को डाल
आग का-सा अँगार शशि लाल
लहकता है,—फैला मणि-जाल,
जगत को डसता है तम-व्याल !
('आँसू')

उक्त पक्तियो मे भाषा का चित्र-राग मानो 'जापान की द्वीप-मालिका की तरह अन्तस्तल मे सुलगी ज्वालामुखी' से विस्फोटित हो उठा है।

चित्र-राग मे ऐसा जान पडता है कि, "भावनाओ की तरुणता अपने ही आवेश से अधीर हो जैसे शब्दो के चिरालिगन-पाश मे बँध जाने के लिए हृदय के भीतर से अपनी बाँहे बढाने लगी हो, यही भाव और स्वरका मधुर मिलन, सरस सन्धि है। हृदय के कुञ्ज मे छिपी हुई भावना मानो चिरकाल तक प्रतीक्षा करने के बाद अपने प्रियतम से मिली हो, और उसके रोएँ-रोएँ आनन्दोद्रेक से झनझना उठे हो।"—ऐसा ही 'आनन्दोद्रेक' कवि के इस उद्गार मे है—

हृदय के प्रणय कुञ्ज मे लीन
मूक कोकिल का मादक गान,
बहा जब तन, मन, वन्धन-हीन
मधुरता से अपनी अनजान,
खिल उठी रोओ-सी तत्काल
पल्लवो की यह पुलकित डाल!

('पल्लव')

'पल्लव'-काल के कवि मे नवयौवन का उद्दाम आवेग भी था और सयम का धीर-गम्भीर पद-विक्षेप भी। इसीलिए 'पल्लव' मे उसकी रुचि चटकीली भी थी ('इस तरह मेरे चितेरे हृदय की बाह्य प्रकृति बनी चकाचक चित्र थी'), और, सादगी से सन्तुलित भी।

कला मे वर्ण-सम्पात (रग-प्रयोग अथवा रुचि-विन्यास) के सम्बन्ध मे पन्त का दृष्टिकोण उनकी 'पाँच कहानियाँ' के 'अवगुण्ठन' मे हे, इस दृष्टि से राजा रविवर्म्मा के चित्रोकी भी विशेषता देखी जा सकती है—

"आज सरला का जन्मदिन था। गहरे लाल रेशम की साडी पहने

हुए, आकाक्षा से प्रदीप्त, उन्मुख ज्वाला की तरह, सरला ने कमरे मे प्रवेश किया।

आधुनिक बगाल-स्कूल के चित्रो ने स्त्रियो के पहनावे के सम्बन्ध मे जिस हल्के रग का आदर्श सतीश के मन मे स्थापित कर दिया था, उसके ठीक विपरीत सिर से पॉव तक गहरे, चटकीले रग के परिधान से भी सौन्दर्य्य की छटा इस तरह दसगुनी होकर छिटक सकती है, यह सतीश ने पहले कभी नही सोचा था।"

पन्त की कला मे गहरे रगो का भी प्रयोग है और हलके रगो का भी, उसमे बहिरग की उद्दीप्ति भी है और अन्तरग की शान्ति भी। देश, काल, पात्र के अनुसार रगो की भी अपनी-अपनी शोभा है—सेब की मधुरिमा मे गहरी लालिमा है, रसाल की रसार्द्रता मे गम्भीर हरीतिमा—

"एक ही तो असीम उल्लास
विश्व मे पाता विविधाभास,
तरल जलनिधि मे हरित विलास,
शान्त अम्बर मे नील-विकास!"

('परिवर्त्तन')

स्वय कवि का हृदय तो शुभ्र (सात्त्विक) है, इसीलिए उसमे सभी रग प्रतिफलित हो उठते है।

छन्दों की परख

छन्द की आवश्यकता राग को स्वर-प्रवाह देने के लिए है। पन्त जी लिखते है—"जिस प्रकार कविता मे भावो का अन्तरस्थ हृत्स्पन्दन अधिक गम्भीर, परिस्फुट तथा परिपक्व रहता है उसी प्रकार छन्द-वद्ध भाषा मे भी राग का प्रभाव ,उसकी शक्ति, अधिक जाग्रत, प्रबल तथा परिपूर्ण रहती है। हमारे साधारण वार्त्तालाप मे भाषा-सगीत को जो यथेष्ट

क्षेत्र नही प्राप्त होता, उसी की पूर्त्ति के लिए काव्य मे छन्दो का प्रादुर्भाव हुआ है ।"

छन्दो के सम्बन्ध मे पन्त जी ने अपना मौलिक मतभेद प्रकट किया है । उनका कहना है, "कविता मे भावो के प्रगाढ सगीत के साथ भाषा का सगीत भी पूर्ण परिस्फुट होना चाहिये, तभी दोनो मे स्वरैक्य रह सकता है । छन्द का भाषा के उच्चारण और उसके सगीत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है ।" इस दृष्टिसे उन्होने हिन्दी, सस्कृत, बॅगला, अग्रेजी और रीतिकाल के छन्दो को भाषा के उच्चारण के अनुसार परखा है और वे इस परिणाम पर पहुॅचे है कि "हिन्दी का सगीत केवल मात्रिक छन्दो ही मे अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता, उन्ही के द्वारा उसके सौन्दर्य्य की रक्षा की जा सकती है ।" क्योकि हिन्दी के शब्द जैसे लिखे जाते है वैसे ही पढे जाते है, उसकी लिपि और स्वर एक है । कवि कहता है कि, "हिन्दी का स्वाभाविक सगीत ह्रस्व-दीर्घ मात्राओ को स्पष्टतया उच्चारित करने के लिए पूरा-पूरा समय देता है । मात्रिक छन्द मे बद्ध प्रत्येक लघु-गुरु अक्षर को उच्चारण करने मे जितना काल, तथा विस्तार मिलता, उतना ही स्वाभाविक वार्त्तालाप मे भी साधारणत मिलता है, दोनो मे अधिक अन्तर नही रहता । यही हिन्दी के राग की सुन्दरता अथवा विशेषता है ।"

अपने उच्चारण-भेद से अग्रेजी और बँगला स्पष्टत हिन्दी से भिन्न हो जाते है । पन्त को सस्कृत के वर्णवृत्त और ब्रजभाषा के कवित्त-सवैया भी हिन्दी के अनकूल नही जान पडते । पन्त जी छन्दो मे धारा-प्रवाह चाहते है, वे रुकावट पसन्द नही करते । उनका गद्य और काव्य दोनो धारावाही है ।

सस्कृत का भाषा-सगीत शब्द-प्रधान है, हिन्दी का राग-प्रधान । वर्णवृत्तो मे शब्दो की शृखला है, "एक शब्द का उच्चारण करते ही सारा

वाक्य मुँह से स्वय बाहर निकल आना चाहता, एक कोना पकड कर हिला देने से सारा चरण जजीर की तरह हिलने लगता है।" हिन्दी के मात्रिक छन्दो मे गति की स्वतन्त्रता है, उनमे शब्दो का अपना व्यक्तित्त्व भी रहता हे और समष्टि के साथ सामञ्जस्य भो। वर्णवृत्त मे राजतन्त्र है, मात्रिक छन्द मे जन-तन्त्र, एकमे बन्धनमय जीवन का अनुशासन है, दूसरे मे मुक्तहृदय का स्पन्दन। कवि लिखता है—"सस्कृत का सगीत जिस तरह हिल्लो-लाकार मालोपमा मे प्रवाहित होता है, उस तरह हिन्दी का नही। वह लोल लहरो का चञ्चल कलरव, बाल-झकारो का छेकानुप्रास है। उसमे प्रत्येक शब्द का स्वतन्त्र हृत्स्पन्दन, स्वतन्त्र अग-भगी, स्वाभाविक साँसे है। हिन्दी का सगीत स्वरो की रिमझिम मे बरसता, छनता-छनकता, बुदबुदो मे उबलता, छोटे-छोटे उत्सो के कलरव मे उछलता-किलकता हुआ बहता है। उसके शब्द एक दूसरे के गले पड कर, पगो से पग मिला कर सेनाकार नही चलते, बच्चो की तरह अपनी ही स्वच्छन्दता मे थिरकते-कूदते है।"—यही है पन्त की कविता का स्वरूप।

सस्कृत के वर्णवृत्त मे सन्धि और समास की प्रचुरता है। किन्तु हिन्दी की कविता के लिए कवि कहता है—"समास की कैंची अधिक चलाने से कविता की डाल ठूँठी तथा श्रीहीन हो जाती है।"

सस्कृत और हिन्दी-कविता मे समास, जीवन के आयतन के अनुसार द्विभिन्न क्रियाओ का सम्पादन करते है। सस्कृत अरण्य-युग की भारती है, हिन्दी परवर्त्ती युग की नागरी। अतएव, दोनो के सौन्दर्य्य-वोध मे अन्तर है। सस्कृत के वर्णवृत्तो में समास सघन-तरु-राजि की भाँति शब्दो को सगठित करते हैं, हिन्दी के छन्दो मे वे थाल के क्षुपो की तरह शब्दो की वन्यता का परिष्कार करते है, वहाँ वे 'कैंची' का ही काम करते है। हिन्दी की दृष्टि से कवि का यह कहना ठीक है कि, "समास का काम तो व्यर्थ बढकर इधर-उधर बिखरी तथा फैली हुई शब्दो की टहनियो को काँट-छाँट कर

उन्हे सुन्दर आकार-प्रकार देने तथा उनकी मासल-हरीतिमा मे छिपे हुए भावो के पुष्पो को व्यक्त भर कर देने का है ।"

कवि की यह काव्यरुचि आधुनिक नागरिक उद्यान की ओर है, यद्यपि उसकी भाव-चेतना अरण्य-युग की है । जन्म-भूमि हिमालय ने अपनी प्राकृतिक महिमा से पन्त को सस्कृत शब्दो का आर्य्यत्व दिया, आग्ल-शिक्षा-दीक्षा ने हिन्दी-छन्दो का नागरिक व्यक्तित्त्व ।

पन्त की रुचि तो भारतीय ही है, किन्तु उनकी भारतीयता खडीबोली के युग की है, ब्रजभाषा के युग की नही । ब्रजभाषा के कवित्त और सवैय्या सस्कृत के अनुकरण पर हिन्दी के पुराने वर्णवृत्त है । जिस कारण पन्त जी को सस्कृत के वर्णवृत्त हिन्दी के लिए उपयुक्त नही जान पडते उसी कारण कवित्त और सवैय्या भी । वे लिखते है—"सवैय्या मे एक ही सगण की आठ बार पुनरावृत्ति होने से, उसमे एक प्रकार की जडता, एकस्वरता (Monatony) आ जाती है । उसके राग का स्वर-पात बार-बार दो लघु अक्षरो के बाद आने वाले गुरु-अक्षर पर पडने से सारा छन्द एक तरह की कृत्रिमता तथा राग की पुनरुक्ति से जकड जाता है ।

कवित्त छन्द मुझे ऐसा जान पडता है, हिन्दी का औरस-जात नही, पोष्य-पुत्र है, न जाने, यह हिन्दी मे कैसे और कहा से आ गया, अक्षर-मात्रिक छन्द बगला मे मिलते है, हिन्दी के उच्चारण-सगीत की वे रक्षा नही कर सकने । कवित्त को हम सलापोचित (Colloquial) छन्द कह सकते है, सम्भव है, पुराने समय मे भाट लोग इस छन्द मे राजा महाराजाओ की प्रशसा करते हो, और इसमे रचना-सौकर्य्य पाकर, तत्कालीन कवियो ने धीरे-धीरे इसे साहित्यिक बना दिया हो ।

कवित्त-छन्द हिन्दी के स्वर और लिपि के सामञ्जस्य को छीन लेता है । उसमे, यति के नियमो के पालनपूर्वक, चाहे आप इकतीस गुरु-अक्षर रख दे, चाहे लघु, एक ही बात है, छन्द की रचना मे अन्तर नही आता ।

इसका कारण यह है कि कवित्त मे प्रत्येक अक्षर को चाहे वह लघु हो या गुर ,एक ही मात्रा-काल मिलता है, जिससे छन्द-बद्ध शब्द एक दूसरे को झकोरते हुए, परस्पर टकराते हुए, उच्चारित होते है, हिन्दी का स्वाभाविक सगीत नष्ट हो जाता है । सारी शब्दावली जैसे मद्यपान कर लडखडाती हुई, अडती, खिचती, एक उत्तेजित तथा विदेशी स्वर-पात के साथ बोलती है। कवित्त-छन्द के किसी चरण के अधिकाश शब्दो को किसी प्रकार मात्रिक छन्द मे बाँध दीजिये, यथा—'कूलन मे केलिन कछारन मे कुजन मे क्यारिन मे कलित कलीन किलकन्त है'—इसी लडी को यो सोलह मात्रा के छन्द मे रख दीजिये—

> सु-कूलन मे केलिन मे (और)
> कछारन कुजन मे (सब ठौर)
> कलित क्यारिन मे (कल) किलकन्त
> बनन मे बगर्‌यो (विपुल) वसन्त ।"

अब दोनों को पढिये और देखिये कि उन्ही 'कूलन केलिन' आदि शब्दो का उच्चारण-सगीत इन दो छन्दो मे किस प्रकार भिन्न-भिन्न हो जाता है, कवित्त मे परकीय, मात्रिक छन्द मे स्वकीय, हिन्दी का अपना उच्चारण मिलता है ।"

ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि कवित्त मे हिन्दी का स्वर वाक्य-मुखर है, मात्रिक मे भाव-मुखर, एक मे सार्वजनिक ओज है, दूसरे मे पारिवारिक माधुर्य्य ।

यह पारिवारिक माधुर्य्य केवल पन्त जी द्वारा प्रयुक्त मात्रिक छन्दो मे ही मिलता है। पन्त जी के छन्दो मे एक घरेलू स्वाभाविकता है। उनके छन्दो और भावो मे गृहिणीत्व है। इस दृष्टि से निराला जी का यह कथन ठीक है कि पन्त की कविता मे 'स्त्रीत्त्व के चिह्न (Female graces)'

है । उनके छन्द हिन्दी के लिए स्वकीय ही नही, आत्मीय जान पडते है, उनमे मानो हिन्दी की आत्मा ही अन्त पुर से उद्गीर्ण हो उठी हे ।

पन्त जी लिखते है, "ब्रजभभषा के अलकृत-काल मे सगीत के आदर्श का जो अध पात हुआ, उसका एक मुख्य कारण तत्कालीन कवियो के छन्दो का चुनाव भी है ।"

छन्दो के चुनाव मे पन्तजी के प्राञ्जल व्यक्तित्त्व का परिचय मिलता है। पन्त जी का कवि उस लालित-पालित गृह-शिशु की तरह है जिसमे सुशी-लता के साथ बालसुलभ स्वच्छन्दता भी है । सुबोध अन्त करण से स्वेच्छा-पूर्वक अगीकृत आत्मानुशासन की तरह एक ओर उनमे छन्दोवद्धता हे, दूसरी ओर हृदय की उन्मुक्तता। हिन्दी के मात्रिक छन्दो मे इस मर्य्यादित स्वतन्त्रता के लिए स्थान है, इसी लिए कवि ने उन्हे महत्त्व दिया है ।

पन्त जी कविता मे स्वर को प्रधानता देते है । उसी से उनकी काव्य-प्रकृति (छन्दोवद्धता और उन्मुक्तता) का सम्यक् निर्वाह होता हे । वे लिखते है—"जिस छन्द मे स्वर-सगीत की रक्षा की जा सकती, उसके सङ्कोच-प्रसार को यथावकाश दिया जा सकता है, उसमे राग का स्वाभा-विक स्फुरण, भाव तथा वाणी का सामञ्जस्य पूर्णरूप से मिलता है, जहाँ राग केवल व्यञ्जनो की डोरियो मे झूलता, वहाँअलकारो की झनक के साथ केवल 'हिडोरे' की ही रमक सुनाई पडती है। कवित्त का राग व्यञ्जन-प्रधान हे, उसमे स्वर अथवा मात्राओ के विकास के लिए अवकाश नही मिलता ।"

कवित्त की तरह ही सस्कृत के वर्णवृत्त और बँगला के अक्षर-मात्रिक छन्द भी व्यञ्जन-प्रधान है, वे केवल बाँधते है, स्वतन्त्रता नही देते, इसी-लिए पन्त को नही रुचते, हिन्दी की आत्मा के अनुरूप नही जान पडते । उनका कहना है कि—

"काव्य-सगीत के मूल-तन्तु स्वर है, न कि व्यञ्जन, जिस प्रकारसितार मे रागका रूप प्रकट करने के लिए केवल 'स्वर के तार' पर ही कर-सञ्चालन

किया जाता है और शेष तार केवल स्वर-पूर्ति के लिए, मुख्य तार को सहा-यता देने भर के लिए झङ्कारित किये जाते, उसी प्रकार कविता मे भी भावना का रूप स्वरो के समिश्रण, उनकी यथोचित मैत्री पर ही निर्भर रहता है, ध्वनि-चित्रण को छोड कर (जिसमे राग व्यञ्जन-प्रधान रहता, यथा, 'घन घमण्ड नभ गरजत घोरा') अन्यत्र व्यञ्जन-सगीत भावना की अभिव्यक्ति को प्रस्फुटित करने मे प्राय गौण रूप से सहायता मात्र करता है।"

सगीत मे स्वर-सौकर्य्य के लिए अब बॅगला के कलाकार भी हिन्दी के ह्रस्व-दीर्घ नियमो की ओर आकर्षित होने लगे है।

कविता मे राग-चित्र के लिए स्वर-सङ्गीत आवश्यक है। व्यञ्जनो मे भाव प्राय निश्चल रहते है, वे स्वर से ही सञ्चरित और गतिशील हो उठते हैं। पन्त जी ने अपनी ही कविता की कुछ पक्तियो का उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया है कि स्वर के सहयोग से किस प्रकार चित्र-राग सजीव हो उठता है।

शब्दो की तरह ही छन्दो पर भी पन्त जी की दृष्टि बडी सूक्ष्म है, मर्म्म-भेदिनी है। वे लिखते है, "भिन्न-भिन्न छन्दो की भिन्न-भिन्न गति होती है, और तदनुसार वे रस-विशेष की सृष्टि करने मे भी सहायक होते है।" पन्त जी ने भिन्न-भिन्न छन्दो (सखी, रूपमाला, रोला, राधिका, हरि-गीतिका, प्लवगम, अरिल्ल, चौपई) की गति का सजग निरीक्षण और उनसे नि सृत रस का अन्त स्पर्श किया है।

स्वय पन्त जी ने अपनी कविताओ मे किस रस के लिए किस छन्द का प्रयोग किया है, इसे पाठक स्वय उनकी रचनाओ से हृदयगम कर सकते है।

अतुकान्त और मुक्तछन्द

पन्त जी की दृष्टि से काव्य मे अतुकान्त जीवन के भाराक्रान्त क्षणो का वाहक है। वे कहते है—"जब हम अधिक कार्य्य-व्यग्र अथवा

भाराक्रान्त रहते, उस समय काम - काज का ऐसा ताप, क्रिया का ऐसा स्पन्दन-कम्पन रहता है कि हमें अपनी स्वाभाविक दिनचर्य्या मे बरते जाने वाले शिष्टाचार-व्यवहार के लिए, जीवन के स्वतन्त्र क्षणो मे प्रत्येक कार्य्य के साथ जो एक आनन्द की सृष्टि मिल जाती, उसके लिए, अवकाश ही नही मिलता, हमारे कार्य्य-प्रवाह मे तीव्र गति रहती, हमारा जीवन एक अश्रान्त दौड-सा, कुछ समय के लिए, बन जाता। यही ब्लैक-वर्स (Blank Verse) अथवा अतुकान्त कविता है।"

इस दृष्टि से, पन्त जी का कहना है कि, "हिन्दी मे रोला छन्द अन्त्यानु-प्रास-हीन कविता के लिए विशेष उपयुक्त जान पडता है, उसकी साँसो मे प्रशस्त जीवन तथा स्पन्दन मिलता है। उसके तुरही के समान स्वर से निर्जीव शब्द भी फडक उठते हैं। ऐसा जान पडता है, उसके राजपथ मे मेला लगा है, प्रत्येक शब्द 'प्रवाल शोभा इव पादपाना' तरह-तरह के सकेत तथा चेष्टाएँ करता, हिलता-डुलता आगे बढता है।"

पन्त जी के विचारो से सूचित होता है कि वे अतुकान्त को गति की तीव्रता और जीवन की व्यस्तता मे कला (अभिव्यक्ति) की सक्षिप्तता के लिए चाहते है।

रोला से पन्त जी के वाञ्छित अतुकान्त की आवश्यकता तो पूरी हो जाती है किन्तु छन्द मुक्त नही हो पाता।

जैसा कि पन्त जी के मन्तव्य से इङ्गित है, अतुकान्त जीवन के अति गद्य-क्षणो को प्रवाहित करता है। उन गद्य-क्षणो मे हम तुको से ही नही, छन्दो से भी मुक्त रहते हैं। अतुकान्त से काव्य गद्योन्मुख हो जाता है, किन्तु उद्गार बँधा रहता है। मुक्तछन्द से उद्गार को भी स्वतन्त्रता मिल जाती है।

तुक और छन्द का निर्बन्धन ही मुक्त-काव्य है ।

मुक्त छन्द के सम्बन्ध मे पन्त जी का यह मन्तव्य है कि, "अन्य छन्दो की तरह मुक्त-काव्य भी हिन्दी मे ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक सङ्गीत की लय पर ही सफल हो सकता है ।"

निराला जी के मुक्त छन्द के सम्बन्ध मे पन्त जी ने लिखा है कि, "उनके कुछ छन्द बॅगला की तरह अक्षर-मात्रिक राग पर, कुछ हिन्दी के ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक सगीत पर चलते है, तथा, कुछ इस प्रकार मिश्रित है कि उनमे कोई भी नियम नही मिलता। जहाँ पर उनकी कविता ह्रस्व-दीर्घ सगीत पर चलती, उनकी उज्ज्वल भाव-राशि उनके रचना-चातुर्य्य के सूत्र मे गुँथी हुई, हीरो के हार की तरह चमक उठती है।"

अक्षर-मात्रिक से पन्त जी का अभिप्राय उस छन्द से है जिसमे ह्रस्व-दीर्घ मात्रा के बदले अक्षर को ही इकाई माना जाता है, चाहे वह ह्रस्व हो या दीर्घ।

निराला जी का मुक्त छन्द हिन्दी की लय पर ही चलता है । उसमे गति तो छन्द की-सी रहती है, किन्तु उनके मुक्त छन्द को ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक अथवा अक्षर-मात्रिक नही कहा जा सकता। पन्त जी का यह कथन, 'कुछ इस प्रकार मिश्रित है कि उनमे कोई भी नियम नही मिलता', निराला जी के सभी मुक्त छन्दो के लिए ठीक जान पडता है। वस्तुत निराला जी ने किसी छन्द को मुक्त नही किया है, बल्कि अनेक गतियो का सामञ्जस्य ही उनका मुक्त छन्द बन गया है । मुक्त छन्द की अपेक्षा मुक्त प्रवाह कहने से उनके छन्द का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। प्रवाह मे मुक्त और सामञ्जस्य से सुसगत राग ही उनका मुक्त छन्द है। निराला जी के शब्दो मे—"मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि मे रह कर भी मुक्त है। उनमे नियम कोई नही। केवल प्रवाह कवित्त छन्द का-सा जान पडता है। कही-कही आठ अक्षर आप ही आप आ जाते है। मुक्त

छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम-राहित्य उसकी मुक्ति।"

निराला जी का यह मन्तव्य 'परिमल' के तीसरे खण्ड की कविताओ के सम्बन्ध मे है। इस खण्ड के मुक्त छन्द को हम अतुकान्त अथवा नाट्योचित कह सकते है।

सम्भव है, निराला जी को मुक्त छन्द की प्रेरणा बँगला से मिली हो और अभ्यास-वश उनके वाक्यो मे यत्र-तत्र अनायास बँगलापन आ गया हो, किन्तु उनका मुक्त छन्द बँगला के अक्षर-मात्रिक राग पर अवलम्बित नही जान पडता। जिन पक्तियो ('देख यह कपोत कण्ठ. 'इत्यादि) मे गति-भग जान पडता है उन पक्तियो मे 'कवित्त' का मुक्त प्रयोग है। कवित्त में भी 'स्वर-पात' होता है। कवित्त और बॅगला छन्द का आधार (अक्षर-मात्रिक) एक है, अतएव ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक छन्द की दृष्टि से 'बाहु बल्ली कर सरोज' मे गति-भग देख कर बॅगला का भ्रम हो जाना स्वाभाविक है। पन्त जी उसे हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नही समझते।

पन्त जी ने 'कवित्त' को 'सलापोचित छन्द' कहा है। निराला जी का कवित्त से प्रेरित मुक्तछन्द सलाप के लिए ही है। उनका कहना है कि "नाटको मे सब से अधिक रोचकता इसी कवित्त छन्द की बुनियाद पर लिखे गये स्वच्छन्द-छन्द द्वारा आ सकती है। इस छन्द मे आर्ट ऑफ रीडिंग का आनन्द मिलता है और इसीलिए इसकी उपयोगिता रङ्गमञ्च पर सिद्ध होती है।"

इस दृष्टि से देखने पर निराला जी के मुक्त छन्द मे जहॉ गति-भग है वहॉ या तो उनकी अग-भगी है या उनके स्वभाव की अनमनस्कता।

जैसा कि ऊपर कहा है, निराला जी ने किसी एक छन्द को मुक्त नही किया है, फिर भी रङ्गमञ्च के लिए उन्होने कवित्त का मुक्त प्रयोग किया। किन्तु उनके मुक्त छन्द मे सर्वत्र कवित्त का ही उपयोग नही है।

निराला जी के मुक्त छन्द दो प्रकार के है—'परिमल' के दूसरे खण्ड मे विषम मात्रिक और तीसरे खण्ड मे विमात्रिक। विषम मात्रिक मुक्त छन्द मे 'आर्ट ऑफ म्यूजिक' भी है, निराला जी उसे चर्च के प्रेयर के स्वर में गाते है। ऐसे ही मुक्त छन्द मे पन्त जी को राग का सामञ्जस्य मिला है।

अतुकान्त की उपयोगिता गीतिनाट्य अथवा प्रवन्ध-काव्य के लिए है। अतुकान्त द्वारा पात्रो के कथोपकथन मे दैनिक वार्त्तालाप की-सी स्वाभाविकता आ जाती है, उसमे हमारे जीवन का गद्य-अश मुखरित हो उठता है। प्रसाद जी ने अपने गीतिनाटच 'करुणालय' मे अतुकान्त का प्रयोग किया है, किन्तु छन्द के सम्बन्ध मे उनका कोई विशेष दृष्टिकोण नही है।

पन्त जी 'युगवाणी'-द्वारा 'गीत-गद्य' की एक नयी काव्य-कला ले आये। उसमे 'आम्र विहग', 'पुष्प प्रसू', 'ओस के प्रति' इत्यादि कविताऍ मुक्त छन्द मे है। पन्त के मुक्त छन्द मे उनकी अपनी विशेषता है। उनके मक्त छन्द की दूब-सी छोटी-छोटी पक्तियाँ मानो 'लघु-लघु पद-चार' कर रही है।

रङ्गमञ्चके लिए अतुकान्त की उपयोगिता पन्त जी की दृष्टि से भी ओझल नही है, तभी तो उन्होने 'रोला' का परिचय देते हुए लिखा है, उसमे, 'प्रत्येक शब्द तरह-तरह के सकेत तथा चेष्टाएँ करता, हिलता-डुलता आगे बढता है।'

निराला जी ने जैसे कवित्त का मुक्त रूप दिया वैसे ही पन्त जी रोला को भी मुक्त रूप दे सके तो उसकी भी नाटकीय विशेषता देखी जा सकती है। (इधर उन्होने रेडियो के लिए लिखित अपने सगीत-रूपको मे रोला का उपयोग किया है।)

निराला जी के अतिरिक्त विशिष्ट कवियो मे गुप्त जी, सियाराम शरण जी और प० गिरधर शर्मा 'नवरत्न' ने भी अतुकान्त रचना की है। गुप्त जी ने 'मेघनाद-वध' के अनुवाद मे अतुकान्त के लिए घनाक्षरी से

उत्पन्न मिताक्षरी का उपयोग किया है। प्रसाद जी यद्यपि अतुकान्त कविता के अग्रगण्य कवि है तथापि उन्होने परवर्त्ती काल मे ('लहर' मे) निराला जी के ही मुक्तछन्द का अनुसरण किया। सियारामशरण जी का अतुकान्त भी निराला जी के अतुकान्त के उतने ही समीप है जितने समीप गुप्त जी की मिताक्षरी घनाक्षरी के। ये सब एक ही कवित्त-परिवार के कवि है।

अपनी नयी कविता-पुस्तको मे पन्त जी ने रुचि-परिवर्त्तन या कलात्मक आस्वादन के लिए अक्षर-मात्रिक छन्द के कुछ प्रयोग किये है। 'ग्राम्या' मे 'खोलो वासना के वसन नारी-नर', 'स्वर्णकिरण' मे 'नारी-पथ', 'सक्रमण', 'स्वर्णधूलि' मे 'गणपति उत्सव', 'युगागम', 'जातिमन', 'क्षणजीवी', 'मनुष्यत्व', 'चौथी भूख', 'मृत्युञ्जय', इत्यादि कविताएँ अक्षर-मात्रिक छन्द मे है और कही-कही कवित्त के सम्पर्क मे है। ओज के लिए पन्त जी को भी कवित्त का सहयोग लेना पडा, यद्यपि वह उनका प्रिय सगीत नही।

पन्त जी जीवन की तरह ही कला के भी नये-नये प्रयोग करते रहते है—कभी शब्दो मे, कभी तुको मे, कभी छन्दो मे, कभी कविता की पक्तियो मे।

पन्त जी के काव्य-कला-सम्बन्धी कुछ प्रयोगो को उनके 'उच्छ्वास', 'आँसू' और 'परिवर्त्तन' मे भी देखा जा सकता है। 'पल्लव' के 'प्रवेश' मे पन्त जी ने अपनी इन रचनाओ मे से मुक्त छन्द का उदाहरण दिया है। उन्होने नियमित मात्रिक छन्दो की पक्तियो को ही भावनाओ के उत्थान-पतन और रसो की गति-यति के अनुसार यथास्थल घटा-बढा कर मुक्त-पद -विन्यास किया है, जिससे कविता में एक नाटकीय व्यञ्जना आ गयी है।

मुक्त छन्द का स्वरूप पन्त जी ने इन शब्दो मे स्पष्ट किया है—"यह

ध्वनि अथवा लय (Rhythm) पर चलता है। जिस प्रकार जलौघ पहाड़ से निर्झर-नाद में उतरता, चढ़ाव में मन्दगति, उतार में क्षिप्रवेग धारण करता, आवश्यकतानुसार अपने किनारों को काटता-छाँटता, अपने लिए ऋजु-कुञ्चित पथ बनाता हुआ आगे बढ़ता है, उसी प्रकार यह छन्द भी कल्पना तथा भावना के उत्थान-पतन, आवर्त्तन-विवर्त्तन के अनुरूप संकुचित-प्रसारित होता, सरल-तरल, ह्रस्व-दीर्घ गति बदलता रहता है।"

मुक्त छन्द का यह रूप निराला जी की रचनाओं में मिलता है। निराला जी पदावेग के कवि हैं।

पन्त जी अन्तःस्रोतस्वी कवि हैं। उनकी गतिशीलता में सृजन-सिञ्चन है, निर्म्माण है। उनके उद्‌गारों का प्रवाह छन्दों के तटों में बहता है, सन्तुलित रहता है। उन्हीं के शब्दों में, "जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते,—जिनके बिना वह अपनी ही बन्धन-हीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है,—उसी प्रकार छन्द भी अपने नियन्त्रण से राग को स्पन्दन-कम्पन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल सजल कलरव भर, उन्हें सजीव बना देते हैं। वाणी की अनियमित साँसें नियन्त्रित हो जातीं, तालयुक्त हो जातीं; उसके स्वर में प्राणायाम, रोओं में स्फूर्त्ति आ जाती, राग की असम्बद्ध-झंकारें एक वृत्त में बँध जातीं, उनमें परिपूर्णता आ जाती है। . . . ." ऐसा ही है पन्त जी के छन्दों का व्यक्तित्त्व।

पन्त जी के स्वभाव में जो सामञ्जस्य और सौष्ठव है वही उनके छन्दों में भी। उनका जीवन और काव्य छन्दों में मर्य्यादित है—शरीर में आत्मा की तरह, सगुण में निर्गुण की तरह, बन्धन में मुक्ति की तरह। उन्होंने 'मुक्त छन्द' नहीं, बल्कि 'मुक्त काव्य' दिया, भावों और रसों को उन्मुक्त किया।

तुकान्त और गीतकाव्य

प्रसगान्तर मे हमने शब्दो को राग का अनुगामी, सहगामी और अग्रगामी कहा है। पदो के मध्य मे शब्द अनुगामी-सहगामी रहते है, पदान्त के तुको मे अग्रगामी।

तुक कविता मे केवल सगीत का अन्त्यानुप्रास नही, बल्कि भाव का मर्म्म-केन्द्र भी है। पन्त जी लिखते है—"तुक उसी शब्द मे अच्छा लगता जो पद-विशेष मे गुँथी हुई भावना का आधार-स्वरूप हो। प्रत्येक वाक्य के प्राण शब्द-विशेष पर निहित अथवा अवलम्बित रहते हैं, शेष शब्द उसकी पूर्त्ति के लिए, भाव को स्पष्ट करने के लिए, सहायक-मात्र होते है। उस शब्द को हटा देने से सारा वाक्य अर्थ-शून्य, हृदय-हीन-सा हो जाता है। वाक्य की डाल मे, अपने अन्य सहचरो की हरीतिमा से सुसज्जित, यह शब्द नीड की तरह छिपा रहता है, जिसके भीतर से भावना की कोकिला बोल उठती, और वाक्य का प्रत्येक पत्र उसके राग को अपनी मर्म्मर-ध्वनि मे प्रतिध्वनित कर परिपुष्ट करता है, इसी शब्द-सम्राट् के भाल पर तुक का मुकुट शोभा देता है।"—और यही शब्द-सम्राट कविता मे राग का अग्रगामी है।

तुक मे कविता का स्वास्थ्य और सगीत रहता है। पन्त जी के शब्दो मे—"तुक राग का हृदय है, जहाँ उसके प्राणो का स्पन्दन विशेष रूप से सुनाई पडता है। राग की समस्त छोटी-बडी नाडियाँ मानो अन्त्यानुप्रास के नाडी-चक्र मे केन्द्रित रहती, जहाँ से नवीन बल तथा शुद्ध रक्त ग्रहण कर वे छन्द के शरीर मे स्फूर्ति का सञ्चार करती रहती है। जो स्थान ताल मे 'सम' का है, वही स्थान छन्द मे तुक का, वहाँ पर राग शब्दो की सरल-तरल ऋजु-कुञ्चित 'परनो' मे घूम-फिर कर विराम ग्रहण करता, उसका सिर जैसे अपनी ही स्पष्टता मे हिल उठता है। जिस प्रकार अपने आरोह-अवरोह मे राग, वादी स्वर पर बार-बार ठहर कर अपना

रूप-विशेष व्यक्त करता है, उसी प्रकार वाणी का राग भी तुक की पुनरावृत्ति से स्पष्ट तथा परिपुष्ट होकर लय-युक्त हो जाता है।"

कविता में तुक का महत्त्व बहुत कम कवि जानते हैं। वे तुक मे अपनी धडकन नही मिला पाते। शब्द, छन्द और भाव की तरह तुको को भी समुचित काव्यत्त्व मिला छायावाद मे। पन्त जी की कविता मे तुक पद-प्रवाह से स्वत रस-विन्दु की तरह निर्गत हो उठे हैं। उनमे स्वच्छता, सुघरता और उपयुक्तता है।

तुक मे हमारे प्रकृतिस्थ क्षणो का अन्तर्मिलन होता है। पन्त जी ने लिखा है, अतुकान्त मे, "कर्म्म (action) का प्राधान्य रहता है, उसमे हमे तुक नही मिलता, प्रभात और सन्ध्या के अवकाशपूर्ण घाटो पर हमे इस तुक के दर्शन मिलते है, प्रत्येक पदार्थ में एक सोने की भावपूर्ण, शान्त, सगीतमय छाप-सी लग जाती है, यही गीतकाव्य है।"

इसी का चित्र मानो 'युगान्त' की इन पक्तियो में है—

'स्वप्नस्थ हुए स्वर्णातप मे
लो, स्वर्ण-स्वर्ण अब सब भूधर।'

गीतकाव्य का वातावरण स्वर्णिम और स्वप्निल है, उसके राग मे मौन सवेदन है। 'प्रभात और सन्ध्या के अवकाशपूर्ण घाटो पर' प्राणी को गीतकाव्य के भाव-जगत मे ही आकर्षण और विश्राम मिलता है—

कनक-छाया मे जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार
सुरभि-पीडित मधुपो के बाल,
तडप , बन जाते है गुञ्जार,
न जाने, ढुलक ओस मे कौन
खीच लेता मेरे दृग मौन!

बिछा कार्य्यों का गुरुतर-भार
दिवस को दे सुवर्ण-अवसान,
शून्य-शय्या मे, श्रमित अपार,
जुडाती जब मै आकुल-प्राण,
न जाने, मुझे स्वप्न मे कौन
फिराता छाया-जग मे मौन!
('पल्लव')

अलङ्कार

अलकारो का सीधा सम्बन्ध मनुष्य के सौन्दर्य्य-वोध से है। रीति-काल की कविता अलकार-प्रधान है। उस युग मे बैभव-विलास की रसिकता थी, सौन्दर्य्य-वोध नही। द्विवेदी-युग के गद्य-जीवन मे भी सौन्दर्य्य-बोध का प्राय अभाव है। उसके शुष्क कलेवर मे अलकार पुरानी थाती की तरह चिपके हुए है।

छायावाद ने अपने सौन्दर्य्य-वोध से भावो की तरह ही अलकारो को भी स्वाभाविकता दी। मध्ययुग की जो प्राकृतिक सुषमा मानवीय प्रभुत्त्व से दबी हुई थी, उसका उद्धार और शृगार छायावाद से हुआ। उसके अलकारो मे पार्वती और शकुन्तला का कुसुमित प्रसाधन खिल उठा। हमने विमस्य-विमुग्ध होकर देखा कि अलकार तो सौन्दर्य्य के ही प्रति-अग है।

पन्त जी के शब्दो मे—"अलकार केवल वाणी की सजावट के लिए नही, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार है, भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है, वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति है, पृथक् स्थितियो के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओ के भिन्न चित्र है। जैसे वाणी की झकारे विशेष घटना से टकरा कर फेनाकार हो गयी हो, विशेष भावो के झोके खाकर बाल-

लहरियो, तरुण तरगो मे फूट गई हो, कल्पना के विशेष बहाव मे पड आवर्त्तों मे नृत्य करने लगी हो। वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव-भाव है।"

पन्त जी की कविताओ मे अलकारो की भरमार नही है। चित्रोपमा ही उनका मुख्य अलकार है। उनके अलकार कविता मे ऐसे समरस हो गये है कि अलकार-जैसे नही जान पडते।

'पल्लव' के 'प्रवेश' मे पन्त जी ने रीति-काल की काव्य-कला के सभी अगो का सागोपाग विवेचन कर दिया है। उसमे कवि का अन्तर्लोचन है। कहा जाता है कि असफल कवि सफल समालोचक हो जाता है। किन्तु पन्त का विवेचन उस समय का है जब 'पल्लव' द्वारा उनकी काव्य-प्रतिभा पूर्णता प्राप्त कर चुकी थी। कवि कविता मे कला के जिन तत्त्वो का उपयोग करता है उनका विशेषज्ञ वही तो हो सकता है।

यद्यपि हिन्दी मे छायावाद द्विवेदी-युग के बाद आया था, रीति-काल बहुत पीछे छूट चुका था, तथापि कवि-सम्मेलनो मे रीति-युग का ही बोलबाला था। खडीबोली के आचार्य्य और ब्रजभाषा के कवि-पुगव छायावाद के कवियो पर यह लाञ्छन लगाते थे कि उन्हे भाषा और काव्य-शास्त्र का ज्ञान नही है। 'पल्लव' का 'प्रवेश' पढने से ज्ञात हो जाता है कि छायावाद का प्रतिनिधि-कवि भी शास्त्र से परिचित है, किन्तु वह उसका उपयोग उसी तरह करता है जैसे कोई कलाकार शब्दकोष का। कवि ने शास्त्र को आत्मसात् कर साहित्य मे उसका स्वारस्य दिया है। कवि का निष्कर्ष यह है—"जिस प्रकार सगीत मे सात स्वर तथा उनकी श्रुति-मूर्छनाएँ केवल राग की अभिव्यक्ति के लिए होती है, और विशेष स्वरो के योग, उनके विशेष प्रकार के आरोह-अवरोह से विशेष-राग का स्वरूप प्रकट होता है, उसी प्रकार कविता मे भी विशेष अलकारो, लक्षणा-व्यञ्जना आदि विशेष शब्द-शक्तियो तथा विशेष छन्दो के सम्मिश्रण और

सामञ्जस्य से विशेष-भाव की अभिव्यक्ति करने मे सहायता मिलती है।"

कवि के लिए शास्त्र साधन है, स्वयसिद्धि नही। कवि एक सीमा तक साहित्यिक सुव्यवस्था के लिए शास्त्र की गुरुता को भी शिरोधार्य्य करता है, उच्छृखलता या अराजकता उसे अभिप्रेत नही, किन्तु कला की स्वतन्त्रता के लिए वह एक सत्याग्रही की तरह विधि-निषेधो की अवज्ञा भी करता है।

पन्त ने छायावाद की आत्मा के अनुरूप काव्य-शास्त्र को नवीन आकार-प्रकार दिया है, उसमे नवीन रक्त का सञ्चार किया है। कविता की तरह ही उसे भी रोमैन्टिक बना दिया है।

व्रजभाषा की कविता अवगुण्ठनवती थी। छायावाद मे कला का जो आभिजात्य है उसने भी कविता को उघर नही जाने दिया। उसके रोमास मे आर्य्य तारुण्य था। व्रजभाषा के अवगुण्ठन मे सामाजिक विवशता थी, छायावाद के अवगुण्ठन मे प्राकृतिक प्रेरणा—

देखता हूँ जब पतला
इन्द्रधनुषी हलका
रेशमी घूँघट बादल का
खोलती है कुमुद-कला,

तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे करता तब अन्तर्धान,
न जाने तुमसे मेरे प्राण
चाहते क्या आदान!

('पल्लव')

'पाँच कहानियाँ' के 'अवगुण्ठन' मे पन्त ने नायक के हृदय मे बैठ कर मानो स्वय ही स्वगत कहा था, "कला को छिपाना ही—रहस्य को रहस्य बनाये रखना ही—तो कला है।"

काव्य मे यही अवगुण्ठिता कला जलद-पट से चन्द्रिका की तरह उद्भासित होती है।

काशी,
निशीथ
१३।१२।४९

सुन्दरम्

[छायावाद-युग]

उद्घाटन

स्वस्ति, जीवन के छाया-काल !
सुप्त-स्वप्नो के सजग-सकाल !
मूक-मानस के मुखर-मराल !
स्वस्ति, मेरे कवि-बाल !

तुम्हारा मानस था सोच्छ्वास,
अलस-पलको मे स्वप्न-विलास,
आँसुओ की आखो मे प्यास,
गिरा मे था मधुमास !

('पल्लव', 'छाया-काल')

यह है हिन्दी-कविता के छाया-काल (छायावाद-युग) मे श्री पन्त जी के कवि-जीवन का भाव-चित्र। कैसा था कवि का करुण-मधुर निरीह-जीवन ! कवि उसके प्रति स्वय भी सवेदनशील हो उठा है, उसे आशीर्वाद दे रहा है—'स्वस्ति, जीवन के छाया-काल !'—वह छाया-काल कवि का स्वप्निल शैशव और यौवन है।

'पल्लव' मे पन्त ने व्रजभाषा की तरह खडीबोली को भी सौन्दर्य्य के मधुमास और प्रणय के उच्छ्वास से सजीव कर दिया था। 'पल्लव' शीर्षक प्रारम्भिक कविता मे कवि ने कहा था—

न पत्रो का मर्म्मर-सगीत,
न पुष्पो का रस, राग, पराग,

एक अस्फुट, अस्पष्ट, अगीत,
सुप्ति की ये स्वप्निल मुसकान,
सरल शिशुओ के शुचि अनुराग,
वन्य विहगो के गान !

कवि का यह उद्गार 'वीणा' की कविताओ पर चरितार्थ होता है, जिसमे नव-किसलय की तरह अविकच शैशव का अबोध-जगत है । 'पल्लव' मे पल्लवित यौवन का रस-बोध है, इसमे 'पत्रो का मर्म्मर-सगीत' भी है, 'पुष्पो का रस-राग-पराग' भी। प्रकृति के विकास की तरह ही 'पल्लव' की अभिव्यक्ति का क्षेत्र विस्तृत हो गया है —

विपुल कल्पनाएँ लहरो मे,
तरु-छाया मे विरह-विषाद,
मिली तृषा सरिता की गति मे
तम मे अगम, गहन-उन्माद !
('अनग')

'वीणा' मे बालिका, प्रकृति की ओर थी, 'पल्लव' मे प्रकृति, पुरुष की ओर है। प्रकृति मानो प्रेयसी के रूप मे साख्य पुरुष की आराधना कर रही है। उसे अपने आराध्य का 'मौन निमन्त्रण' मिल रहा है—

देख वसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के-से मृदु-उद्गार
कुसुम जब खुल पडते सोच्छ्वास
न जाने सौरभ के मिस कौन
सँदेशा मुझे भेजता मौन !

'पल्लव' में प्रकृति की चित्रसारी है ।

प्रकृति के चित्रो मे कल्पना की विविधता भी है, जैसे नक्षत्र, बादल और छाया मे, भावना की एकता भी है, जैसे मौन निमन्त्रण, विश्ववेणु, वीचि-विलास, शिशु, बालापन, अनग और स्वप्न मे। कई छोटी-छोटी कविताएँ भावना के ही प्रगीत है, जैसे, मोह, विनय, वसन्त श्री, आकाक्षा, याचना, विसर्जन, विश्व-छवि, सोने का गान, नारी-रूप, निर्झर-गान मुसकान, मधुकरी, निर्झरी, इत्यादि। ये कविताएँ सरलता की दृष्टि से 'वीणा' की याद दिलाती है, इनमे छायावाद की काव्यकला के शैशव और यौवन की वय सन्धि (कैशोर्य्य) है।

'गुञ्जन मे पुरुष प्रकृति की ओर है। वह कहता है—

> तुम्हारी तनु-तनिमा लघु भार
> बनी मृदु व्रतति-प्रतति का जाल,
> मृदुलता सिरिस-मुकुल सुकुमार,
> विपुल पुलकावलि चीना-डाल।

'पल्लव' मे नारी-हृदय की रमणीयता है, 'गुञ्जन' में पुरुष-कण्ठ की उर्ज्जस्विता, तथापि भाषा, भाव और सगीत मे 'पल्लव' का लालित्य पूर्वस्मृति की तरह शेष है। 'गुञ्जन' की 'अप्सरा' मे तो 'पल्लव' की ही तन्वगी भाषा का नवीन निखार और भराव है।

'ज्योत्स्ना' मे प्रकृति प्रवासिनी है। महादेवी की पक्ति याद आती है—'रजकणो मे खेलती किस विमल विधु की चाँदनी मै।'—वह पृथ्वी को ही स्वर्ग बना देने के लिए भूतल पर आती है और नवजीवन की प्रेरणा जगा कर अपने दिव्यलोक को लौट जाती है, उसकी स्वप्न-सृष्टि का प्रतिनिधित्त्व अपनी उत्तरोत्तर रचनाओ मे कवि कर रहा है।

प्रकृति का वरदान

जीवन की तरह कला की साधना भी पन्त को प्रकृति से मिली है।

'पल्लव' की 'छाया' शीर्षक कविता में कवि ने मानो प्रकृति से जिज्ञासा की थी—

> ऐ अवाक् निर्जन की भारति !
> कम्पित अधरो से अनजान,
> मर्म्म-मधुर किस सुर मे गाती
> तुम अरण्य के चिर आख्यान ?

अरण्य-युग (आर्ष युग) की प्रकृति के उसी सुर को कवि ने मनुष्य की वाणी मे साधा है। पन्त के शब्दो, छन्दो और भावो मे प्रकृति ही सौन्दर्य्य से सुढर ओर सगीत से मुखर हो गयी है ।

प्रकृति का स्थूल रूप (भौगोलिक रूप) तो दिखाई देता है, किन्तु उसका सूक्ष्म रूप (भावात्मक रूप) अन्त करण की तरह ओझल है । कवि ने प्रकृति के सूक्ष्म रूप को ग्रहण करने के लिए छाया से याचना की थी—

> ऐ अस्पृश्य, अदृश्य अप्सरसि !
> यह छाया-तन, छाया-लोक,
> मुझको भी दे दो मायाविनि !
> उर की आँखो का आलोक ।

यह 'छाया-तन' और 'छाया-लोक' ही तो काव्य मे छायावाद बन गया । वह खडीबोली के लिए प्रकृति का वरदान है ।

'पल्लव' में प्रकृति रागवती होकर अपने लीला-वपु से ललित विहार कर रही है । उसके नयनो मे 'नि सीम व्योम' है और उरोरुहो मे 'सुरसरि धार' है । वह अलौकिक मानवी है ।

पन्त ने सृष्टि के दिग्दिगन्त से 'श्री सुख सुखमा' को चुन-चुन कर छायावाद की कविता का स्नेहाञ्चल भर दिया। 'ज्योत्स्ना' के एक गीत मे किरणे, ज्योत्स्ना से कहती हैं—

उर मे अविकच स्वप्नो का युग
मन की छवि तन से छन छाई ।
श्री सुख सुखमा की कलि चुन चुन
जग के हित अञ्चल भर लाई।

यही बात पन्त की सौन्दर्य्यमयी काव्यप्रतिभा के लिए भी कही जा सकती है ।

कवि का स्वप्न

छायावाद, सचमुच, स्वप्नो का युग था । 'ज्योत्स्ना' की सुरभि के शब्दो मे, पन्त के सम्पूर्ण जीवन-दर्शन का एकमात्र यही निष्कर्ष है— "ससार से तामसी विनाश उठ जाय और यह सृष्टि प्रेम की पलको मे, अपने ही स्वरूप पर मुग्ध, सौन्दर्य्य का स्वप्न बन जाय ।"

पन्त ने हरित पल्लवो की द्रोणी मे कुसुमित सौन्दर्य्य को प्रज्ज्वलित प्रणय से प्रदीप्त कर आराध्य की अर्चना मे उसी तरह प्रवाहित कर दिया जिस तरह हरिद्वार मे (हरि के चरणो मे) भक्तजन पत्रो की अञ्जलि मे फूलो के साथ कर्पूर की आरती जला कर उसे गगा के पुण्य प्रवाह मे प्रवाहित कर देते है । प्रेम की यही आरती लहरो में लहराती चली जा रही थी कि अचानक कालानिल के झोके ने उसे बुझा दिया—

मिले थे दो मानस अज्ञात,
स्नेह-शशि बिम्बित था भरपूर,
अनिल-सा कर अकरुण आघात,
प्रेम-प्रतिमा कर दी वह चूर
(उच्छ्वास')

कवि को जीवन मे क्षणभगुरता का परिचय मिला । उसने मर्म्माहत हृदय से कहा—

अचिरता देख जगत की आप,
शून्य भरता समीर नि श्वास,
डालता पातो पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश,
सिसक उठता समुद्र का मन,
सिहर उठते उडगन ।
('परिवर्तन')

'पल्लव' के परिवर्त्तन' मे काल का अकरुण इतिहास है, जीवन का करुण काव्य है ।

कवि निराश नही हुआ । छायावाद के एकान्त-जगत से सार्वजनिक जगत मे आकर उसे विश्वास हो गया कि मनुष्य काल-विजयी हो सकता है, मर्त्यलोक को अमृत-लोक (स्वर्ग) बना सकता है । 'पल्लव' के भावोन्मेष के बाद 'गुञ्जन' मे कवि नें समष्टिवाद का सदेश सुनाया है, उसी का चित्रण और निरूपण 'पॉच कहानियाँ' और 'युगान्त' मे किया है । कवि की वाणी मे अब भी मधुमास (सौन्दर्य्योल्लास) है, यहाँ तक कि उस 'युगान्त' मे भी, जिसमे छायावाद-युग का अन्त है, वसन्त 'चञ्चल पग दीपशिखा के धर' कर, 'पुष्पो के चित्रित दीप जला' कर, पृथ्वी पर पदार्पण कर रहा है—

"आ, प्रिये ! निखिल ये रूप-रग
रिलमिल अन्तर मे स्वर अनन्त
रचते सजीव जो प्रणय-मूर्त्ति
उसकी छाया, आया वसन्त ।"

प्रकृति मे वसन्त भी है, किन्तु मनुष्य के जीवन मे पतझड ही पतझड है । मनुष्य भी अपने जीवन मे वासन्तिक उल्लास पा जाय, इसी के लिए

कवि के 'आँसुओ की आँखो की प्यास' युग के अभावो की भूख-प्यास बन गयी ।

छायावाद-युग मे आँखो की प्यास प्रणय की प्यास थी । 'पल्लव' के 'आँसू' मे कवि ने कहा था--

हाय ! मेरा जीवन,
प्रेम औ' आँसू के कन !
आह, मेरा अक्षय धन,
अपरिमित सुन्दरता औ' मन !

चाहे प्रणय की भावात्मक तृष्णा हो, चाहे युग की अभावात्मक भूख-प्यास हो, चाहे मुमुक्षु की आध्यात्मिक अतृप्ति हो, इन सबमे केवल साधनो का अन्तर है, मूलत इनमे एक ही मर्म्म-मधुर आकाक्षा है--

एक ही तो असीम उल्लास
विश्व मे पाता विविधाभास,
तरल जलनिधि मे हरित विलास,
शान्त अम्बर मे नील विकास,
वही उर-उर मे प्रेमोच्छ्वास,
काव्य मे रस, कुसुमो मे वास,
अचल तारक-पलको मे हास,
लोल लहरो में लास !
विधि द्रव्यो मे विविध प्रकार
एक ही मर्म्म-मधुर झकार !
('परिवर्त्तन')

आज की अभाव-जन्य समस्याओ से भी स्पष्ट हो जाता है कि अन्न से लेकर आत्मा तक सब एक ही मर्म्मस्पृहा (जीवन की इच्छा) से सम्बद्ध है ।

पन्त ने भारतीय नाट्यपरम्परा के अनुसार जीवन का सुखान्त चित्र अकित किया है। युग के अभावो मे भी जीवन उनके लिए एक मधुर साधना है—तप रे मधुर मधुर मन !'

'गुञ्जन', 'ज्योत्स्ना', 'युगान्त' या उसके बाद की किसी भी कृति मे पन्त ने हाहाकार और सघर्ष को महत्त्व नही दिया है। आज के युद्धलोलुपो को लक्ष्य कर 'ज्योत्स्ना' कहती है—"इस आनन्दपूर्ण सृष्टि का अर्थ इन्होने जीवन-सग्राम समझ लिया है। रात-दिन द्वन्द्व-सघर्ष, वाद-विवाद, ईर्ष्या-कलह के सिवा इन्हे और कुछ सूझता ही नही।"

'युगान्त' के बाद पन्त छायावाद से प्रगतिवाद के युग मे जाकर उस-भारतीय कर्म्मयोग को समाज मे मूर्त्त करते है जिससे मनुष्य ही सच्चिदानन्द हो जाता है। जीवन के सगीत में वे मनुष्य के मनोरागो का स्वर-सन्तुलन चाहते हैं, प्रवृत्तियो की अराजकता नही। आज के अभाव-युग मे जो असन्तोष और अशान्ति व्याप्त है, वह मनुष्य की मानसिक असगति अथवा 'आन्तरिक विपर्य्यय' का परिणाम है। पन्त जी मनुष्य के मनोरागो को स्वर-सगति (आन्तरिक अन्विति) देकर उसमे सस्कृति (सम्यक् कृति सस्कृति) का सञ्चार करते है। केवल राजनीतिक अथवा आर्थिक आधार पर निर्म्मित साम्यवादी समाज मे भी सुरुचिपूर्ण सुसस्कृत व्यक्ति उसी तरह अकेला पड जायगा जिस तरह आज के पूँजीवादी युग मे स्वय कवि अकेला पड गया है—

> एकाकीपन का अन्धकार, दुस्सह है इसका मूक भार,
> इसके विषाद का रे न पार !
>
> ('गुञ्जन', 'एक तारा')

पन्त जी सास्कृतिक समाजवादी है। कवि छायावाद-युग मे भी स्वप्नदर्शी था और अब इस प्रगतिशील युग मे भी भविष्य का स्वप्नदर्शी है। उसे अपने स्वप्नो के सफल होने की आशा है—

मेरा स्वर होगा जग का स्वर,
मेरे विचार जग के विचार,
मेरे मानस का स्वर्ग-लोक,
उतरेगा भू पर नई बार ।

('युगान्त')

कवि जिस समाज मे समवेत् होकर स्वर्ग की सृष्टि करना चाहता है वह व्यक्तियो का समुदाय नही, अपितु अन्तर्विकसित व्यक्तित्त्वो का सगम है, ज्योतिर्म्मय हृदयो का सस्थान है । 'गुञ्जन' के 'एक तारा' मे उसी स्वर्गिक समाज की कवि ने कुछ झलक दी है—

गुञ्जित अलि-सा निर्जन अपार, मधुमय लगता घन अन्धकार,
हलका एकाकी व्यथा-भार !
जगमग-जगमग नभ का आँगन, लग गया कुन्द कलियो से घन,
वह आत्म और यह जग-दर्शन !

साधना की व्यापकता

छायावाद का आत्मदर्शन ही भविष्य मे 'जग-दर्शन' (समाज-दर्शन) बन जायगा। छायावाद मे व्यक्तिगत साधना और लोक-साधना दोनो का समावेश है । व्यक्तिगत साधना 'सोऽहम्' की ओर है, लोक-साधना 'एकोऽहम बहुस्याम' की ओर । अन्तता दोनो की परिणति है निखिल सृष्टि की एकात्मता, अनेकता मे एकता । पन्त का समष्टिवाद, ऐक्यवाद है । ज्योत्स्ना' कहती है— "असख्य कोटि के जीवो एव मनुष्यो से युक्त, वन-उपवन, मरु-उर्व्वर, पर्वत-समुद्रो से निर्म्मित यह पृथ्वी अपनी समस्त विभिन्नताओ के रहते हुए भी एक है । ये अभ्रभेदी पर्वत और दुस्तर समुद्र भी इसकी एकता को नष्ट नही कर सकते । जिस प्रकार यह बाहर से एक है उसी प्रकार भीतर से भी इसे एक आत्मा, एक मन, एक वाणी और एक

विराट सस्कृति की आवश्यकता है। यह समस्त विश्वचक्र एक ही अखण्ड-नीय सत्ता है, एक ही विराट शक्ति के नियमो से सञ्चालित है। मानव जाति अपने ही भेदो के भुलावे मे खो गई है। उसे इस अनेकता के भ्रम को आत्मा की एकता के पाश मे बाँध कर, समस्त विभिन्नता को एक विश्वजनीन स्वरूप देकर नियन्त्रित करना होगा। अनियन्त्रित प्रकृति विकृति मात्र है।"

छायावाद मे प्रकृति सस्कृति से नियन्त्रित (सुसगठित) थी। जैसे पञ्चभूतो के सयोजन से बाहर एक पूर्ण शरीर बन जाता है, वैसे ही भीतर एक पूर्ण चेतना (विश्वात्मा) का भी निर्म्माण हो जाता है। कवि ने प्रकृति को दाम्पत्य या माधुर्य्य भाव तक ही सीमित नही रखा है, बल्कि उसमे विश्वरूप का भी आविर्भाव कर दिया है। 'पल्लव' के 'अनग' की तरह कवि के लिए भी यही कहा जा सकता है—

"विपुल कल्पना से, भावो से,
खोल हृदय के सौ सौ द्वार,
जल, थल, अनिल, अनल, नभ से कर
जीवन को फिर एकाकार,

विश्वमञ्च पर हास-अश्रु का
अभिनय दिखला बारम्बार,
मोह-यवनिका हटा, कर दिया
विश्वरूप तुमने साकार।"

काशी,
८-७-५१

पल्लव

दिवस का इनमे रजत-प्रसार
उषा का स्वर्ण-सुहाग,
निशा का तुहिन-अश्रु-शृगार
साँझ का नि स्वन-राग,
नवोढा की लज्जा सुकुमार,
तरुणतम सुन्दरता की आग!

('पल्लव')

'पल्लव' पन्त की तरुण काव्यकृति है। 'वीणा' मे जिस बालिका का अविकच शैशव था, 'पल्लव' मे उसी का नव-प्रस्फुटित यौवन है। कवि के शब्दो मे, "वीणा की रहस्य-प्रिय बालिका अधिक मासल, सुरुचि, सुरगपूर्ण बन कर प्राय मग्धा यवती का हृदय पाकर जीवन के प्रति अधिक सवेदनशील बन गई है। 'सोने का गान', 'निर्झर गान' 'मधुकरी', 'निर्झरी', 'विश्ववेणु', 'वीचि-विलास' आदि रचनाओ मे वह प्रकृति के रग जगत मे अभिनय करती-सी दिखाई देती है। अब उसे तुहिन-वन मे छिपी स्वर्ण-ज्वाल का आभास मिलने लगा है, उषा की मुसकान कनक-मन्दिर लगने लगी है। वह अब इस रहस्य को नही छिपाना चाहती कि उसके हृदय मे कोमल बाण लग गया है। निर्झरी का अञ्चल अब आँसुओ से गीला जान पडता है, उसकी कल-कल ध्वनि उसे मूक व्यथा का मखर भुलाव प्रतीत होती है। वह मधुकरी के साथ फलो के कटोरो से मधपान करने को व्याकुल है।

सरोवर की चञ्चल लहरे उससे आँखमिचौनी खेल कर उसके आकुल हृदय को दिव्य प्रेरणा से आश्वासन देने लगी है।"

अनुभूति और अभिव्यक्ति

'वीणा' की बालिका ने प्रकृति का अतीन्द्रिय हृदय पाया था, 'पल्लव' की प्रणयिनी ने प्रकृति का सगुण शृंगार पा लिया है। अपने भीतर सम्पुटित रहने वाली कलिका 'पल्लव' में पल्लविता हो गयी है, उसका हृदय प्रकृति के दृश्य-जगत मे खुल गया है। उसमे उसे आनन्द मिलने लगा है। लोक-लाज से बँधी रहने पर भी वह अपने हृदयोल्लास को छिपा नही पाती, प्रकृति के दृश्य-जगत मे जहाँ-जहाँ उसे आकर्षण मिलता है वहाँ वहाँ उसका मन रम जाता है—

"कहेगे क्या मुझसे सब लोग
कभी आता है इसका ध्यान
रोकने पर भी तो सखि! हाय
नही रुकती है यह मुसकान!

तारको से पलको पर कूद
नीद हर लेते नव-नव भाव
कभी बन हिमजल की लघु बूँद
बढाते मुझसे चिर अपनाव

गुदगुदाते ये तन-मन प्राण,
नही रुकती तब यह मुसकान!

कभी उडते पत्तो के साथ
मुझे मिलते मेरे सुकुमार,

बढा कर लहरो से निज हाथ
बुलाते, फिर, मुझको उस पार"

('पल्लव' 'मुसकान')

भीतर का अदृश्य शिव उसे बाहर 'सुन्दर' दिखाई देने लगा है। 'वीणा' म जिस बालिका ने विस्मित होकर कहा था—

छवि की चपल अँगुलियो से छू
मेरे हृत्-तन्त्री के तार
कौन आज यह मादक, अस्फुट
राग कर रहा है गुञ्जार !

'पल्लव' मे वही बालिका अपने अज्ञात मोहन को पहिचान गयी है, सौन्दर्य्य-मुग्ध होकर कहती है—

अनुपम ! इस सुन्दर छवि से
मे आज सजा लूँ निज मन,
अपलक अपार चितवन पर
अर्पण कर दूँ निज यौवन !

तारुण्य की भाँति ही उसके भावो मे भी व्यञ्जकता आ गयी है। ऋतुओ के स्पर्श से अब वह हर्षित-विमर्षित होने लगी है, अपने आन्तरिक आन्दोलनो को 'आँख के अश्रु', 'हृदय के हास' और 'वेदना के प्रदीप की ज्वाल' मे अभिव्यक्त करने लगी है। 'पल्लव' की प्रेमिका मे प्रकृति का मानवीकरण है। प्रकृति अब भी अपने नैसर्गिक रूप मे है, किन्तु वह निराभरणा पार्वती नही, पुष्पाभरणा राधा और शकुन्तला है। उसके जीवन मे कला की कमनीयता है।

'वीणा' की बालिका मे प्रकृति का दैवी अन्त करण था। 'मल-मल

की फेनोज्ज्वल साडी' उसकी शुभ्र आत्मा का परिधान थी। उसका हृदय उस सरिता की तरह सहज था जिसके लिए कवि ने कहा था—

'नही एक भी ग्रन्थि पडी है
उसके सरल हृदय मे।'

'वीणा' की बालिका से कवि को विशेष ममता है। वह कहता है, "उस पवित्रता का स्पर्श पाने के लिए हृदय जैसे छटपटा कर प्रार्थना करने लगता है—

विहग-बालिका का-सा मृदु स्वर
अर्धखिले वे कोमल अग
क्रीडा, कौतूहलता मन की
वह मेरी आनन्द-उमग।

अहो दयामय, फिर लौटा दो
मेरी पद प्रिय चञ्चलता
तरल तरगो-सी वह लीला
निर्विकार भावना-लता।"

'वीणा' की भाषा मे सारल्य और भावो मे भोलापन था, किन्तु शैली मे सयानापन। शैली की गहन गूढता के कारण भाव अस्पष्ट और अजाने-से जान पडते हैं, सगीत के सूक्ष्म स्पर्श की तरह वे हृदय मे अनिर्वचनीय प्रभाव छोड जाते है। कवि ने ठीक कहा है—'चिडियॉ, भौरे, झिल्लियॉ, झरने, लहरे आदि जैसे बाल-कल्पना के छाया-वन मे मिल कर वाद्य तरग बजाते रहे है।"

'वीणा' की रहस्यात्मक शैली से विस्मय-विमूढ होकर 'पल्लव' के 'शिशु' की तरह कवि से भी मन पूछ बैठता है—

कौन-सी अमर गिरा यह प्राण !
कौन-से राग, छन्द, आख्यान ?
स्वप्न-लोको मे किन चुपचाप
विचरते तुम इच्छा-गतिवान !

'वीणा' के 'विज्ञापन' मे कवि ने परिहास-पूर्वक लिखा है—"कई कारणो से मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत सग्रह हिन्दी-प्रेमियो को 'पल्लव' से अधिक रुचिकर प्रतीत होगा, क्योकि यह उतना अच्छा नही।"

कवि का व्यग्य यह है कि जो लोग छन्दोवद्ध गद्य (पद्य) के अभ्यस्त है, काव्य-कला के नही, उन्हे 'वीणा' सुगम जान पडेगी। नि सन्देह 'वीणा' की भाषा और भाव मे परिपक्वता नही है, पद्य की-सी अनगढ सरलता है, किन्तु उसकी स्वप्न-निगूढ साकेतिक शैली न केवल 'पल्लव' की तुलना मे बल्कि छायावाद की सभी कृतियो मे अद्वितीय है। सच तो यह है कि अपनी ध्वन्यात्मकता और अस्फुटता के कारण 'वीणा' 'पल्लव' से अधिक मार्मिक है।

'पल्लव' की कई कविताएँ 'वीणा' की याद दिलाती है जैसे 'मोह', 'विनय', 'वसन्त-श्री', 'आकाक्षा', 'विश्व-व्याप्ति'। ये कविताएँ 'वीणा' काल मे लिखी गयी है, किन्तु भाषा, भाव और शैली मे अपेक्षाकृत प्राञ्जलता आ जाने के कारण 'पल्लव' की सीमा मे चली गयी है।

व्रजभाषा और द्विवेदी-युग के साहित्यानुरागियो को 'पल्लव' की रचनाएँ अधिक रुचेगी, क्योकि शैली मे छायावाद की नवीनता होते हुए भी वह 'वीणा'-जैसी अवगुण्ठित नही है। 'पल्लव' की भाषा, भाव और छन्द कुछ-कुछ पहिचाने-से जान पडेगे, उनमे यत्र-तत्र मध्ययुग और द्विवेदी-युग का आभास मिलेगा। इन विगत युगो के भीतर से ही पन्त का काव्योदय हुआ है, अतएव 'पल्लव' मे स्वभावत अतीत का साहित्यिक सस्कार शेष है। 'बालापन', 'स्वप्न', 'छाया', उच्छ्वास', आँसू' और 'बादल' मे छन्द

और वाक्य-गठन प्राय द्विवेदी-युग के पद्य-जैसा है, किन्तु इनमे पन्त के नवीन काव्य-परिष्कार का भी परिचय मिलता है, जो कि उत्तरोत्तर अन्य रचनाओ मे मौलिक आकार-प्रकार पाता गया है। पन्त मे अनुकरण नही, अन्त स्फुरण है। उन्होने द्विवेदी-युग की भाषा मे रस-सञ्चार किया और छन्दो मे गीतकाव्य का गुञ्जार भर दिया। शब्द-सौन्दर्य्य और लय-माधुर्य्य पन्त की कविता की विशेषता है। द्विवेदी-युग मे गद्य, पद्य बना, पन्त की रचनाओ से पद्य, काव्य बना।

प्राच्य और पाश्चात्य प्रभाव

पन्त ने हिन्दी-कविता को नये भाव भी दिये है और कही-कही पुराने भावो को नयी अभिव्यक्ति भी दी है, मुख्यत 'ग्रन्थि' मे, अशत 'उच्छ्वास' और 'आँसू' मे। एकाध उदाहरण लीजिये। गोस्वामी जी ने कहा है —'गिरा अनयन, नयन बिनु बानी'। पन्त जी ने 'उच्छ्वास' मे इस भाव का बडी सुगमता और स्वाभाविकता से विपर्य्यय कर दिया है—

"गिरा हो जाती है सनयन,
नयन करते नीरव भाषण,
श्रवण तक आ जाता है मन,
स्वय मन करता बात श्रवण।"

गोस्वामी जी की उक्ति की तरह पन्त की यह उक्ति भी अनूठी है। इससे छायावाद के 'नीरव भाषण' का अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है।

ऐन्द्रयिक चित्रण (रूप-चित्रण) मे पन्त जी मध्ययुग से प्रभावित है, यथा, 'कान से मिले अजान नयन।' यह व्रजभाषा की इस पक्ति का स्मरण दिला देता है—'कानन लौ अँखियाँ ये तुम्हारी, मूँदे तऊ तुम देखति हो।' इसमे रस-प्रवाह है, 'लौं' से प्रवाह का विस्तार सूचित होता है। पन्त की पक्ति मे विस्तार नही, चित्र की सक्षिप्तता है, रस की जमावट है। दोनो

चित्रो मे दो भिन्न व्यञ्जना है—एक मे नायिका चतुर है, आँखमिचौनी मे उसे कोई छल नही सकता, दूसरे मे बालिका सरल है, 'अजान नयन' है, कान से मिले उसके आयत लोचनो मे सौन्दर्य्य का भोलापन है। 'सरलपन' ही उसका मन है।

एक रसज्ञ कलाकार और रग-कुशल चित्रकार की भाँति पन्त ने छायावाद की नयी कविता मे व्रजभाषा के पुराने उपादानो को भी शब्दश सजा दिया है, यथा—

धूम-धुँआरे, काजर-कारे,
हम ही है बिकरारे बादर,
मदन-राज के बीर बहादर,
पावस के उडते फणिधर,
चमक-झमकमय मन्त्र-वशीकर,
छहर-घहरमय विष-सीकर,
स्वर्ग-सेतु-से इन्द्रधनुष-धर
कामरूप घनश्याम अमर ।

('पल्लव', 'बादल')

इन पक्तियो मे व्रजभाषा का सम्पूर्ण पावस-चित्र उतर आया है।

पन्त जी मे कला की गुणग्राहकता है, रूढियो की सकीर्णता नही। उनके उन्मुक्त मन ने सभी युगो और सभी दिशाओ के साहित्य से रूप, रग और रस ग्रहण किया है। उनका सौन्दर्य्य-बोध सजग है, इसीलिए उन्होने प्राची का सास्कृतिक मुख ('अधोमुख अरुण सरोज समान') भी देखा है और पश्चिम के सुनहले केशो और नीले नेत्रो को भी। प्रभात और सन्ध्या की तरह दोनो की अपनी-अपनी शोभा है, सार्थकता है।

भौगोलिक स्थिति के कारण पन्त जी की कविताओ मे भारतीयता अधिक है। यद्यपि 'वीणा' और 'पल्लव' की काव्य-कला ने भारत मे

ब्रिटिश प्रभाव की तरह आग्ल परिधान धारण किया है तथापि ज्यो ज्यो पन्त की प्रतिभा मे प्रौढता आती गई है त्यो त्यो उसका कला-विन्यास आर्य्य-व्यक्तितत्त्व पाता गया है। इस दृष्टि से 'वीणा' की अपेक्षा 'पल्लव' मे पन्त का व्यक्तितत्त्व निखर आया है ।

'वीणा'-काल मे पन्त जी की प्रतिभा पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर और सरोजिनी नायडू का प्रभाव पडा था। इन कवियो की रचनाओ से उनके भीतर एक नवीन प्रकार के 'अस्पष्ट-सौन्दर्य-वोध तथा माधुर्य्य' का जन्म हुआ।

'वीणा'-काल का अस्पष्ट सौन्दर्य्य-वोध 'पल्लव' मे सुस्पष्ट हुआ। पन्त जी कहते है—"पल्लव-काल मे मै उन्नीसवी सदी के अग्रेजी कवियो, मुख्यत शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स, और टेनीसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ, क्योकि इन कवियो ने मुझे मशीन-युग का सौन्दर्य्य-वोध और मध्य-वर्गीय सस्कृति का जीवन-स्वप्न दिया है।"

कला की दृष्टि से 'पल्लव' मे शेली-टेनीसन की 'कल्पना, सौन्दर्य्य-वोध और स्वर-वैचित्र्य' का समावेश है। पन्त जी कृतज्ञतापूर्वक आग्ल कवियो का आभार स्वीकार करते है—"शेली, कीट्स, टेनीसन आदि कवियो से मैने बहुत कुछ सीखा। मेरे मन मे शब्द-चयन और ध्वनि-सौन्दर्य्य का वोध पैदा हुआ।"

'वीणा' की आत्मा भारतीय है, अभिव्यक्ति अग्रेजी। पाठको को यह विरोधाभास जान पडेगा कि 'वीणा' मे भारतीय कवियो का प्रभाव होते हुए भी उसकी अभिव्यक्ति मे आग्लशैली का प्रभाव अधिक है, इसके विपरीत अग्रेजी कवियो से प्रभावित होकर भी 'पल्लव' की आत्मा और अभिव्यक्ति दोनो मे मुख्यत भारतीयता है। इसका कारण ?—

रवीन्द्र और सरोजिनी ने अग्रेजी साहित्य मे भारतीय आत्मा को अभिव्यक्त करने के लिए आग्ल आच्छादन (पाश्चाय काव्य-कला)

अपनाया था। उस समय 'वीणा' के किशोर कवि की अनुभूति और अभि-व्यक्ति दोनो ही मूक थी। अपना निजी व्यक्तित्त्व रखते हुए भी जिस तरह शिशु परिणत-कण्ठो से वाणी की साधना करता है, अपने हृदयोद्गारो को तुतलाहट देता है, उसी तरह 'वीणा' के अवोध कवि ने रवीन्द्र और सरोजिनी का काव्यानुसरण किया। उसका अस्तित्त्व उन्ही मे विलीन नही हो गया, उनके सगीत मे उसका अस्फुट स्वर अलग बोल रहा है। उनके प्रौढ पद-चिह्नो पर उसके छोटे-छोटे शिशु पगो की अपनी छाप है।

रवीन्द्र की काव्य-कला पश्चिमीय थी, काव्य-सामग्री भारतीय थी। सरोजिनी नायडू की कला और सामग्री दोनो ही अभारतीय थी। अपनी प्रतिभा के तारुण्य मे योरप-प्रवास करते समय एक आग्ल साहित्य-मर्म्मज्ञ (सर एडमड गॉस) की प्रेरणा से उनमे भारतीयता (जन्मजात स्वाभाविकता) का अनुराग उत्पन्न हुआ। गान्धी-युग में उन्होने पुनर्जन्म पाया, काव्य-क्षेत्र से वे कर्म्म-क्षेत्र मे चली गयी। उधर आधुनिक वगीय चित्रकला (जो कि विदेशी तैल-चित्रो का अनुकरण कर रही थी) वह भी कलकत्ते के तत्कालीन अग्रेज कला-मर्म्मज्ञ (ई बी हैवल) की प्रेरणा से अजन्ता और एलोरा की आकृति-प्रकृति पा गयी। भारतीय चित्रकला मे ठाकुर-शैली का प्रादुर्भाव हुआ। राजनीति मे राष्ट्रीय वातावरण बन चुका था, कला मे भी भारतीय वातावरण प्रस्तुत हो गया। ऐसे ही सास्कृतिक युग मे 'पल्लव' के कवि पन्त का काव्य-विकास हुआ।

आत्मविकास

सन्, २१ मे पन्त जी ने महात्मा गान्धी के भाषण से प्रभावित होकर कालेज का पढना छोड दिया था। यो भी कोई रोमैन्टिक कवि कालेजो और युनिवर्सिटियो के यान्त्रिक अध्ययन मे अपनी स्वाभाविक प्रतिभा का अपचय नही कर सकता। जहाँ जितनी ही अधिक उपाधियाँ है वहा उतने ही अनुपात मे कलात्मकता और मर्म्मज्ञता का अभाव है। किसी भी

साहित्य मे इसका दृष्टान्त देखा जा सकता है । जैसा कि 'युगवाणी' मे कवि ने सकेत किया है, मनुष्य का विकास भी प्रकृति की तरह जीवन की स्वाभाविक उर्व्वरता (प्रतिभा) से ही हो सकता है —

"वृक्षो से ही बढो अयास
सीख राग, फल-त्याग ।"

रोमैन्टिक कवियो का विकास भी ऐसा ही अनायास होता है ।

अग्रेजी कवियो का प्रभाव होते हुए भी 'पल्लव' मे पन्त की प्रतिभा का प्रस्फुटन है, अन्त स्फुरण है। बाह्य प्रभावो को ग्रहण कर भीतर के रस-द्रवण से उनकी सीप-सी आत्मा मुक्ता बन गई है । उनका जीवन और काव्य मोती-सा ही सजल सुघर है ।

अनुभूति की तरह प्रत्येक कवि की अभिव्यक्ति मे भी अपनापन रहता है। रुचि, स्वभाव और जीवन-दर्शन के अनुसार भाव, भाषा और शैली मे कवि का व्यक्तित्त्व व्यक्त होता है। इसी दृष्टि से पन्त की कविताओ मे भी उनका आत्मनिर्म्माण है।

'वीणा' के बाद 'पल्लव' के 'उच्छ्वास' (सन्' २१) मे पन्त की प्रतिभा के स्वावलम्बन का श्रीगणेश है। 'वीणा' मे कवि ने कहा था—'ऑखो ने जो देखा कर को उसे खीचना सिखलाओ।' कवि की यह कामना 'उच्छ्वास' मे सफल हो गयी है, उसने चित्र-कुशलता पा ली है।

'उच्छ्वास' मे 'वीणा' के सारल्य और 'पल्लव' के नव-तारुण्य की वय सन्धि है। ऐसा जान पडता है कि शैशव का अस्फुट कण्ठ अभी-अभी फूट पडा हो। उसके शब्दो, छन्दो, भावो और वातावरण मे स्वाभाविक भोलापन है, साथ ही जीवन और कला का नव-उद्दीपन भी ।

—वही कल्पना है दिन-रात
बचपन औ' यौवन की बात,

सुख की वा दुख की ? अज्ञात
उर अधरो पर है निर्म्मल
('निर्झरी')

बचपन और यौवन की तरह ही 'उच्छ्वास' मे पुरातन और नूतन कवित्त्व का समावेश है। ज्यो ज्यो कवि का तन-मन वयस्क होता गया है त्यो त्यो शैशव की तरह कविता के विगत युगो को छोड कर वह नवीन भावो और नवीन कला की ओर बढता चला गया है। अशत 'आँसू' मे, विशेषत सन् २१ के बाद की रचनाओ ('वीचि-विलास', 'मौन निमन्त्रण', 'विश्ववेणु', इत्यादि) मे पन्त की कविता नव्यतम हो गयी है। 'उच्छ्वास' मे कवि ने कहा था––

सुरीले ढीले अधरो बीच
अधूरा उसका लचका-गान
विकच बचपन को, मन को खीच,
उचित बन जाता था उपमान।

अधर अब भी सुरीले है, गान अब भी लचीला है, किन्तु न तो अधरो मे ढीलापन है, न गानो मे अधूरापन। 'पल्लव' का सगीत, यौवन का उपमान बन गया है।

कला की साधना

नवीनता की दृष्टि से सब से पहिले पन्त की भाषा हृदय को आकर्षित कर लेती है। ब्रजभाषा की तुलना मे द्विवेदी-युग की खडी-बोली रूखी जान पडती थी। छायावाद के अन्य कवि भी अपने गद्य-सस्कार के कारण उसे सरस नही बना सके। खडीबोली भी कितनी मधुर प्राञ्जल हो सकती है, यह पन्त के 'पल्लव' से स्पष्ट है।

पन्त ने ही खडीबोली को उसी के अविकल व्यक्तित्त्व मे व्रजभाषा की तरह मधुर कोमल बना दिया है। कीट्स की तरह बाइस-चौबीस वर्ष की अपनी बहुत छोटी उम्र मे ही 'पल्लव' के कवि ने खडीबोली को कितना काव्य-कलित कर दिया है !

अनुभूति के लिए जीवन की, और अभिव्यक्ति के लिए कला की साधना करनी पडती है। पन्त ने खडीबोली को अपनी साधना से सौन्दर्य्य प्रदान किया है, उसे कल-कोमल बनाने के लिए उन्हे तपना पडा है। हृदय के ताप मे तप कर, रस से द्रवित होकर जब भाषा भाव बन जाती है, तब कवि ही मानो उसमे लयमान हो जाता है, जैसे—

सुरभि-पीडित मधुपो के बाल
तडप, बन जाते है गुञ्जार

('मौन निमन्त्रण')

पन्त की भाषा का लालित्य आग्ल कवि स्विनबर्न का स्मरण दिलाता है। कविवर यीट्स के प्रसग मे रविबाबू ने प्रशसा-पूर्वक स्विनबर्न की भाषा को याद किया है। पन्त जी ने जिन अग्रेजी कवियो का उल्लेख किया है उनमें स्विनबर्न का नाम नही है। मन यह जानने के लिए उत्सुक हो उठा कि हिन्दी का यह मृदूर्म्मिल कवि अपने उस समानधर्म्मा कवि से कैसी आत्मीयता का अनुभव करता है ! जिज्ञासा करने पर पन्त जी ने कहा—'स्विनबर्न विद्यापति और जयदेव है, कालिदास नही।'—अभिप्राय यह कि स्विनबर्न मे भाषा का सगीत है, भाव-गाम्भीर्य नही।

पन्त की कविता मे भाषा का सगीत भी है और भावो का गूढ गम्भीर प्रसार भी है, जयदेव और विद्यापति की रसात्मकता भी है, कालिदास की कल्पकता भी। गीतकाव्य और महाकाव्य का मध्यवर्त्ती 'व्यक्तित्त्व' 'पल्लव' के सुदीर्घ मुक्तको मे है। उनमे सगीत की सरसता और काव्य की चित्रकारिता का समन्वय है।

भाषा और छन्द

पन्त की कविता मे भाषा एक साथ ही चित्र और सगीत दोनो को सजीव करती है, वह 'पल मे जलधर, फिर जलधार' बन जाती है। कविता मे केवल शब्दो का सगीत पन्त को अभीष्ट नही है, वे भाव को महत्त्व देते है, भाषा को भाव से बजाते है। भाव ही भाषा मे चित्र और सगीत (रूप-रग और रस) बन जाता है। भाषा भाव के सुर मे बँध कर 'मर्म्म-मधुर' हो जाती है। जहाँ केवल शब्दालकार की झनकार सुनाई पडती है वहाँ वह मधुर किन्तु 'मर्म्म-रहित' जान पडती है।

पन्त जी की भाषा का सौन्दर्य्य बाहर से अलकृत नही, भीतर से अभिव्यञ्जित है, रसानुरञ्जित है। उसका सगीत शब्द-प्रधान नही, राग-प्रधान है। उसमे भाषा और भाव का लय-सामञ्जस्य है।

'पल्लव' मे एक-एक स्वर, व्यञ्जन और अक्षर का ही नही, बल्कि सयुक्ताक्षर तक का प्राणवान प्रयोग है, जैसे—

रुधिर से फूट पडी रुचिमान
पल्लवो की यह सजल प्रभात
शिराओ मे उर की अज्ञात
नव्य जग जीवन कर गतिवान!

'नव्य' के स्थान पर नवल कर देने से छन्द मे तो अन्तर नही पडता, किन्तु चित्र की सजीवता चली जाती। यहाँ कवि केवल प्रभात की नवीनता ही नही, गति की ओजस्विता भी व्यक्त करना चाहता है। 'नव्य' के 'व्य' से 'जीवन' मे गति-व्यग्रता आ गयी है।

भाषा की तरह पन्त जी ने छन्दो को भी 'चित्र-राग' की दृष्टि से देखा है। वे कहते है—"छन्द का राग भाषा के राग पर निर्भर रहता है, दोनो मे स्वरैक्य रहना चाहिये। . . .जहाँ दोनो मे मैत्री नही रहती वहाँ छन्द अपना 'स्वर' खो बैठता है।"

छन्द के राग (लय-प्रवाह) मे भाषा के राग (स्वर) का समावेश न होने के कारण ही पन्त जी को कवित्त तथा बँगला के छन्द हिन्दी के लिए उपयुक्त नही जान पडे।

यद्यपि छन्द का राग उसके लय-प्रवाह मे है तथापि उच्चारण-भेद से भिन्न-भिन्न भाषाओ मे छन्द का प्रवाह भी तदनुरूप हो जाता है। पन्त जी हिन्दी की प्रकृति के अनुसार उन्ही छन्दो को स्वाभाविक मानते है जिनमे उसके स्वरो का सरक्षण हो सके। उनका कहना है कि, "जिस छन्द मे स्वर-सगीत की रक्षा की जा सकती, उसके सकोच-प्रसार को यथावकाश दिया जा सकता है, उसमे राग का स्वाभाविक स्फुरण, भाव तथा वाणी का सामञ्जस्य पूर्णरूप से मिलता है। "—इसी दृष्टि से उन्होने हिन्दी के मात्रिक छन्दो को महत्त्व दिया है।

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, 'पल्लव' मे कुछ छन्द द्विवेदी-युग के है, किंतु ज्यो ज्यो भाषा और भाव के चित्र-वोध की तरह पन्त का राग-वोध भी सजग होता गया है त्यो त्यो उनके छन्दो मे भी नूतनता आती गयी है। छन्दो का राग-वोध पन्त को 'वीणा'-काल मे ही हो गया था।

'पल्लव' की कई कविताएँ, पन्त जी के कथनानुसार, मुक्त छन्द मे है, जैसे, 'उच्छ्वास', 'आँसू', 'परिवर्त्तन'। 'पल्लव' के 'प्रवेश' मे उन्होने उदाहरण देकर इन कविताओ की छन्द-सम्बन्धी प्रक्रिया दिखलाई है।

भावनाओ के उत्थान-पतन अथवा उद्गारो के आरोह-अवरोह को पर्य्याप्त क्षेत्र देने के लिए मुक्त-छन्द की आवश्यकता पडती है। इस दृष्टि से पन्त जी ने 'उच्छ्वास', 'आँसू', और 'परिवर्त्तन' मे कही तो एक ही छन्द के चरणो को घटा-बढा दिया है, कही छन्द की एकस्वरता तोडने और राग को विविधता देने के लिए अनेक छन्दो का उपयोग किया है।

'विश्ववेणु', 'वीचिविलास' और 'मौन निमन्त्रण' मे दो छन्दो के चरणो को मिला कर एक नये छन्द की सृष्टि कर दी है। कुछ छोटी

कविताओ ('निर्झर गान', 'नारी-रूप', 'जीवन-यान', 'विश्व-छवि') मे भी विभिन्न छन्दो के पद-सामञ्जस्य से एक स्वतन्त्र छन्द बन गया है। इस तरह पन्त जी के मुक्त-छन्द, छन्द-रहित नही हैं। उनमे एक नवीन नियमवद्धता है।

छन्दो की आवश्यकता गद्य-शुष्क जीवन को सगीत देने के लिए है। पन्त जी के शब्दो मे, "हमारे साधारण वार्त्तालाप मे भाषा-सगीत को जो यथेष्ट क्षेत्र नही प्राप्त होता, उसी की पूर्त्ति के लिए काव्य मे छन्दो का प्रादुर्भाव हुआ है।" इस रूप मे छन्द, काव्य का सगीत-सहचर है, वह मुक्त नही है।

मुक्त छन्द की विशेषता यह है कि उसमे यथास्थल भाषा का सगीत भी रहता है और साधारण वार्त्तालाप की स्वाभाविकता भी रहती है। यही पर काव्य मे नाट्य का सन्निवेश होता है।

यद्यपि पन्त जी ने छन्दो को काव्य की दृष्टि से ही मुक्त करने का प्रयत्न किया है तथापि 'उच्छ्वास' मे दृश्यो के पट-परिवर्त्तन और छन्दो के हेर-फेर से नाटकीय सघटन आ गया है। कही-कही दृश्य के अनरूप ही छन्द भी गतिशील हो उठा है, यथा—

पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश
पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश

('उच्छ्वास')

'पल-पल परिबर्तित' मे प्रकृति के परिवर्त्तन की द्रुतगति है। दृश्य की त्वरित गति मे छन्द की गिलहरी-सी क्षिप्रगति भी है।

'पल्लव' मे 'जीवन-यान' एक बहुत छोटी-सी कविता है, इस सक्षिप्त मुक्तक मे भी मुक्त छन्द की स्वाभाविकता देखी जा सकती है—

अहे विश्व! ऐ विश्व-व्यथित-मन!
किधर बह रहा है यह जीवन?

यह लघु पोत, पात, तृण, रजकण
अस्थिर—भीरु—वितान,
किधर ?—किस ओर—अछोर,—अजान,
डोलता है यह दुर्बल यान ?

ये टेढी-मेढी, छोटी-बडी पक्तियाँ केवल वैचित्र्य-प्रदर्शन के लिए नही हैं, इनमे हृत्स्पन्दन है। मनोवेग की स्वाभाविकता के अनुसार ही इन पक्तियो मे प्रवाह और विक्षेप है। छायावाद की कविताओ मे मनोवेगो का सकोच और प्रसार दिखलाने के लिए ही पहाडी पथो की तरह पक्तियो को आगे-पीछे, सीधे-तिरछे रखने का क्रम प्रचलित हुआ था।

छन्द के राग मे मनुष्य का मनोराग भी मिला रहता है। उसके प्रवाह मे मन की जो गति हृत्कम्पन की तरह अन्तर्द्धान रहती है उसी को प्रत्यक्ष करने के लिए उद्गारो को नाटचभगिमा देनी पडती है। छन्द मे सलापोचित स्वाभाविकता आ जाने से रागात्मिका वृत्ति का उद्रेक हो जाता है। मनुष्य के मनोरगो को व्यक्त करने के लिए ही मुक्त छन्द है। वह काव्य को मनोविज्ञान का सहयोग देता है। भाषा, भाव और छन्द मे जीवन की अन्तर्व्यञ्जना ही छायावाद की विशेषता है। इस दृष्टि से मुक्त छन्द छायावाद का अन्तरग छन्द है।

पन्त जी की कविता मे केवल कलरव-किलोल और किलकार ही नही है। रस, भाव और वातावरण के अनुसार उसमे उत्कटता और कोमलता, दोनो है। 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' का दृष्टान्त 'बादल' की इन पक्तियो मे देखा जा सकता है—

कभी अचानक भूतो का-सा
प्रकटा विकट महा आकार,
कडक-कडक जब हँसते हम सब
थर्रा उठता है ससार,

फिर परियो के बच्चो-से हम
सुभग सीप के पख पसार
समुद पैरते शुचि ज्योत्स्ना मे
पकड इन्दु के कर सुकुमार।

एक ओर कितनी रुद्रता, दूसरी ओर कितनी मृदुता!—मानो शिव ही शिशु भी हो गया है।

कल्पना और भावना

'पल्लव' मे कवि की राग-वृत्ति बहुत जाग्रत है। उसकी राग-वृत्ति का ही विकास कल्पना मे हुआ है।

पन्त की कल्पना-शक्ति कितनी उर्व्वर है, इसका परिचय 'स्याही का बूँद' शीर्षक छोटी-सी कविता मे भी मिल जाता है—

गीत लिखती थी मै उनके,—

अचानक, यह स्याही का बूँद
लेखनी से गिर कर सुकुमार
गोल-तारा-सा नभ से कूद
सोधने को क्या स्वर का तार
सजनि! आया है मेरे पास।

योग का-सा यह नीरव-तार,
ब्रह्म-माया का-सा ससार,
सिन्धु-सा घट मे,—यह उपहार
कल्पना ने क्या दिया अपार,
कली मे छिपा वसन्त-विकास?

यह एक 'बूँद' विन्दु मे सिन्धु हो गया है।

पन्त की कल्पना कदली-पत्र की तरह चित्र-पर-चित्र खोलती जाती है, जैसे 'छाया', 'बादल' और 'नक्षत्र' मे। सब चित्रो को मिला कर जीवन की एक सर्वांगीण अभिव्यक्ति भी दे जाती है, जैसे 'स्वप्न', 'मौन निमन्त्रण', 'वीचि-विलास', 'विश्ववेणु', 'शिशु' और 'अनग' मे। इन कविताओ मे कल्पना की परिणति भावना मे हो गयी है। जैसा कि कवि ने कहा है—

मेरे मन की विविध तरग
रगिणि! सब तेरे ही सग
एक रूप मे मिले अनग।

('वीचि-विलास')

'विविध तरग' मे एक 'अनग' की तरह जब कल्पना की चित्र-विविधता मे भी रस की एकात्मता आ जाती है तब भावना का स्वरूप प्रकट होता है। यथा—

भूल जगत की उर-कम्पन मे,
पुलकावलि मे हँस अविराम,
मृदुल कल्पनाओ से पोषित,
भावो से भूषित अभिराम,

तुमने भौंरो की गुञ्जित-ज्या
कुसुमो का लीलायुध थाम,
अखिल भुवन के रोम-रोम मे
केशर-शर भर दिये सकाम।

(अनग)

अनग का तो कोई रूप नही है, वह तो एक रसानुभूति मात्र है। किन्तु उद्दीपन और सवेदन से मनोज की जिस रसमूर्त्ति की मन मे भावना होती है, कल्पना ने उसी को प्रत्यक्ष कर दिया है।

कल्पना भावना की सहायता करती है, किन्तु भावना कल्पना पर ही निर्भर नही है। सूरदास की 'मैया, कबहिं बढैगी चोटी' मे केवल भावना का भोलापन है, चरन गहे अँगुठा मुख मेलत' मे भावना के साथ कल्पना का वैचित्र्य भी है।

'पल्लव' की सभी छोटी-छोटी कविताएँ भावना के प्रगीत है ,जैसे, मोह, विनय, वसन्त श्री, आकाक्षा, याचना, विश्वव्याप्ति, सोने का गान, विश्वछवि, नारी-रूप, निर्झर-गान, मुसकान, मधुकरी, स्मृति, छाया-काल, इत्यादि। इन प्रगीत मुक्तको मे कल्पना भी है, किन्तु उसने भावना के लिए केवल चित्रपट प्रस्तुत किया है, उसे आच्छादित नही कर लिया है।

कल्पना-प्रधान बडी कविताओ मे भी सगीत की टेक की तरह भावना का हृदय बोलता है—

गाओ, गाओ विहग-बालिके!
तरुवर से मृदु मगल गान,
मै छाया मे बैठ, तुम्हारे—
कोमल-स्वर मे कर लूँ स्नान,

—हाँ सखि! आओ, बाँह खोल, हम
मिल कर गले, जुडा ले प्राण,
फिर तुम तम मे, मै प्रियतम मे
हो जावे द्रुत अन्तर्धान!

('छाया')

से सुखमय-तब! आशामय अब!
हे मानस-लोचन रुचिमान!
जागो हे, हाँ, धीरे धीरे
खोलो अलसित-पलक सुजान!

('नक्षत्र')

ये पंक्तियाँ कल्पना के बिखरे चित्रों में अन्तर के तार मिलाती हैं, 'हाँ' और 'हे' में हृदय बोल रहा है।

प्राकृतिक चित्रण

'पल्लव' में प्रकृति-चित्रण के अनेक रूप हैं। कहीं तो प्रकृति अपने प्रकृत रूप में है, जैसे—

बादलों के छायामय-मेल
घूमते हैं आँखों में, फैल!
अवनि औ' अम्बर के वे खेल
शैल में जलद, जलद में शैल!
विहंगम-सा बैठा गिरि पर
सुहाता था विशाल अम्बर।
('आँसू')

कहीं कवि ने प्रकृति के प्रकृत चित्रों में 'अपनी भावनाओं का सौन्दर्य्य मिला कर उन्हें 'ऐन्द्रिक चित्रण' बनाया है। इस रूप में प्रकृति के उपकरण उद्दीपन का भी काम करते हैं और संवेदन को भी जगाते हैं। जैसे—

देखता हूँ जब उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिये! भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को;
नवोढ़ा बाल-लहर
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिग रुक कर
सरकती है सत्वर;

अकेली आकुलता-सी प्राण!
कही तब करती मृदु आघात,
सिहर उठता कृश गात,
ठहर जाते है पग अज्ञात!
('आँसू')

छन्द की दृष्टि से पन्त जी लिखते है—"इन चरणो मे शोकाकुलता के कारण स्वर-भग हो जाने का भाव आया है, लय की गति रुकती जाती है, तुक भी पास-पास नही आये है। इसी प्रकार 'सिहर उठता कृश गात' इस चरण को कुण्ठित कर देने से अनुवर्त्ती चरण मे पगो के अज्ञात ठहर जाने का भाव अपने आप आ जाता है।"

कही-कही भावनाओ को ही कवि ने 'प्राकृतिक सौन्दर्य्य का लिबास' पहना दिया है। जैसे—

हरियाली से ढँक मृदु गात,
कानो मे भर सौ-सौ बात
हमे भुलाते है अविराम
विश्व-पुलक-से तरु के पात,
कुसुमित पलनो में अभिराम!
('विश्ववेणु')

प्रकृति के परिधान मे भावना ने मानवीय व्यक्तित्त्व धारण किया है, मुख्यत 'वीचि-विलास', 'मौन निमन्त्रण', 'विश्व वेणु', 'अनग' और 'स्वप्न' मे, अशत 'छाया' और 'बादल' मे।

कवि ने प्रकृति को विशेषत नारी-रूप मे ही व्यक्त किया है, इस रूप मे स्वय उसकी आत्मा ही प्रकृति हो गयी है। निर्झरी, मधुकरी, विहग-बालिका उसकी स्नेहमयी सखियाँ है।

कवि कहता है, "पल्लव-काल मे मुझसे प्रकृति की गोद छिन जाती है। 'पल्लव' की रूप-रेखाओ मे प्राकृतिक सौन्दर्य्य तथा उसकी रगीनी तो वर्त्तमान रहती है, किन्तु प्रभावो के रूप मे,—उससे वह सान्निध्य का सन्देश लुप्त हो जाता है। प्रकृति के उपकरण राग-वृत्ति के स्वर बन गये है, वे अकलुष ऐन्द्रयिक मुग्धता के वाहन अथवा वाहक नही रह गये है।"—यहाँ पर कवि का सकेत 'वीणा'-काल की बाल-भावना की ओर है—"वीणा की रचनाओ मे जो स्वाभाविकता मिलती है वह 'पल्लव' मे कला-सस्कार तथा अभिव्यक्ति के मार्जन मे बदल गयी है।"

यद्यपि 'पल्लव' मे 'वीणा' की बालिका का वयोविकास हो गया है, तथापि अब भी उसमे प्रकृति की ही अन्तरात्मा है। अपने 'घने लहरे रेशम के बाल' मे प्रकृति के विविध उपहारो को धारण कर वह उसी की मधुर मूर्त्ति बन गयी है। अनेक रूपो और अनेक अभिव्यक्तियो मे वह अपने आनन्द को व्यक्त कर रही है—

चञ्चल कर सरसी के प्राण,
सौ-सौ स्वप्नो-सी छविमान
लहरो मे खिल सानुप्रास,
गा वारिधि-छन्दो मे गान,
करती हम ज्योत्स्ना का लास!
('विश्ववेणु')

कवि की कविता के उपादान कितने कोमल और उसकी आत्मा कितनी स्नेहार्द्र है—

चुन कलियो की कोमल साँस,
किसलय-अधरो का हिम-हास,

चिर अतीत-स्मृति-सी अनजान
ला सुमनो की मृदुल सुबास,
पिघला देती तन, मन, प्राण।
('विश्ववेणु')

'पल्लव' मे सुन्दरम् का अभिषेक है। सारी सृष्टि एक स्वर्गिक महोत्सव मना रही है। कवि ने सुख, श्री , सुषमा का यह कैसा मनोहर स्वप्न-जगत रच दिया है—

"मीलित नयनो का अपना ही
यह कैसा छायामय-लोक
अपने ही सुख-दुख, इच्छाएँ,
अपनी ही छवि का आलोक।"

परिवर्त्तन

कला के इस कमनीय जगत पर देश-काल का दुर्दमनीय अभिशाप भी छाया हुआ है। देश का दुर्भाग्य सामाजिक कुरूपताओ मे प्रकट हुआ, जिसका धुँधला आभास 'ग्रन्थि', 'उच्छ्वास', और 'आँसू' मे मिलता है। काल की कुटिलता जीवन की क्षणभगुरता में प्रकट हुई, उसका प्रभाव 'परिवर्त्तन' पर पडा। 'पल-पल परिवर्त्तित प्रकृति-वेश' की तरह 'परिवर्त्तन' मे जीवन भी क्षण-क्षण कितना परिवर्त्तनशील हो गया है!

स्वप्नदर्शी होते हुए भी 'पल्लव'-काल मे कवि वर्त्तमान समाज की कुरूपताओ से कट कर भविष्य की ओर प्रधावित नही हुआ था। वह जागरण और सुधार का युग था। क्रान्ति का आदर्श स्पष्ट नही हो सका था। ऐसे समय मे प्रकृति के रम्यलोक से ही कवि को नव-निर्म्माण का दृष्टान्त मिला। 'पल्लव' मे प्रकृति 'त्रिभुवन के नयन-चित्र-सी' अवतरित हुई।

कवि कहता है—"तब प्रकृति की महत्ता पर मुझे पूर्ण विश्वास था, और उसके व्यापारो मे मुझे पूर्णता का आभास मिलता था। वह मेरी सौन्दर्य्य-लिप्सा की पूर्त्ति करती थी, जिसके सिवा, उस समय मुझे कोई वस्तु प्रिय नही थी। अब मै सोचता हूँ कि प्राकृतिक दर्शन जो एक निष्क्रियता की हद तक सहिष्णुता प्रदान करता हे, और एक प्रकार से प्रकृति को सर्वशक्तिमयी मान कर उसके प्रति आत्मसमर्पण सिखलाता है, वह सामाजिक जीवन के लिए स्वास्थ्यकर नही है।"—इसीलिए 'पल्लव' की प्राकृतिक भूमि मे कवि 'युगवाणी' की ऐतिहासिक भूमि मे चला गया।

इस परिवर्त्तनशील जगत मे जीवन की अशान्ति का कोई सामाजिक सामाधान न मिलने के कारण 'परिवर्त्तन' मे कवि ने अध्यात्म की शरण ली थी—

"वृथा रे ये अरण्य-चीत्कार
शान्ति सुख है उस पार।"

'परिवर्त्तन' का आध्यात्मिक दर्शन व्यक्तिगत आत्मचिन्तन के लिए उपादेय है, क्योकि किसी भी समाज-व्यवस्था मे दुख का सर्वथा तिरोधान नही हो जायगा—

"बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार,
दीन दुर्बल है रे ससार
इसी से क्षमा, दया औ' प्यार।"

मनुष्य अपनी आध्यात्मिक चेतना से ही सुख-दुख मे स्थितप्रज्ञ रह सकेगा।

'परिवर्त्तन' मे कवि की विशेषता यह है कि उसने दर्शन शास्त्र की शुष्कता मे भी काव्य का रस-सञ्चार कर दिया है, ज्ञान को भाव बना

दिया है, काल को कला का स्पर्श दे दिया है। 'पल्लव' के अन्य चित्रपटो पर सधी हुई तूलिका ने ही 'परिवर्त्तन' मे एक प्रशस्त चित्रपट पा लिया है। इसमे सभी छन्दो और सभी रसो का समावेश है। कथा का आधार लेकर लिखे गये, हिन्दी मे प्रवन्ध-काव्य अनेक है, किन्तु बिना किसी आधार के, केवल भाव और कला का इतना विशद काव्य खडीबोली मे कोई नही।

जान पडता है कि, 'पल्लव'-काल मे पन्त जी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। कई लम्बी कविताएँ बहुत थोडे समय मे ही लिखी गयी है—'नक्षत्र' एक दिन मे, 'छाया' डेढ दिन मे, 'स्वप्न' दो दिन मे।

मानसिक सघर्षो मे भी पन्त का कवि-हृदय शिथिल नही हो गया था। उनका तन-मन स्वस्थ था। मस्तिष्क शरदाकाश की भाँति परिष्कृत था। उनके शब्दो, छन्दो और भावो मे उनका स्वास्थ्य ही सौन्दर्य्य और सगीत बन गया है।

काशी
४।१०।५०

गुञ्जन

अनुकूल परिस्थितियो मे पन्त जी काव्य के भाव-जगत मे विचरते आये थे, प्रतिकूल परिस्थितियो मे उनका सुकोमल सुकुमार मन अभाव-जगत की वास्तविकता का आघात सहसा सह नही सका। 'पल्लव' के बाद, सन्' २९ मे पन्त जी मानसिक और पारिवारिक अशान्ति के कारण रुग्ण हो गये।

साहित्य के सौभाग्य से दो वर्ष बाद उन्होने पुनर्जीवन पाया। एकान्त के विश्राम और मनन-चिन्तन से उनमे एक नवीन आशा, उत्साह और उल्लास का सञ्चार हो गया था। 'गुञ्जन' मे अपनी नवप्राण प्रेरणाओ का सगीत लेकर सन्' ३२ मे वे पुन काव्य-क्षेत्र मे प्रकट हुए।

सवेदनशीलता

'पल्लव' मे कवि ने वन-विहार किया था, 'गुञ्जन' मे सामाजिक साक्षात्कार किया। कवि ने कहा—

देखूँ सब के उर की डाली
    किसने रे क्या क्या चुने फूल
    जग के छवि-उपवन से अकूल?
    इसमे कलि, किसलय, कुसुम, शूल!

किस छवि, किस मधु के मधुर भाव?
किस रँग, रस, रुचि से किसे चाव?
कवि से रे किसका क्या दुराव!

किसने ली पिक की विरह-तान ?
किसने मधुकर का मिलन-गान ?
या फुल्ल-कुसुम, या मुकुल-म्लान ?

देखूँ सबके उर की डाली—
सब मे कुछ सुख के तरुण फूल,
सब मे कुछ दुख के करुण शूल,
सुख-दु ख न कोई सका भूल !

जिस तरह बहुत दिनो बाद लौटा हुआ बटोही अपने चारो ओर के मुखडो को देखता-पहिचानता और उनके सुख-दुख मे समवेदना का स्वर मिलाता है, उसी तरह 'गुञ्जन' मे कवि ने भी सब को सख्य भाव से देखा-भाला है और उनके सुख-दुख को सौहार्द से सहला दिया है।

'गुञ्जन' के 'विज्ञापन' मे पन्त जी ने लिखा है, "पल्लव की कविताओ मे मुझे 'सा' के बाहुल्य ने लुभाया था, यथा—

अर्द्ध निद्रित-सा, विस्मृत-सा,
न जागृत-सा, न विमूर्च्छित-सा—इत्यादि ।

'गुञ्जन' मे 'रे' की पुनरुक्ति का मोह नही छोड सका। यथा—'तप रे मधुर मधुर मन'—इत्यादि।

'सा' से, जो मेरी वाणी का सवादी स्वर एकदम 'रे' हो गया, यह उन्नति का क्रम पाठको को खटकेगा नही, ऐसा मुझे विश्वास है।"—इस कथन मे कवि-जनोचित परिहास होते हुए भी काव्य का एक गम्भीर तथ्य है, सगीत के राग के अतिरिक्त इससे मनुष्य के मनोराग पर भी प्रकाश पडता है। 'सा' मे मनुष्य बहिर्मुख है, उसका राग बाहर से बोलता और बाहर ही फैलता है। 'रे' मे मनुष्य अन्तर्मुख है, उसका राग भीतर से उद्गीर्ण होकर अन्तर को स्पर्श कर जाता है, मर्म्मस्थल को बेध जाता है।

'रे' के सम्वोधन से कवि ने मनुष्य को अपनी आत्मीयता दी है। वह मानव-जीवन का दर्शक ही नही, समदु खी भी है, मानो उसका हृदय मनुष्य को पुकार कर कहता है—अरे, मैं भी तो तुम्ही हूँ !

'रे' मे कवि की सामाजिक सवेदनशीलता है। सुख-सुषमा का कवि दु ख से द्रवित होकर मनुष्य के साथ अपनापन जोडना चाहता है —

तप रे मधुर मधुर मन !
विश्ववेदना मे तप प्रतिपल,
जग-जीवन की ज्वाला मे ,गल,
बन अकलुष, उज्वल औ' कोमल,
तप रे विधुर विधुर मन
अपने सजल स्वर्ण से पावन
रच जीवन की मूर्त्ति पूर्णतम,
स्थापित कर जग मे अपनापन,
ढल रे ढल आतुर मन

यह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के लिए कवि की आत्मप्रेरणा है, जो कि आगे चलकर युग-प्रेरणा बन गई ।

सुख-दुख की साधना

पन्त जी लिखते है, "गुञ्जन से पहले—जब कि परिस्थितियो के वश अपनी प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी बनाने के लिए वाध्य नही हुआ था,—मेरे जीवन का समस्त मानसिक सघर्ष और अनुभूति की तीव्रता 'ग्रन्थि' और 'परिवर्त्तन' मे प्रकट हुई है ।"

'परिवर्त्तन' मे कवि का मन ससार की अनित्यता से खिन्न था। अपनी भाव-सृष्टि को फूलो की तरह मुरझाते, ओसो की तरह ढरकते, चाँदनी की तरह छीजते देख कर कवि छटपटा उठा था। उसके 'राग-तत्त्व मे मन्थन'

पैदा हो गया था। इस अनित्य जगत् मे किसी नित्य सत्य (स्थायी तत्व) को पा जाने के लिए उसने दर्शन शास्त्र का आश्रय लिया था। किन्तु समस्या आध्यात्मिक ही नही, सासारिक भी थी। 'गुञ्जन' मे दोनो ही दृष्टि से समस्या का समाधान है—

अस्थिर है जग का सुख-दुख,
जीवन ही नित्य चिरन्तन ।
सुख-दुख से ऊपर मन का
जीवन ही रे अवलम्बन ।

हम जीवन को सुख-दुख मे विभाजित कर हर्षित-विमर्षित होते है किन्तु जीवन इन खण्डित सीमाओ से निर्लिप्त एक अखण्ड प्रवाह है—

'सुख-दुख के पुलिन डुबा कर
लहराता जीवन-सागर ।'

कवि इस 'अनित्य जगत' मे जिस 'नित्य सत्य' को ढूँढ रहा था वह 'जीवन' की अखण्डता और व्यापकता मे मिल गया।

जैसा कि 'परिवर्त्तन' मे कवि ने कहा है—

आज का दुख, कल का आह्लाद
और कल का सुख, आज विषाद

इस दृष्टि से सुख-दुख एक क्षणभगुर वास्तविकता है। जीवन ही अपनी अजस्रता मे महान और 'चिरन्तन वास्तविकता' है।

यद्यपि सुख-दुख ही जीवन नही है, तथापि समय के भीतर क्षणो की तरह, जीवन मे सुख-दुख भी समाया हुआ है—

जग-जीवन मे है सुख-दुख,
सुख-दुख मे है जग जीवन

हैं बँधे बिछोह-मिलन दो
दे कर चिर स्नेहालिगन।

कवि दुख की उपेक्षा नही करता और सुख की अवहेलना भी नही करता। वह जीवन की अन्तर्बाह्य साधना के लिए उत्साहित करता है—

सागर की लहर-लहर मे
है हास स्वर्ण किरणो का,
सागर के अन्तस्तल मे
अवसाद अवाक् कणो का!

जीवन की लहर-लहर से
हँस खेल-खेल रे नाविक!
जीवन के अन्तस्तल मे
नित बूड-बूड रे भाविक!

सुख मे बाह्य जगत की सुषमा है, दुख में अन्तर्जगत की गरिमा। कवि आत्मस्थ रह कर बाह्य जगत मे सन्तरण करना चाहता है। दुख उसे सवेदनशील बनाता है, सुख सृजनशील।

मनुष्य की विपन्नता और निराशा का कारण व्यक्तिवाद और जीवन के प्रति एकागी दृष्टिकोण है। सुख से जैसे वह दुख को विलग कर देता है वैसे ही अपनी व्यक्तिगत क्षुद्रता से विस्तृत मानव-जगत को। कवि मनुष्य को आत्मसाधना और लोक-साधना के लिए प्रेरित करता है। आत्मसाधना की दृष्टि से कहता है—

मै नही चाहता चिर सुख,
चाहता नही अविरत दुख,

सुख-दुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख।
सुख-दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरण,
फिर घन मे ओझल हो शशि
फिर शशि से ओझल हो घन।

व्यक्तिगत सतह पर सुख-दुख का जो समन्वय आत्मसाधना है वही सामाजिक सतह पर लोक-साधना है। लोक-साधना की दृष्टि से कवि कहता है—

जग पीडित है अति दुख से,
जग पीडित रे अति सुख से,
मानव-जग मे बँट जावें
दुख सुख से औ' सुख दुख से।

'गुञ्जन' के रचना-काल मे समाजवाद का जो अस्पष्ट स्वर वायुमण्डल मे गूँज रहा था उसी की साहित्यिक प्रतिध्वनि इन पक्तियो में है।

'पल्लव' मे कवि ने प्रकृति का मानवीकरण किया था, 'गुञ्जन' में मनुष्य और प्रकृति का समाजीकरण किया है। यहाँ 'चाँदनी' का उर भी जग के दुख से जर्ज्जर हो गया है, वह नवजीवन का वर पाने के लिए तपस्या कर रही है।

सामाजिक दृष्टि से आधुनिक युग मे आकर भी कवि मानसिक दृष्टि से सन्त-युग की परम्परा मे है, इसीलिए उसने सुख की अपेक्षा दुख को महत्त्व दिया है। 'परिवर्त्तन' मे कहा था—

पिघल होठो का हिलता हास
दृगो को देता जीवन-दान,

वेदना ही मे तप कर प्राण
दमक, दिखलाते स्वर्ण हुलास !

'गुञ्जन' मे भी कवि कहता है—

सोने-सा उज्ज्वल बनने
तपता नित प्राणो का धन।

दुख से अन्त शुद्धि और आत्मत्याग की प्रेरणा मिलती है, इसीलिए रहस्यवाद और छायावाद ने उसे गौरव प्रदान किया है।

दुख को अन्त शुद्धि के लिए अगीकार कर लेने पर वही मधुर हो जाता है—

दुख इस मानव-आत्मा का
रे नित का मधुमय भोजन,
दुख के तम को खा-खा कर
भरती प्रकाश से वह मन।
('गुञ्जन')

दुख को महत्त्व दे कर भी कवि का सुषमित स्वभाव उससे समरस नही हो सका है। एक निश्छल आत्मनिरीक्षक की तरह वह स्वीकार करता है—

वन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुसकाना,
मै सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना।

'वन की सूनी डाली' मे कलिका का सामाजिक सूनापन है। बाह्य जगत से विमुख हो कर वह अपने अन्तर्जगत के आनन्द से आह्लादित है। कवि इस आत्मसाधना को शिरोधार्य्य करता है, किन्तु सूनेपन को स्वीकार

नही करता, वह सामाजिक निर्म्माण चाहता है। उसे मानव-जीवन अपूर्ण जान पडता हैं, वह अनुभव करता है कि विश्व को नवजीवन चाहिये।

कवि अपने मनोजगत के जिस सुरम्य लोक को सृष्टि मे साकार देखना चाहता है उसे पृथ्वी पर प्रत्यक्ष न पा कर उन्मन और विकल है—

मै प्रेमी उच्चादर्शो का,
सस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शो का,
जीवन के हर्ष-विमर्षो का,
लगता अपूर्ण मानव-जीवन,
मै इच्छा से उन्मन, उन्मन!
जग जीवन मे उल्लास मुझे,
नव-आशा, नव-अभिलाष मुझे,
ईश्वर पर चिरविश्वास मुझे,
चाहिये विश्व को नव जीवन,
मै आकुल रे उन्मन, उन्मन!

कवि देखता है कि समाज की नयी पीढी भी उसी की तरह नवजीवन के लिए उन्मन है—

वन-वन उपवन
छाया उन्मन-उन्मन गुञ्जन—
नव वय के अलियो का गुञ्जन!

सगुण का सन्देश

'परिवर्त्तन' मे कवि ससार की असारता देख कर विश्व से विरक्त था, 'गुञ्जन' मे वह जीवन की अक्षुण्णता से आश्वस्त होकर सृष्टि की सुन्दरता पर पुन अनुरक्त हो गया है। ससार को माया और जीवन को मिथ्या

कह कर वीतरागियो ने अति-निषेध और अनासक्ति का जो उपदेश दिया था, 'गुन्जन' मे उसका प्रतिषेध है—

क्या यह जीवन ? सागर मे
जल-भार मुखर भर देना!
कुसुमित पुलिनो की क्रीडा—
व्रीडा से तनिक न लेना ?

कृष्ण-काव्य मे गोपियो ने भी कुछ इसी तरह निराकार निर्विकार निर्गुण का प्रत्याख्यान किया था। वे रहस्यवाद को नही चाहती थी।

छायावाद ने सगुण-काव्य का नव प्रवर्त्तन किया था। व्रज के वेणु-काव्य की तरह छायावाद ने भी मनुष्य के अनुरागी हृदय को मुखरित कर दिया था। उसके स्वर मे सृष्टि के रागात्मक आकर्षण (रूप, रग, रस) का सम्मोहन था।

छायावाद वेदना को भी ले कर चला था और जीवन की रमणीयता को भी। उसका सुख-दुख दोनो ही मधुर था। वह जीवन के मधुवन का मधु-काव्य था। युगो के अनुरूप उसकी कला (अभिव्यक्ति) बदलती आयी है, बदलती जायगी, किन्तु आत्मा (अनुभूति) मधुमती ही बनी रही है, बनी रहेगी। मधु-काव्य वन-विहग (गीत-विहग) की तरह सृष्टि मे प्रकृति के चिर-तारुण्य का प्रतिनिधित्व करता है—

रिक्त होते जब जब तरु-वास
रूप धर तू नव-नव तत्काल
नित्य नादित रखता सोल्लास
विश्व के अक्षय-वट की डाल।

('गुन्जन' 'विहग के प्रति')

जिस प्रकृति से शोभा की सृष्टि मिली है उसी से ससृति मे ससरण करने की प्रवृत्ति भी मिली है। जो प्रकृति बाहर आकृति धारण करती है

वही भीतर रागात्मिका वृत्ति बन जाती है। अन्त प्रकृति (रागवती प्रकृति) को बाह्य प्रकृति (रूप-सृष्टि) मे आत्मोपलब्धि होती है, इसीलिए वह उस पर मुग्ध हो उठती है, मानो अपने ही पर आप न्यौछावर हो जाती है—

अपनी ही छवि से विस्मित हो
जगती के अपलक-लोचन
सुमनो के पलको पर सुख से
करने लगे सलिल-मोचन।
('पल्लव' 'अनग')

इस तरह निर्गुण का आत्मदर्शन ही छायावाद मे सगुण का सौन्दर्य-दर्शन बन गया। 'गुञ्जन' का कवि सगुण का सन्देशवाहक है। कृष्ण-काव्य से कण्ठ मिला कर वह रवि ठाकुर के स्वर मे कहता है—

तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन,
गन्ध-हीन तू गन्ध-युक्त बन,
निज अरूप मे भर स्वरूप, मन!
मूर्त्तिमान बन, निर्धन!
गल रे गल निष्ठुर मन!

निर्गुण निष्काम है, सगुण सकाम है। इच्छा या कामना चित्तवृत्तियो की प्रेरक शक्ति अथवा अन्त प्रकृति की राग-शक्ति है, वही जीवन को रति-यति-गति देती है। कवि देखता है कि 'शान्त सरोवर का उर' इच्छा से तरगित है, समुद्र का उर आकाक्षा से उद्वेलित है—'नाचती लहर पर हहर लहर।'

'गुञ्जन' के कवि की दृष्टि से निर्गुण (आत्मसाधना) भी सगुण की तरह सकाम है। यद्यपि दोनो की इच्छा के क्षेत्र अलग-अलग है, तथापि 'परिवर्त्तन' के निर्देशानुसार—

'एक ही लोल लहर के छोर

उभय सुख-दुख, निशि-भोर'—की तरह उनमे इच्छा का ही अन्तर्बाह्य प्रसार है।

'गुञ्जन' मे कवि कहता है—

इच्छा है जग का जीवन,
पर साधन आत्मा का धन,

साधन भी इच्छा ही है
सम-इच्छा ही रे साधन।

इच्छा के सन्तुलित समावेश से जीवन मे साधना का वही सौन्दर्य्य आ जाता है जो 'सुमनो के अधखुले दृगो' अथवा शिव के अधमुँदे मदिर लोचनो मे है। उनकी एक दृष्टि बाहर और एक दृष्टि भीतर है। उनमे अन्तर की आभा और बाहर की माया है। अन्तर माया को आत्मसात् कर रहा है, माया अन्तर को मादकता से भर रही है। उन मदिरालस लोचनो मे छाया-प्रकाश की द्वाभा है, जागृति और सुषुप्ति की सम्मिलित सुषमा है।

अन्तर्जगत के ज्योतिर्म्मय व्यक्तित्त्व से अवगत होते हुए भी 'गुञ्जन' मे कवि वहिर्जगत की चञ्चल माया पर मुग्ध है—

"सुनता हूँ इस निस्तल जल मे
रहती मछली मोतीवाली
पर मुझे डूबने का भय है
भाती तट की चल-जलमाली।"

कवि का विश्वास है कि वहिर्जगत के आनन्द मे ही उसे अन्तर्जगत की अदृश्य आभा सुलभ हो जायगी—

आएगी मेरे पुलिनो पर
वह मोती की मछली सुन्दर,
मै लहरो के तट पर बैठा
देखूँगा उसकी छवि जी भर ।

सगुण साधना मे प्रकृति-पुरुष (माया-ब्रह्म) का अद्वैत भी है और द्वैत भी। कवि प्रकृति के साथ है, उसी की लीला और कला मे वह जीवन पा जाता है।

अद्वैत के ब्रह्मानन्द मे जीवन की चरम परिणति है। किन्तु परिणति के लिए कवि जीवन के गति-क्रम की उपेक्षा नही करता—

सागर-सगम मे है सुख
जीवन की गति मे भी लय,
मेरे क्षण-क्षण के लघु कण
जीवन-लय से हो मधुमय।

सौन्दर्य्य और आह्लाद

'पल्लव' की तरह 'गुञ्जन' मे भी पन्त जी सौन्दर्य्य और आह्लाद के कवि है। वास्तविकता और अस्वस्थता ने उनके स्वभाव की सरसता अथवा अन्तस्तल की तरलता को सोख नही लिया। उनकी आन्तरिक शान्ति बनी रही, बाह्य क्राति की कटुता नही आने पायी। 'पल्लव' मे वे जिस सौन्दर्य्योल्लसित सृष्टि को छोड गये थे वह 'गुञ्जन' मे उन्हें फिर मिल गयी—

विहग, विहग,
फिर चहक उठे ये पुञ्ज-पुञ्ज,
कल कूजित कर उर का निकुञ्ज,
चिर सुभग, सुभग!

. . . .

जीवन का उल्लास—
यह सिहर सिहर,
यह लहर लहर,
यह फूल-फूल करता विलास
('गुञ्जन')

प्रकृति उन्हे फिर जीवन के प्रफुल्ल विकास की प्रेरणा देने लगी—

खिलती मधु की नव कलियाँ
खिल रे, खिल रे मेरे मन!
नव सुखमा की पखडियाँ
फैला, फैला परिमल-धन!

खुल खुल नव-नव इच्छाएँ
फैलाती जीवन के दल,
गा गा प्राणो का मधुकर
पीता मधुरस परिपूरण!
('गुञ्जन')

'पल्लव' में प्रकृति का अतीन्द्रिय रूप-विलास था। 'ग्रन्थि', 'उच्छ्वास' और 'आँसू' मे कवि ने उसे मानवीय अवयवो मे बाँधने का प्रयत्न किया था, किन्तु प्रकृति सूक्ष्मदेही ही बनी रही। 'गुञ्जन' मे कवि ने उसे स्थूल देह से भी बाँध दिया है, प्रकृति मनुष्य का शरीर पा गयी है। 'आज दो प्राणो का दिनमान', 'भावी पत्नी' तथा 'मधुवन' मे मधुर अनुभूति और मदिर अभिव्यक्ति है। ये कविताएँ गार्हस्थिक उल्लास जगाती है, 'गृहो में कुसुमित, मुदित, अमन्द'-प्रणय का सगीत सुनाती है। 'पल्लव' का वियोग-श्रृगार गुञ्जन मे सुखद श्रृगार बन गया है।

'पल्लव' मे कवि 'लघु लहरो के चल-पलनो' मे भूल रहा था, वह वायव्य जगत (भाव-जगत) के सुख से चञ्चल था। अब भी कहता है—'निज सुख से ही चिर चञ्चल मन', किन्तु 'गुञ्जन' मे कवि ने जीवन के अन्तस्तल मे भी प्रवेश किया है। वह मृण्मय जगत (वस्तुजगत) के दुख से गम्भीर हो गया है। उसमे चिन्तन की गहराई आ गयी है।

पन्त जी लिखते है—"मै पल्लव से गुञ्जन मे अपने को सुन्दरम् से शिवम् की भूमि पर पदार्पण करते हुए पाता हूँ।"—शिवम् से उनका अभिप्राय जीवन की कल्याणमयी साधना से है जो कि उनके आत्मचिन्तन ओर लोक-चिन्तन मे व्यक्त हुई है।

शिवम् की प्रतिष्ठापना पन्त जी की ऐतिहासिक और सास्कृतिक रचनाओ मे हुई है, 'गुञ्जन' मे मुख्यत सुन्दरम् का ही सन्देश है—

"गाता खग प्रात उठ कर
सुन्दर, सुखमय जग-जीवन!
गाता खग सन्ध्या-तट पर
मगल, मधुमय जग जीवन!"

वस्तुत सुन्दरम् और शिवम् मे सीमाओ का अन्तर है, आत्मा का नही। दोनो की आत्मा एक है, अनुभूति एक है, जो 'सुन्दर सुखमय' है, वही 'मगल मधुमय' है। अन्तर केवल अभिव्यक्ति की दिशाओ (भाव-मुद्राओ) मे है—सुन्दरम् मे नटवर की और शिवम् मे नटराजन् की अग-भगिमा है, भीतर दोनो ही कलात्मक है, कल्याण-कलित है।

सौन्दर्य्य मे व्यापकता आ जाने से वही शिव हो जाता है। 'पल्लव' मे प्रकृति का चित्रपट विस्तृत था, किन्तु सौन्दर्य्य, शोभा मे ही सीमित था। 'गुञ्जन' मे कवि को सौन्दर्य्य का विशद परिचय मिल गया है, वह उसे जीवन की सर्वागीणता मे देखने लगा है। पहिले प्रकृति की रमणीयता ही सुन्दर जान पडती थी, अब यह समस्त 'जग जीवन' ही 'सुन्दर सुन्दर'

जान पडता है। सुख-दुख, शैशव-यौवन, जन्म-मरण, नूतन-पुरातन इन सब मे सौन्दर्य्य ही प्रशस्त हो गया है—

"सुन्दर से नित सुन्दरतर,
सुन्दरतर से सुन्दरतम,
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन ।"

हम कह सकते हैं कि 'पल्लव' का अलौकिक सौन्दर्य्य ही 'गुञ्जन' के विश्वजीवन मे जीवन्त हो गया है।

'पल्लव' के 'बादल' मे कवि ने कहा था—

कभी चौकडी भरते मृग-से
भू पर चरण नही धरते।

'गुञ्जन' मे कवि ऊर्ध्वतल के उस उल्लास को अब भूतल पर सञ्चरित देखना चाहता है—

जग के उर्वर आँगन मे
बरसो ज्योतिर्मय जीवन!
बरसो लघु-लघु तृण, तरु पर
हे चिर अव्यय, चिर नूतन!

बरसो कुसुमो मे मधु बन,
प्राणो मे अमर प्रणय-धन,
स्मिति-स्वप्न अधर-पलको मे,
उर-अगो मे सुख-यौवन!

छू छू जग के मृत रजकण
कर दो तृण-तरु में चेतन,

मृण्मरण बाँध दो जग का,
दे प्राणो का आलिंगन !

बरसो सुख बन, सुखमा बन,
बरसो जग-जीवन के घन !
दिशि दिशि में औ' पल पल मे
बरसो संसृति के सावन !

भाव और कला

'गुञ्जन' मे कुछ कविताएँ 'पल्लव' और 'गुञ्जन' के बीच की है, जैसे 'भावी पत्नी', 'मुसकुरा दी थी क्या तुम प्राण !', 'तुम्हारी आँखो का आकाश', 'नवल मेरे जीवन की डाल', 'लाई हूँ फूलो का हास', 'मेरा कैसा गान'।

एकाध कविता 'पल्लव'-काल की है, जैसे, 'रूप तारा ! तुम पूर्ण प्रकाम', 'आज शिशु के कवि को अनजान'।

दो कविताएँ 'वीणा' और 'पल्लव' के बीच की है, जैसे—'कलरव किसको नही सुहाता', 'अलि, इन भोली बातो को'।

एक कविता 'वीणा'-काल की है, जैसे, 'नीरव तार हृदय मे'।

'गुञ्जन' मे 'वीणा' के अन्त स्पन्दन और 'पल्लव' के सौन्दर्य्य-दर्शन का सयोजन है। साथ ही, जीवन का नवीन चिन्तन भी।

'पल्लव' मे पन्त जी सौन्दर्य्य से अध्यात्म, भाव से ज्ञान की ओर अग्रसर हुए थे। 'परिवर्त्तन' मे ज्ञान भी भाव की भाषा पा गया था, अध्यात्म को काव्यत्त्व मिल गया था।

'गुञ्जन' मे पन्त जी चिन्तन से भाव की ओर अभिमुख है। वे जीवन मे सरलता की साधना करना चाहते है, किन्तु उनके चिन्तन मे जटिलता आ गयी है। कारण ? कहते है—

जीवन के नियम सरल है,
पर है चिर गूढ सरलपन,
है सहज मुक्ति का मधुक्षण,
पर कठिन मुक्ति का बन्धन!

'गुञ्जन' के चिन्तन मे 'परिवर्त्तन' की-सी सुस्पष्टता और भाव-विदग्धता नही है। उसमे दार्शनिक दुर्बोधता है, बौद्धिक गरिष्ठता है, फिर भी चिन्तन की सचाई और मनन की मौलिकता है।

'परिवर्त्तन' के आध्यात्मिक क्षेत्र मे पन्त जी को कोई नवीन प्रयास नही करना पडा था, उसका जीवन-दर्शन उन्हे अपने अध्ययन से सुलभ हो गया था। भाव के क्षेत्र मे उनकी सधी हुई अभिव्यक्ति-कुशलता ने उस दार्शनिक अध्ययन को कलाभिव्यञ्जन दे दिया था।

'गुञ्जन' के जीवन-चिन्तन मे कवि को अनुभूति और अभिव्यक्ति, दोनो के लिए स्वावलम्बी बनना पडा है। अपनी अनुभूति के अनुरूप अभिव्यक्ति के लिए नयी भाषा गढनी पडी है।

'पल्लव' की भाषा मे भावना का सौकुमार्य्य था, 'गुञ्जन' की भाषा मे चिन्तन की शक्ति है। चिन्तन से शक्ति पाकर 'पल्लव' की लचीली भाषा 'गुञ्जन' मे सुपुष्ट हो गयी है।

'गुञ्जन' मे पन्त जी की कलाकारिता बहुत बारीक हो गयी है। शब्दो, अक्षरो और मात्राओ को उन्होने और भी सूक्ष्मदर्शिता दे दी है। 'गुञ्जन' के 'विज्ञापन' मे वे लिखते हैं—"मेहदी मे दूसरे वर्ण पर स्वर-पात मधुर लगता है, तब यह शब्द चार ही मात्राओ का रह जाता है, जैसा कि साधारणत उच्चरित भी होता है। 'प्रिय प्रियाऽह्लाद' से 'प्रिय प्रि' आह्लाद' अच्छा लगता है। इस प्रकार की स्वतन्त्रता मैने कही-कही ली है। 'अनिर्वचनीय' के स्थान पर 'अनिर्वच', 'हरसिगार' के स्थान पर 'सिगार' आदि।"

'गुञ्जन' की भाषा यद्यपि 'पल्लव' की तरह तरल नही है तथापि उसके भाषा-सगीत मे भी 'एक सुघरता, मधुरता और श्लक्ष्णता' आ गई है जो 'पल्लव' मे नही मिलती।

श्लक्ष्णता से पन्त जी का अभिप्राय भाषा की भाव-जन्य सूक्ष्मता से है। उन्होने कहा है—"पल्लव की भाषा दृश्य-जगत के रूप-रग की कल्पना से मासल और पल्लवित है, गुञ्जन की भाषा भाव और कल्पना के सूक्ष्म सौन्दर्य्य से गुञ्जित।"

'गुञ्जन' की भाषा मे भाव का सूक्ष्म निखार 'एक तारा', 'नौका-विहार', और 'अप्सरा' मे विशेष रूप से देखा जा सकता है।

'पल्लव' मे पन्त जी ने कविता की भाषा को गद्य से मुक्त करने के लिए 'है' का बहिष्कार किया था। यथा—

> कहाँ प्रात को छिपती प्रतिदिन
> वह तारक-स्वप्नो की रात?
>
> ('स्वप्न')

इसका पूर्व पाठ यह है—

> कहाँ प्रात को छिप जाती है
> वह स्वप्नो से जगमग रात?

इन दोनो पाठो मे कितना चित्र-पार्थक्य है! 'तारक-स्वप्नो की रात' मे रहस्य की गूढता है, 'स्वप्नो से जगमग रात' मे दृश्य की सुरम्यता है।

जिस तरह 'गुञ्जन' मे पन्त जी ने भाव को शक्ति देने के लिए चिन्तन को अपनाया है उसी तह भाषा को शक्ति देने के लिए गद्य को भी। इसीलिए उसमे 'है' को पुन स्थान मिल गया है। 'है' से भाषा म यथास्थान प्रवाह आ जाता है।

पन्त जी ने 'पल्लव' और 'गुञ्जन' की किन्ही कविताओ मे यत्र-तत्र

जो सशोधन किये है उनसे भावो मे परिपक्वता आ गयी है किन्तु सरलता और सरसता की दृष्टि से पूर्वपाठ अधिक हार्दिक जान पडता है। यथा—

हो बूँदे अस्थिर, लघुतर
सागर मे बूँदे सागर,
यह एक बूँद जीवन का
मोती-सा सरस, सुघर हो!
('गुञ्जन')

इसका पूर्वपाठ देखिये—

है बूँद-बूँद मे सागर
सागर बूँदो का आकर
यह एक बूँद जीवन का
मोती-सा सजल, सुघर हो।

ये पक्तियाँ यद्यपि बच्चो की कविताओ जैसी सहज जान पडती है तथापि इनमे जीवन की रसार्द्रता है। कवि की तरह कविता की भी अपनी एक क्रमागत आयु होती है, अतएव वय-विशेष की रचनाओ को उनके स्वाभाविक रूप मे ही रहने देना चाहिये।

भाषा के साथ-साथ पन्त जी के छन्दो और काव्य-शैली मे भी परिवर्त्तन होता गया है। 'पल्लव' मे कुछ रूढ छन्द थे और कुछ नये छन्द, जिन्हे कवि ने अपने सगीत-वोध और रस-वोध से निर्म्मित किया था। 'गुञ्जन' मे रूढ छन्द पीछे छूट गये और 'पल्लव' की नवीनता से भिन्न कुछ नये छन्द आ गये। करुणा और शान्त रस (सवेदन और आत्मस्थता) के लिए पन्त जी ने मन्दगति के छन्द लिये है, वात्सल्य, शृगार और वीर रस (उल्लास और आवेश) के लिए द्रुतगति के छन्द। किन्तु 'गुञ्जन' मे उल्लास और आवेश की प्रगल्भता की अपेक्षा सुचिन्तित मानस का

धीर गम्भीर पद-विन्यास है। 'पल्लव' की तरुण-स्फूर्त्ति का 'गुञ्जन' मे सयमन है।

गीत-काव्य और दृश्य-काव्य के सयोग से 'वन-वन उपवन', 'विहग-विहग' और 'जीवन का उल्लास' मे पन्त जी ने प्रगीत-मुक्तक की एक नवीन शैली की सृष्टि की है। गीत के आदि चरणो को अन्त मे दुहरा कर मध्य मे चित्र को झकृत (प्राणान्वित) कर दिया है। आँखो के सामने एक रङ्गमञ्च खिच जाता है। वातावरण के अनुरूप ही गीतो की लय-ध्वनि है— 'वन-वन उपवन में' भ्रमर-गुञ्जन है, 'विहग-विहग' मे हृदय का हर्ष-स्फुरण है, 'जीवन का उल्लास' मे अन्तर का आनन्द-दोलन है—

यह सिहर, सिहर
यह लहर, लहर
यह फूल-फूल करता विलास !

जीवन का जल-निधि डोल-डोल
कल-कल छल-छल करता किलोल !

इन गीतो मे मन की सरलता का सगीत है।

भावो को मर्म्मव्यञ्जकता देने के लिए पन्तजी प्राय गीतो मे पुनरावृत्ति (रिपीटीशन) करते है, इससे राग का हृदय आलोडित हो उठता है। पुनरावृत्ति की भी अपनी एक कला है। पुराने ढग के पदो मे वह 'टेक' मात्र है, उससे गीत मे एकरसता आ जाती है। पन्त के गीतो मे वह एकरसता को भग करती है और 'पुन पुन प्रिय, पुन नवीन' जान पडती है। पुनरावृत्ति का गीतकाव्य के सगीत मे वही स्थान है जो जीवन मे स्मृति का।

'पल्लव' मे प्रयुक्त स्वर और व्यञ्जन की चित्रकला 'गुञ्जन' मे भी है। इसके अतिरिक्त पन्त जी ने काव्य की प्रतीक-कला का भी उपयोग किया है। यथा—

आँखो की खिडकी से उड-उड
आते ये आते मधुर विहग,
उर उर से सुखमय भावो के
आते खग मेरे पास सुभग।

जैसे विहग को कवि ने अपने 'सुखमय भावो' का प्रतीक (सकेत-चिह्न) बनाया है वैसे ही 'वायु' को सूक्ष्म चेतना का—

प्राण! तुम लघु-लघु गात
नील नभ के निकुञ्ज मे लीन
नित्य नीरव, नि सग नवीन,
निखिल छवि की छवि! तुम छवि-हीन,
अप्सरी-सी अज्ञात।

इसी 'नित्य नीरव, नि सग नवीन' और 'निखिल छवि की छवि! तुम छवि-हीन' को कवि ने अपनी सुकोमल भावना के अनुरूप अप्सरी का सौन्दर्य्य दे दिया है, मानो निर्गुण चेतना को सगुण शोभा मे सजीव कर दिया है—

अधर मर्म्मर युत, पुलकित अग,
चूमती चल-पद चपल तरग,
चटकती कलियाँ पा भ्रू-भग
थिरकते तृण, तरु, पात।
हरित द्युति चञ्चल-अञ्चल-छोर,
सजल-छवि, नील-कञ्चु तन गौर,
चूर्ण-कच, साँस सुगन्ध-झकोर
परो में साय-प्रात।

विश्व-हृत-शतदल निभृत-निवास
अहर्निश साँस-साँस मे लास,
अखिल जग-जीवन हास-विलास,
अदृश्य, अस्पृश्य, अजात !

इसी तरह 'बादल' को 'चिर अव्यय चिर नूतन' (अखण्ड और शाश्वत चेतन) का प्रतीक बना कर कवि ने उससे 'जग के उर्वर आँगन मे' 'ज्योतिर्मय जीवन' बरसाने के लिए अनुरोध किया है।

चित्र, सगीत और भाषा की दृष्टि से ये दोनो गीत बहुत सुपुष्ट है।

प्रथम गीत मे 'प्राण ! तुम लघु-लघु गात' की तरह ही पद-लाघवता और शब्द-लाघवता है, कही पक्तिश और कही शब्दश भावो का चित्र-समास है।

दूसरे गीत 'जग के उर्वर आँगन मे' 'युगवाणी'-काल की ऐतिहासिक (राजनीतिक) चेतना के पूर्व, छायावाद-युग की सास्कृतिक चेतना का उद्गार है। इसमे कवि का यह विश्वास व्यक्त हुआ है कि सस्कृति के ऊर्ध्वतल के अमृत-वर्षण से ही भूतल पर सुख-सुषमा का स्वर्ग खिल सकता है। पन्त जी को यह गीत बहुत प्रिय है, इसे उन्होने 'पल्लविनी' मे प्रथम स्थान दिया है।

'पल्लव' के 'वीचि-विलास' और 'विश्ववेणु' की तरह मानसी भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए 'गुञ्जन' मे पन्त जी ने काव्य की जिस प्रतीक-कला का प्रयोग किया उसे उन्होने अपनी उत्तर-कालीन रचनाओ (यथा 'स्वर्णकिरण') मे विशेष रूप से अपना लिया है।

'गुञ्जन' की कुछ कविताएँ ('मधुवन', 'एक तारा', और 'नौका-विहार') वर्णनात्मक है।

'मधुवन' मे तीन गीत है। प्रथम गीत ('आज मधु की नव प्रात') मे छायावाद के सुगठित मुक्तक का भावात्मक सगीत है—

आज लोहित मधु-प्रात
व्योम-लतिका मे छायाकार
खिल रही नव पल्लव-सी लाल,
तुम्हारे मधुर कपोलो पर सुकुमार
लाज का ज्यो मृदु किसलय-जाल !

'मधुवन' के शेष दो गीत वर्णन-बहुल है, इनमे रस-सञ्चरण की अपेक्षा, सौन्दर्य्य-चयन है। कही-कही बडी मनोहर रूप-कल्पना है, यथा, 'अँगुलियाँ मदन-बान की बान।' ये गीत व्रजभाषा के श्रृगार-काल की याद दिलाते है, इनमे उद्दीपन-विभाव है। अन्तर यह है कि ब्रज के श्रृगार-काव्य मे मानवीय अनुराग को प्रकृति उद्दीप्त करती थी, 'गुञ्जन' के इन गीतो मे स्वय प्रकृति ही मानवी छवि से उद्दीपित है। उसी की चितवन से प्रकृति मे प्रफुल्लता है—

"एक चञ्चल चितवन के व्याज
तिलक को चारु छत्र-सुख लाभ ।।"

प्रकृति का स्नेह-सम्भार मानवीय सुषमा का स्वागत कर रहा है—

"गन्ध-गुञ्जित कुञ्जो मे आज
बँधे बाँहो मे छायाऽलोक,
छजा मृदु हरित छदो का छाज,
खडे द्रुम, तुमको खडी विलोक।"

'मधुवन' की उन्मुक्त मलय-वात मनुष्य और प्रकृति की सीमाओ से स्वतन्त्र होकर दोनो के लिए रसात्मक ऋतु-प्रेरण भी बन गयी है—

"डोलने लगी मधुर मधु वात
हिला तृण, व्रतति, कुञ्ज, तरु-पात,

डोलने लगी प्रिये! मृदु वात
गुञ्ज-मधु-गन्ध-धूलि-हिम गात।
खोलने लगी, शयित-चिरकाल,
नवल कलि-अलस-पलक-दल-जाल,
बोलने लगी, डाल से डाल,
प्रमुद, पुलकाकुल कोकिल-बाल।"

•

"वितरती गृह-वन मलय-समीर
साँस, सुधि, स्वप्न, सुरभि सुख, गान,
मार केशर-शर मलय-समीर
हृदय हुलसित कर, पुलकित प्राण।
आज, तृण, छद, खग, मृग, पिक, कीर,
कुसुम, कलि, व्रतति, विटप, सोच्छ्वास,
अखिल आकुल, उत्कलित, अधीर,
अवनि, जल, अनिल, अनल, आकाश!"

इन अवतरणो मे मधुवन की वासन्ती वायु की गति, यति और स्फूर्ति है। 'गुञ्ज-मधु-गन्ध-धूलि-हिम-गात' मे देह-स्पर्श है, 'अखिल आकुल, उत्कलित, अधीर' मे रागोत्कर्ष।

'गुञ्जन' मे कवि, काव्य की प्रचलित परम्परा के अनुसार मनुष्य और प्रकृति के बीच विभाजक रेखा खीच कर नही चला है। दोनो मे एक ही सरस चेतना है, अतएव उनमे पार्थक्य नही। 'मधुवन' के अन्तिम गीत के अन्त मे कवि ने कहा है—

एक क्षण, अखिल दिशावधि-हीन,
एक रस, नाम-रूप-अज्ञात।

प्रकृति और मनुष्य इसी 'नाम-रूप-अज्ञात' रस का नाम-रूप धर कर उसे अभिव्यक्ति दे रहे है। इसीलिए कही प्रकृति मानवी बन गयी है, जैसे 'भावी पत्नी' मे, कही मानवी ही प्रकृति बन गयी है, जैसे हिमानी की इस शोभा मे—

मुसकुरा दी थी क्या तुम, प्राण!
मुसकुरा दी थी आज विहान?
आज गृह-वन-उपवन के पास
लोटता राशि-राशि हिम-हास,
खिल उठी आँगन मे अवदात
कुन्द-कलियो की कोमल प्रात!

'गुञ्जन' मे पन्त जी जहाँ कही राग को रस बना सके है वहाँ एक सुनिर्म्मित गीत गुञ्जरित हो उठा है। जहाँ राग हृदय मे ढल गया है वहाँ चिन्तनमय गीतो मे भी चित्र की रुचिरता और सगीत की सरसता है।

कही-कही भाव के साथ विचार क्षेपक की तरह जुड गया है, जैसे, 'ना, मुझे इष्ट है साधन' के बाद 'इच्छा है जग का जीवन'। भावना की परिणति हो जाने पर गीत या कविता मे व्याख्या की आवश्यकता नही जान पडती।

कही-कही मूल भावना से चिन्तन विच्छिन्न भी हो गया है, जैसे, 'आते कैसे सूने पल' अथवा 'सुन्दर विश्वासो से बनता रे सुखमय जीवन' मे। कवि जब अपनी भावना मे आश्वस्त नही रह पाता तब वह दार्शनिक पृष्ठपोषण करने लगता है।

कवि की हृत्तन्त्री के तार छवि की अँगुलियो से बजते रहे है।

'गुञ्जन' मे हृत्तन्त्री के तार वे ही है, किन्तु बुद्धि से कस गये है। यद्यपि 'पल्लव' की तरह 'गुञ्जन' के स्वर 'सुरीले ढीले' नही है तथापि बौद्धिक नियन्त्रण से उनमे रस-गाम्भीर्य्य आ गया है। 'पल्लव' का काव्य-

प्रवाह उमह (उमड) कर बहता था, उसमे द्रवत्त्व था। 'गुञ्जन' का काव्य-प्रवाह अथह कर बहता है, उसमे घनत्त्व है।

कवि के मानसिक स्नायुओ पर परिस्थितियो का गुरुतर भार पड जाने के कारण 'गुञ्जन' मे काल्पनिक भावुकता की अपेक्षा मार्म्मिक स्वाभाविकता आ गयी है। कवि अनुभूतिशील हो गया है। यह 'पल्लव' के प्रणय-काव्यो और 'गुञ्जन' के दो प्रेमगीतो से ('आज रहने दो यह गृह-काज' और 'कब से विलोकती तुमको ऊषा आ वातायन से') स्पष्ट हो जाता है। कवि इनमे सामाजिक प्राणी बन गया है।

'गुञ्जन' मे प्रेम की कई कविताएँ है, जिनमे 'भावी पत्नी' अपेक्षाकृत विस्तृत है। इसमे भावुकता और स्वाभाविकता का सन्तुलन है।

कवि ने 'भावी पत्नी' मे अपनी मानसी सुषमा को ही साकार कर दिया है। इस निसर्ग-कन्या मे प्रकृति की छवि और मनुष्य की आत्मा है। एक ओर यह—

'नवल कलिकाओ की-सी वाण,—
बाल-रति-सी अनुपम, असमान' बालिका है।

दूसरी ओर—

'मधुरता मे-सी मरी अजान
लाज की छुई मुई-सी म्लान'—'भावी पत्नी' है। इस

प्रेयसी मे सास्कृतिक मनोहरता है।

कल्पना-प्रधान होते हुए भी यह कविता मर्म्मस्पर्श करती है। इसका सगीत मधुर मन्थर गति से हृदय को हिन्दोलित करता है। इसकी टेक ('प्रिये, प्राणो की प्राण'!) प्रतिध्वनि की तरह मन के राग-तन्तुओ को बजाती है।

'भावी पत्नी' 'पल्लव' और 'गुञ्जन' के बीच की रचना है। पन्तजी 'पल्लव' की भाव-प्रवणता को 'गुञ्जन' की सुदृढ शैली का जो विन्यास

देते उसी का एक स्वरूप 'भावी पत्नी' मे है, दूसरा स्वरूप 'अप्सरा' मे। 'पल्लव' के 'बालापन' का 'भावी पत्नी' मे और 'अनग' का 'अप्सरा' मे प्रौढ काव्य-विकास हुआ है।

'आधुनिक कवि' के 'पर्य्यालोचन' मे पन्त जी लिखते है—"गुञ्जन के सगीत मे एकता है, 'पल्लव' के स्वरो मे बहुलता।"

'पल्लव' के स्वरो में बहुलता राग-वृत्तियो की है। 'गुञ्जन' के सगीत मे एकता चिन्तन की है। 'स्वप्न' शीर्षक कविता मे कवि ने कहा था—

किन इच्छाओ के पखो मे
उड-उड ये आँखे अनजान
मधु-बालो-सी छाया-वन की
कलियो का मधु करती पान ?
('पल्लव')

यद्यपि 'गुञ्जन' मे भी कवि की मधुप-वृत्ति है, वह 'जीवन-मधु-सञ्चय को उन्मन' है, मधुकर की तरह मधुरता का रस-पान करना चाहता है, तथापि उसमे इच्छाओ की चञ्चलता नही है, एक स्वस्थता अथवा आत्मस्थता आ गयी है। 'पल्लव' का राग विकेन्द्रित था, 'गुञ्जन' का राग केन्द्रित है।

'चाँदनी', 'नौका-विहार', 'एक तारा' और 'अप्सरा' मे 'पल्लव' की तरह कल्पना की चित्र-विविधता होते हुए भी चिन्तन की एकाग्रता है।

'चाँदनी' पर छोटी-बडी दो कविताएँ है, एक मे करुणा है, दूसरी म प्रसन्नता—

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद-हासिनि,
मृदु-करतल पर शशि-मुख धर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि।

'पल्लव' के 'नक्षत्र' की तरह 'गुञ्जन' की इस 'चाँदनी' मे भी कल्पना की अनेकरूपता है, किन्तु इसमे विशृखलता नही है, प्रत्येक उद्‌गार एक पूर्ण भाव-चित्र बन गया है। सब मिला कर 'चाँदनी' मे जीवन की चिन्मयी ज्योति है।

'नौका-विहार' और 'एकतारा' मे काव्य-कला का अभिनव प्रयोग है। ये कविताएँ वर्णनात्मक काव्य के कलेवर मे छायावाद का भाव-प्रबन्ध प्रस्तुत करती है। इन्हे हम चित्र-कथा कह सकते है। चित्रो मे जीवन बोल रहा है। ये सजीव चित्र बाहर के दृश्यपट से आकर अन्तर्पट मे अमिट हो गये है।

इन दोनो कविताओ मे पन्त-काव्य की प्रगति देखी जा सकती है। 'नौका-विहार' मे 'पल्लव' का प्राकृतिक दर्शन 'गुञ्जन' के अन्तर-दर्शन की ओर है, 'एक तारा' मे अन्तर-दर्शन 'युगवाणी' के सामाजिक दर्शन की ओर।

'एक तारा' मे छायावाद के कवि का अन्तर्मुख-व्यक्तित्त्व है—'वह रे अनन्त का मुक्त मीन, अपने असग-सुख मे विलीन।'

'एक तारा' का उपसहार कलात्मक है। कवि ने नाटकीय कुशलता से दृश्य-पट का परिवर्त्तन कर दिया है। चित्र की परिणति चित्र मे ही हुई है।

'नौका-विहार' का उपसहार प्रश्नात्मक है। एक उद्भट समीक्षक को कला की दृष्टि से यह असगत जान पडा था। किन्तु इसमे कवि के श्रद्धालु मन का भाव-सहज उद्‌गार है, अतएव, चिन्तन ने चित्र को भारा-क्रान्त नही होने दिया।

'अप्सरा'

'पल्लव' के 'परिवर्त्तन' की तरह 'गुञ्जन' मे 'अप्सरा' का विशेष स्थान है। दोनो कविताओ मे जीवन की दो भिन्न मुद्राएँ, भिन्न प्रेरणाएँ

है। 'परिवर्त्तन' मे विषाद था, 'अप्सरा' मे आह्लाद है। 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि' में बाल विहगिनि को सम्बोधित कर कवि ने कहा था—

श्री-सुख-सौरभ का नभ चारिणि !
गूँथ दिया ताना-बाना।

—यही बात 'अप्सरा' के लिए भी कही जा सकती है।

'अप्सरा' विश्व के अपने ही मनोविकास की कला-सृष्टि है, वह उसकी मानसी प्रतिमा है—

"निखिल विश्व ने निज गौरव
महिमा, सुषमा कर दान,
निज अपलक उर के स्वप्नो से
प्रतिमा कर निर्म्माण,
पल-पल का विस्मय, दिशि-दिशि की
प्रतिभा कर परिधान,
तुम्हे कल्पना औ' रहस्य मे
छिपा दिया अनजान।"

शैशव से प्रौढत्व तक जीवन की रमणीता की जो भावना मानव-हृदय को आकर्षित करती रहती है, वह कैस बदलती जाती है, कैसे अनेक रूप धरती जाती है, यह इस कविता मे देखा जा सकता है।

'गुञ्जन' की 'भावी पत्नी' और 'अप्सरा' पर रविबाबू की 'उर्व्वशी' का कुछ भाव-प्रभाव है। किन्तु कवि की कविता की कसौटी यह है कि 'पल-पल के विस्मय' और 'दिशि-दिशि की प्रतिभा के परिधान' मे स्वयं उसकी कला ने कैसा स्वरूप पाया है। इस दृष्टि से 'उर्व्वशी' और 'अप्सरा' मे देह और चेतना का अन्तर पड गया है। रवि बाबू की 'उर्व्वशी' केवल उर्व्वर-श्री रूपसी है—

"नह माता, नह कन्या, नह वधू, सन्दरी रूपसि,
हे नन्दनवासिनी ऊर्व्वशी।"

'गुञ्जन' की 'अप्सरा' माता, कन्या, वधू और रूपसी, यह सब कुछ है, और इन सबसे परे जीवन की एक अदृश्य अमृत-चेतना है—

नव-शिशु के सँग छिप छिप रहती
तुम, मा का अनुमान,
डाल अँगूठा शिशु के मुँह मे
देती मधु - स्तन - दान,
छिपी थथक से उसे सुलाती
गा गा नीरव गान

रवि बाबू की उर्व्वशी पौराणिक युग की है। किसी आदिम वसन्त के प्रभात मे वह उदित हुई थी, उसके बाद सदा के लिए अस्ताचलवासिनी हो गयी।

'गुञ्जन' की अप्सरा 'पल्लव' की 'चारु-नभचरी-सी वय-हीन' है, वह चिरकालिक है, एक चिरन्तन आनन्दमयी सत्ता की तरह उसका निरन्तर आविर्भाव होता रहता है—

प्रति युग मे आती हो रङ्गिणि!
रच-रच रूप नवीन
जग के सुख-दुख, पाप-ताप
तृष्णा-ज्वाला से हीन,
जरा - जन्म - भय - मरण - शून्य
यौवनमयि, नित्य नवीन

'उर्व्वशी' मे केवल सौन्दर्य्य है। 'अप्सरा' मे अनुराग भी है, वह छायापथ से आकर मनोजगत को अनुरञ्जित कर जाती है—

"तन्द्रा के छाया-पथ से आ
शिशु-उर मे सविलास,
अधरो के अस्फुट मुकुलो मे
रँगती स्वप्निल हास"

रवि बाबू की 'उर्व्वशी' मे सौन्दर्य्य की इन्द्रिय-ग्राह्य मादकता है। उद्‌गारपूर्ण शैली और छन्द की लय-भगिमा ने उसे और भी सजीव कर दिया है।

'अप्सरा' की शैली वर्णनात्मक है। उद्‌गीर्णता के अभाव और छन्द की एकरसता के कारण वह मन को 'उर्व्वशी' की तरह आन्दोलित तो नही कर पाती किन्तु हृदय मे एक शान्त प्रभाव छोड जाती है।

'अप्सरा' की भाषा मे मसृणता, भावना मे अतीन्द्रियता (सूक्ष्म-प्राणता) और चित्रो मे व्यापकता है।

कवि ने अपनी बारीक बरौनियो की तूलिका से 'अप्सरा' को प्रकृति की रमणीयता मे साकार किया है—

"तुहिन-विन्दु मे इन्दु-रश्मि-सी
सोई तुम चुपचाप,
मुकुल-शयन मे स्वप्न देखती
निज निरुपम छवि आप"

—ऐसी ही मृदुला है कवि पन्त की काव्यात्मा।

काशी,
१४।११।५०

ज्योत्स्ना

"कभी स्वर्ग की थी तुम अप्सरि,
अब वसुधा की बाल,
जग के शैशव के विस्मय से
अपलक-पलक-प्रवाल !"

—'गुञ्जन' की अप्सरा ने 'ज्योत्स्ना' मे सार्वजनिक रूप धारण किया है। स्वर्ग की सुषमा ससार के सन्ताप से द्रवित होकर, पृथ्वी पर आदर्श साम्राज्य स्थापित करने के लिए, ज्योत्स्ना के ज्योतिर्म्मय व्यक्तित्त्व मे 'नये युग की विभा' वन कर छायापथसे भूतल पर अवतरित हुई है। मानव के अन्तर्जगत मे युग-युग से अप्सरा की जो रमणीय भावना अदृश्य चली आ रही थी वही ज्योत्स्ना की 'साकार चेतना' बन कर अग- जग मे छा गयी है।

स्वर्ग-लोक से ज्योत्स्ना को विदा करते समय उसका प्रियतम इन्दु कहता है—"रानी ! स्वर्ग के वायुमण्डल के निचले स्तर आजकल मर्त्यलोक की आर्त्त पुकारो से पीडित हो उठे है। मनुष्य जाति के भाग्य का रथ-चक्र इस समय जडवाद के गहरे पङ्क मे धँस गया है। मनुष्य के आत्म-ज्ञान का स्रोत अनेक प्रकार के भौतिक वाद-विवादो के मरु मे लुप्त हो गया है। तुम जाकर अनादि काल से अनन्त गतागत जीवो की भावनाओ से पोषित, प्राणिमात्र के अनश्वर स्नेह से सिञ्चित, स्वय जाग्रत, आत्म-प्रकाश के प्रदीप को, विश्व-भर के कल्याण के लिए मानव-जाति के हाथो मे रख आओ।"

वीणा में भी कवि ने कुछ ऐसी ही शुभकामना, विहग-बालिका के प्रति, की थी——

कल-कण्ठिनि ! निज कलरव में भर,
अपने कवि के गीत मनोहर
फैला आओ वन-वन, घर घर
नाचें तृण, तरु, पात !

कवि के वे गीत 'ज्योत्स्ना' में भाव-नाटय और मूक नृत्य बन गये हैं।

सृजन-स्वप्न

पृथ्वी पर एक आदर्श राज्य अथवा सुखी समाज का संस्थापन इस युग के मनीषियों और कल्पकों का सृजन-स्वप्न है। 'ज्योत्स्ना' में कवि-श्री पन्त ने भी अपना एक निर्म्माण-स्वप्न दिया है। सुरभि पवन से कहती है——"संसार से यह तामसी विनाश उठ जाय, और यह सृष्टि प्रेम की पलकों में, अपने ही स्वरूप पर मुग्ध, सौन्दर्य्य का स्वप्न बन जाय।"

आदर्श (जीवन-सौन्दर्य्य) के अनुरूप ही 'ज्योत्स्ना' के निर्म्माण के साधन कलात्मक हैं। वह कहती है——"काव्य, संगीत, चित्र, शिल्प द्वारा मनुष्य के सम्मुख जीवन की उन्नत मानवी मूर्त्तियों को स्थापित करना है।"

अपने कलात्मक साधनों द्वारा 'ज्योत्स्ना' मनुष्य के मनोजगत को सुसंस्कृत करना चाहती है, इसीलिए उसका व्योमयान 'भूलोक के मानस-सरोवर' में उतरता है। मनुष्य का मनोजगत उसका छाया-जगत है। पवन कहता है——"यह छाया-जगत ही संसार का मनोलोक है, जिसके नेपथ्य में छिपी हुई अदृश्य सूक्ष्म शक्तियाँ विश्व के रङ्गमञ्च पर अभिनय करने को अवतरित होती हैं।"——उन्हीं सूक्ष्म शक्तियों ने 'ज्योत्स्ना' में मानवीय व्यक्तित्त्व ग्रहण किया है।

स्वप्न और कल्पना 'ज्योत्स्ना' से पूछते है—"मानवी भावनाओ के वस्त्र पहना एव मानवी रूप, रग और आकार ग्रहण करा कर हमे आपने उन्मुक्त निसीम से किस दिव्य प्रयोजन के लिए अवतीर्ण करवाया, सम्राज्ञि! वह कौन-सा देव-कार्य्य है ?"

'ज्योत्स्ना' कहती है—"इस बुद्धिवाद के भूल-भुलइये मे खोयी हुई, जडवाद, सापेक्षवाद, विकासवाद आदि अनेक वाद-विवादो की टेढी-मेढ़ी पेचीली गलियो मे भटकी हुई, नास्तिकता और सन्देहवाद से पीडित, पशुओ के अनुकरण मे लीन मानव-जाति का परित्राण करना है। उसे जडता से चैतन्य की ओर, शरीर से आत्मा की ओर, रूप से भाव की ओर अग्रसर करना है।"

जीवन मे जब जिस तत्त्व का अभाव जान पडा कवि ने उसी का युग-निर्देश किया। भौतिकवाद के स्थूल युग मे उसने 'ज्योत्स्ना' द्वारा छायावाद का भाव-सत्य दिया, छायावाद के बाद 'युगवाणी' द्वारा प्रगति-वाद का रूप-सत्य—

"रूप रूप बन जायँ भाव स्वर
चित्र गीत झकार मनोहर।"

भाव और रूप, दोनो से एक ही परम लक्ष्य की सिद्धि होती है। 'ज्योत्स्ना' मे अरुण, उषा से कहता है—"प्रिये! चाहे रूप से अरूप (भाव) की ओर देखे, चाहे अरूप से रूप की ओर, दोनो ही प्रकार से परमात्मा के आनन्दमय स्वरूप के दर्शन मिलते है।"

जीवन का सामञ्जस्य

'ज्योत्स्ना' मनोजगत के जिन परिष्कृत प्राणियो को नये युग की प्रजा के रूप मे देखना चाहती है उनका आविर्भाव तीसरे अक मे हुआ है। इनके निर्म्माण मे कवि ने आध्यात्मिक मनोविज्ञान का उपयोग किया

है। ये अन्तश्चेतना से जागरूक प्राणी भावी युग मे उदित होकर आज के बीतते हुए वर्त्तमान का सिहावलोकन कर रहे है। जार्ज यमुना से कहता है—"ऊँह, उन पुरानी स्मृतियो के प्रेतो को आँखो के सामने मत आने दो।"

वर्ण, वर्ग, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्र, राजतन्त्र, लोकतन्त्र, प्रजातन्त्र, समाजवाद, इत्यादि, वर्त्तमान युग के सामाजिक और राजनीतिक द्वन्द्वो को पार कर 'ज्योत्स्ना' की नयी प्रजाएँ पारस्परिक स्नेह के साम्राज्य मे पहुँच गयी है। नीलरतन कहता है—"मनुष्य को शासन-पद्धति अथवा उसके नियमो का आविष्कार नही करना है, उसे केवल सत्य की जिस शासन-प्रणाली से समस्त विश्व चलता है, उसका अन्वेषण कर, उसे पहचान भर लेना है। गत युग अपने को बाह्य सामञ्जस्य देने की चेष्टा करता रहा, जब कि उसे एकमात्र आन्तरिक सामञ्जस्य स्थापित करने की आवश्यकता थी।"

'ज्योत्स्ना' के सहृदय समाज मे आदर्श और यथार्थ का भी द्वन्द्व नही है। जार्ज कहता है—"मानव-स्वभाव से तुलना करने पर, जान पडता है कि आदर्शों को सब के लिए बन्धन-स्वरूप बना देने पर वे अपना मूल्य खो बैठते है। उनसे स्वभाव का विकास होने के बदले, ह्रास होने लगता है। हमारे युग की एक विशेषता यह भी है कि आदर्श स्वभाव के अनुरूप चलते है।"—इसी बात को कवि ने 'युगवाणी' मे इन शब्दो मे कहा है—

मानव-स्वभाव ही
बन मानव-आदर्श सुकर
करता अपूर्ण को पूर्ण,
असुन्दर को सुन्दर।

पात्र-भेद से मनुष्य के स्वभाव मे गुण-भेद रहेगा, किन्तु वह हार्दिक एकता मे बाधक नही, सामाजिक विकास मे सहायक होगा। हेनरी कहता है—"प्रवृत्ति निवृत्ति मार्ग सदैव ही रहेगे, दोनो ही अपने-अपने

स्थान पर सार्थक है। पहला भोक्ता के लिए, दूसरा द्रष्टा के लिए, जिसे ज्ञान प्राप्त करना है ।"—यही दृष्टिकोण हमारे यहाँ की आश्रम-व्यवस्था मे भी है ।

'ज्योत्स्ना' मे पन्त जी ने एक उदार सामाजिक सस्कृति का समन्वय-चित्र दिया है। इस सस्कृति मे उपवन के फूलो और चित्र के विविध रगो की तरह सर्वदेश, सर्वकाल और सर्वमानव का समावेश है । इसके निर्म्माण मे अतीत का भी उतना ही महत्त्व है जितना भविष्य के विकसित युग का । यमुना कहती है—"जिन प्राचीन सस्कृतियो के बुझते हुए अगारो से हमारे नवीन प्रकाश की लौ उठी है, उन्हे हमे सम्मान की दृष्टि से देखना चाहिये। नही तो हम जीवन के अखण्डनीय सत्य को नही समझ सकेंगे ।"

निवृत्ति और प्रवृत्ति की तरह इस सस्कृति में पूर्व और पश्चिम का सयोजन है। वेदव्रत कहता है—"पाश्चात्य जडवाद की मासल प्रतिमा मे पूर्व के अध्यात्म-प्रकाश की आत्मा भर एव अध्यात्मवाद के अस्थि-पञ्जर मे भूत या जड विज्ञान के रूप-रग भर हमने नवीन युग की सापेक्षत परिपूर्ण मूर्त्ति का निर्म्माण किया। उसी पूर्ण मूर्त्ति के विविध-अग-स्वरूप पिछले युग के अनेक वाद-विवाद यथोचित रूप ग्रहण कर सके है ।"

सस्कृति का स्वरूप

'ज्योत्स्ना' की इस सर्वागीण सस्कृति को प्रचलित प्रयोग मे विश्व-सस्कृति कहा जा सकता है। सुगमता के लिए हम इसे कौटुम्बित सस्कृति कहेंगे। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को विशद भावना इस सस्कृति मे है। इसमे केवल मनुष्यो का ही नही, सभी जीवो का समवाय है—

"जीव निखिल भगिनि-भ्रात
पुरुष-प्रकृति पिता-मात ।"

इस कौटुम्बिक सस्कृति का परिचय प्रथम अक मे ही सन्ध्या के विहग-परिवार मे मिल जाता है। सन्ध्या वात्सल्य-पूर्वक कहती है—"सब बच्चे आ गये? आ गयी मुनिया, आ गये खजन? मेरी आँख का तारा! (फूलसुँही के ऊपर हाथ फेरती) तू भी आ गयी फूलकुमारी, रानी बिटिया!"

इसी तरह 'ज्योत्स्ना' की विश्व-सस्कृति भी जीवन की सभी दिशाओ के यात्रियो को प्यार से अपनाती है, सब का स्नेह से स्वागत करती है।

यह सस्कृति अपनी ममता से सृष्टि की एकप्राणता का वोध कराना चाहती है। हरियल कहता है—"ओह! आज गोली के निशाने से बाल-बाल बचा! अभी तक जी धडक रहा है।"—इन शब्दो मे वही मर्म्मस्पन्दन, वही अन्तर्पीडन है जिसे मनुष्य अपनी वेदना मे अनुभव करता है, किन्तु क्या उसकी अनुभूति सहानुभूति बन पाती है? लवा कहता है—"मनुष्य की यह कैसी निर्दयता है! हमारे आकाश-से उन्मुक्त पखो के आनन्द को देख नही सकते!"

मनुष्य भला मनुष्य के आनन्द को भी कहाँ देख पाता है?

कवि जिस सास्कृतिक समाज को प्रत्यक्ष करना चाहता है, प्रथम और पञ्चम अक मे उसका हार्दिक चित्र है, तीसरे अक मे बौद्धिक चित्र। वैचारिक वार्त्तालापो द्वारा कवि ने नव-निर्म्माण की मानसिक शिराओ अथवा सैद्धान्तिक रेखाओ का निरूपण किया है। परिवर्त्तन' में कवि का आत्ममन्थन और रूढ जीवन-दर्शन था, 'ज्योत्स्ना' के इस अक (तीसरे अक) मे युग-मन्थन और मौलिक चिन्तन है। दृष्टिकोण मे दार्शनिक नवीनता है।

स्वप्न और कल्पना की अन्त प्रेरणा से समुन्नत विचारो के प्राणी 'ज्योत्स्ना' के अभीष्ट युग मे आसानी से पहुँच गये। वे वर्त्तमान युग की वास्तविकता से दूर है। यदि क्रियात्मक चरित्र-चित्रण के भीतर से उन प्राणियो का प्रादुर्भाव होता तो 'ज्योत्स्ना' के अन्य अको की तरह तीसरा

अक भी मर्म्मस्पर्शी हो जाता। वास्तविकता के भीतर से भविष्य की जिस नवप्राण चेतना का उदय हो रहा है उसका जीवन्त परिचय पन्त की 'पाँच कहानियाँ' मे मिलता है।

मनोवृत्तियो का द्वन्द्व

चौथे अक मे 'ज्योत्स्ना' का ज्योतिर्लोक (जाग्रत-मनोलोक) सक्रमण-काल से ग्रस्त हो जाता है। चन्द्रग्रहण के लाक्षणिक सकेत से कवि ने सतोगुण पर तमोगुण के आक्रमण का दृश्य-निर्देश किया है। पोराणिक रूपक मे मनुष्य की सात्त्विक और तामसिक वृत्तियो का अन्तर्द्वन्द्व ही देवासुर-सग्राम है। तीसरे अक में सुलेमान ने कहा है—"ससार की भिन्न-भिन्न सभ्यताओ एव सस्कृतियो के स्वर्गवासी देवी-देवता एव नरकवासी राक्षस-गण, जो हमारे आधुनिक युग की किशोरावस्था मे आतक जमाते रहे है, केवल मनुष्य के मनोजगत मे व्याप्त सद् एव असद् प्रवृत्तियो के कल्पित स्वरूप एव चित्र-मात्र है।"

आसुरिक अथवा तामसिक वृत्तियाँ सृष्टि को सात्त्विक वृत्तियो का सरक्षण करती है। चौथे अक के दृश्य-निर्देश मे कवि कहता है—"सृष्टि के विधान मे तामसिक प्रवृत्तियो का स्थान और उपयोगिता अप्रत्यक्ष एव तिर्य्यक रूप से सृष्टि के विकास को सहायता पहुँचाना है। विश्व की बाह्य सत्ता तमोगुण मे है, फलत तामसिक प्रवृत्तियाँ गौण रूप से सृष्टि का सहार करती हुई, सूक्ष्म दृष्टि से सृजन करने मे सहायक होती है। ये सृष्टि रूपी फल को चारो ओर से घेरे हुए कठोर छिलके की तरह है, जो जीवो के अज्ञान-जनित समस्त आघात-प्रतिघात सह कर अपने अन्तस्तल मे सूक्ष्म सात्त्विक वृत्तियो के रस एव माधुर्य्य की रक्षा करती है। * इसीलिए

* सात्त्विक वृत्तियाँ रावण के भीतर राम की तरह अन्तर्गुह्य रहती है। —लेखक।

मनोवैज्ञानिक घृणा, क्रोध, भय आदि वृत्तियो को प्रेम, दया, आदर आदि का ही प्रतीक -रूप बतलाते है।"—तीसरे अक मे पवन भी कहता है—"इस भूलोक के कुछ दार्शनिक तो तमोगुण के तिरोभाव को असम्भव मानते है, और उसे सृष्टि के विकास के लिए एक आवश्यक उपादान मानते है।"

क्या इसीलिए युग-युग के प्रकाश के प्रतिनिधि चन्द्र-सूर्य्य को कभी पूर्ण ग्रहण, कभी खण्ड ग्रहण लग जाता है ?

मनुष्य के अन्त करण के जागरण-काल मे सात्त्विक वृत्तियो का ग्रह-मोक्ष हो जाता है। कवि के कथनानुसार—'प्राकृतिक विकास-नियमो के अनुरूप, सत्प्रवृत्तियो का अधिक प्रचार बढने पर, प्रयोजन न रह जाने के कारण,' आसुरिक उपद्रव, 'पुन तमोगुण मे लय होकर सुप्तावस्था को प्राप्त हो जाते है।'

पन्त जी युग-सक्रमण अथवा विश्व-क्रान्ति को द्विविध-रूप मे देखते हैं। एक है आन्तरिक क्रान्ति, दूसरी है बाह्य क्रान्ति (राजनीतिक क्रान्ति)। मूलत दोनो एक ही मनोभूमि की उपज है, किन्तु उनकी क्रियाएँ अलग-अलग है। एक मे आत्मसघर्ष है, दूसरे मे लोक-सघर्ष।

'ज्योत्स्ना' के चौथे अक के दृश्य-निर्देश मे आन्तरिक क्रान्ति की ही मनोवैज्ञानिक विवृति है।

'युगवाणी' मे बाह्य क्रान्ति की भी अभिव्यक्ति है। कवि ने उसे मार्क्सवादी दष्टि से देखा है—

"रजत स्वप्न साम्राज्यवाद का ले नयनो मे शोभन
पूँजीवाद निशा भी है होने को आज समापन।
मरणोन्मुख साम्राज्यवाद , कर वह्नि और विष वर्षण,
अन्तिम रण को है सचेष्ट, रच निज विनाश आयोजन।"

पन्त जी आन्तरिक क्रान्ति को प्रमुख स्थान देते है। इस अन्तर्मुखी क्रान्ति का उद्देश्य मानव का मन परिवर्त्तन अथवा सास्कृतिक उन्नयन

है, जिसके बिना बाह्य क्रान्ति केवल उद्वेलन या आन्दोलन मात्र रह जाती है। अपने कलात्मक साधनो द्वारा 'ज्योत्स्ना' उसी सूक्ष्म तल पर है जिस पर अपने नैतिक साधनो-द्वारा गान्धीवाद।

'ज्योत्स्ना' मे कवि ने आन्तरिक क्रान्ति के मनोविज्ञान का कुछ आभास हेनरी के मन्तव्य मे दिया है। वह कहता है—"नवीन आदर्शो का जन्म होने एव व्यवहार मे आने से पहले, अथवा लोक-समाज का बाह्य विकास होने के पूर्व ही उसकी मानसिक अवस्था मे एक आन्तरिक परिवर्त्तन पैदा हो जाता है। इसे चाहे आप सूक्ष्म परिवर्त्तन कहिये, चाहे अन्तर्गत, विश्वगत या आध्यात्मिक परिवर्त्तन कहिये। लेकिन मनोजगत या मनस्तत्त्व स्वय ही एक सूक्ष्म आन्तरिक विकास के कारण बदल जाता है।"—'ज्योत्स्ना' के तीसरे अक के वार्त्तालापो मे यही सूक्ष्म परिवर्त्तन दिखलाया गया है, उसमे नवोदित समाज की मनोभूमिका है।

पन्त जी ने क्रान्ति की प्रक्रिया को सकेतो मे छोड कर उसकी परिवर्त्तित स्थिति (शान्ति-काल) का ही प्रशस्त चित्रण किया है। वे भविष्य के मनोजगत के चित्रकार है। 'युगान्त' मे उन्होने कहा है—

मै सृष्टि एक रच रहा नवल
भावी मानव के हित, भीतर,
सौन्दर्य्य, स्नेह, उल्लास मुझे
मिल सका नही जग मे बाहर!

इसी अन्त सृष्टि के लिए कवि 'युगान्त' की कोकिल से भी कहता है—

रच मानव के हित नूतन मन
वाणी, वेश, भाव, नव शोभन।

'ज्योत्स्ना' मे कवि ने मानव के नूतन मन और नव शोभन जीवन की ही रचना की है।

मनुष्य और प्रकृति

'ज्योत्स्ना' छायावाद के प्राकृतिक दर्शन का मानसिक रूपक है। इसकी पात्र-पात्रियो के नाम नैसर्गिक भी है और मानुषिक भी, किन्तु इन सबमे एक ही अनाम और अरूप आत्मा का प्रकाश है, एक ही जीवनी शक्ति का विकास है। विविधता इनके नाम-रूप मे है ('नाम-नाल पर विपुल रूप-दल'), एकता इनकी प्राणिचेतना मे है। अपनी एकता मे मनुष्य और प्रकृति एक-दूसरे के पर्य्याय हो गये हैं। रूप, रस, रग और राग की जो भावना प्रकृति मे है वही मनुष्य मे भी, अतएव 'ज्योत्स्ना' मे प्रकृति ने मानवी भाषा पा ली है, मनुष्य ने प्राकृतिक अभिव्यक्ति। प्रकृति को प्रधानता इसलिए मिली है कि उसी ने मनुष्य को स्वर्गिक सुषमा-गरिमा प्रदान की है।

प्राकृतिक दर्शन के अनुरूप ही 'ज्योत्स्ना' का कथानक नैसर्गिक क्रम से सुसघटित है। सन्ध्या से आरम्भ होकर प्रभात मे उसकी परिणति हुई है, मानो 'ज्योत्स्ना' अपना प्रतिनिधित्व 'स्वर्णकिरण' के युग को दे जाती है।

पन्त जी की अद्यावधि सम्पूर्ण कृतियो का सग्रन्थन 'ज्योत्स्ना' मे है, यह उनका साहित्यिक जकसन है।

अन्य रचनाएँ

'ज्योत्स्ना' का प्रकाशन सन्' ३४ मे हुआ था। इसके बाद पन्त जी ने सन् '३५ मे 'प्रतिमा' और सन्' ४९ मे 'शकुन्तला' की रचना की। ये दोनो नाटक अभी अप्रकाशित है। इन नाटको के अतिरिक्त, उन्होने कुछ एकाकी भी लिखे है—''चौराहा', 'खण्डहर', 'छाया', 'परिणीता', 'लोकपुरुष'। रेडियो पर उनके कुछ सगीत-रूपक अभिनीत हो चुके है—'मेघदूत', 'विद्युत् वसना', 'शुभ्र पुरुष', 'उत्तर शती'। इन सभी छोटे-बडे नाटको मे उनकी काव्य-कला की तरह नाटचकला का भी नवीन विकास हुआ है।

'ज्योत्स्ना' की सृष्टि 'गुञ्जन' के चिन्तन और भाव-मिश्रित वातावरण मे हुई है, अतएव इसमे वस्तु-तत्त्व उतना नही है जितना राग-तत्त्व है। चरित्र-चित्रण अथवा दैनिक घात-प्रतिघात की अपेक्षा इसमे चित्र, दृश्य, गीत, नृत्य, वाद्य और सलाप का समावेश है। 'विज्ञापिका' मे निराला जी लिखते है—"ज्योत्स्ना मे उनका (पन्त जी का) पहला प्रिय, भावमय, श्वेत वाणी का कोमल कवि-रूप ही दृष्टिगोचर होता है, जिसकी सुख-स्पर्श रश्मियो की तीव्र-गति हलकी थपकियाँ युग-जागृति का सर्वोत्तम साधन है।"

दृश्य और गीत

'ज्योत्स्ना' ठीक अर्थ मे दृश्य-काव्य है। इसके दृश्यचित्रो मे पन्त जी की सूक्ष्म दृष्टि और उर्व्वर उद्भावना का मनोहर परिचय मिलता है। 'ज्योत्स्ना' के दृश्यो से कलाकारो को अपनी तूलिका के लिए उपादान मिल सकते है।

केवल दृश्यो के ही नही, अमूर्त्त अनुभूतियो के भी सजीव चित्र है। स्वप्न, कल्पना, पवन, सुरभि और पृथ्वी ने भावना का सदेह व्यक्तित्त्व पा लिया है। इनसे चित्रकला को आइडिया मिल सकता है।

पात्र-पात्रियो के रूप-रग और आकार-प्रकार मे पन्त जी की सौन्दर्य्य-दृष्टि का परिचय मिलता है। दृश्यो की तरह उनके छवि-विन्यास मे भी काव्य का लालित्य है।

'ज्योत्स्ना' के दृश्यो और गीतो से 'पल्लव' और 'गुञ्जन' की प्रकृति-सम्बन्धी कविताओ का भाष्य हो जाता है। पन्त का काव्य ही रूपक बन गया है।

पात्र-पात्रियो के रूप और गति के अनुरूप गीतो की भाषा और लय है। पवन 'सर्-सर् मर्-मर् भन् भन् सन् सन्' के ध्वनि-व्यञ्जन से अपने सूक्ष्म सञ्चरण को स्पन्दित कर रहा है। 'चितवन की परियो-सी सुन्दर'

तितलियाँ 'खोल-खोल पुलको के पर' अपनी सुख-सुषमा को वायव्य जगत मे स्फुरित कर रही है। और, ये है नन्ही-नन्ही तारिकाएँ, नन्ही-नन्ही दूब, नन्हे-नन्हे ओस, हँसते-खेलते कलि-कुसुम, जगमग जगमग जगमगाते जुगनू। प्रकृति की ये सरल-हृदय सन्ततियाँ अपना परिचय गीतो मे स्वय दे रही है। तारिकाएँ गाती है—

कुन्द-धवल, तुहिन-तरल,
तारा-दल, ए—
तारक चल हिम-जल-पल
नील गगन विकसित दल
नीलोत्पल, ए—
हम कुन्द-धवल, तुहिन-तरल
तारा-दल ए—

दूब-बालाएँ कहती है—

लघु लघु धर पग
छा छा अग-जग
तिरती हम अनन्त जीवन-मग!

ओस-बाल गाते है—

छल छल, टल टल,
जीवन के पल
सजल सजल रे मूक-अश्रु-दल!
मधुर मिलन के मोती चञ्चल,
विधुर-विरह से पिघल-पिघल गल,
छल छल, टल टल,
अश्रु-हार रे बन जाते स्मृति मे गुँथ अविरल!

विभिन्न नामो मे ये छोटे-छोटे निसर्ग-शिशु एक ही लघु कलेवर के विविध सस्करण है, आत्मा की तरह ही इनके शरीर भी सूक्ष्म है। 'गुञ्जन' मे वायु के लिए कवि ने कहा है—'प्राण, तुम लघु-लघु गात।'—जान पडता है, पन्त जी को जीवन मे लघिमा ही प्रिय है। 'पल्लव' मे वीचियो का यह उद्गार उनकी ही रुचि को साकार करता है—

अपनी ही लघिमा पर वार
करती हम बहुरूप विहार।

बालक-बालिकाएँ, किशोर-किशोरियाँ ये सब पन्त जी की ही आत्मा की प्रतिकृतियाँ है। वे अपने को नयी पीढी मे उगते हुए देखते है। पन्त जी के लम्बे पैन्ट पर बच्चो जैसा छोटा-सा खुले कालर का कोट उनकी बाल-भावना का द्योतक है।

अभिनय और रङ्गमञ्च

अभिनय की दृष्टि से 'ज्योत्स्ना' के प्रत्येक अक एकाकियो की तरह स्वतन्त्र रूप से भी खेले जा सकते है और सब मिला कर पूरे नाटक के रूप मे भी। प्रथम अक बच्चो के खेलने लायक है, दूसरा अक बालिकाओ के। पाँचवाँ अक बालक-बालिकाएँ एक साथ खेल सकती है।

रङ्ग-मञ्च की सुविधा के लिए पन्त जी ने दृश्यो का विस्तृत विवरण दिया है। एक जगह उन्होने आधुनिक टॉकी का भी निर्देश किया है। 'ज्योत्स्ना' के सम्पूर्ण दृश्यो का फिलम-चित्र बन सकता है। आवश्यकता-नुसार दृश्यो को सक्षिप्त कर के यह रूपक रंग-मञ्च पर भी खेला जा सकता है। इसके दृश्य, गीत और सलाप पाठको की तरह दर्शको को भी सम्मोहित कर देगे। वे बोल उठेगे—"कैसा मधुर-मधुर आकर्षण है!"

दृश्यो की तरह सुदीर्घ सलापो को भी रङ्गमञ्च के लिए सक्षिप्त किया जा सकता है। ऐसे सलाप एकाध अक मे ही मिलेंगे। अधिकाशत सलापो मे सरलता और सक्षिप्तता है।

'ज्योत्स्ना' मे परिहास का भी पुट है। पुराने नाटको में विदूषको का परिहास क्षेपक-जैसा जान पडता था। प्रसाद जी भी अपने नाटको को उससे मुक्त नही रख सके। 'ज्योत्स्ना' मे परिहास यथास्थल स्वत प्रस्फुटित हो उठा है। पवन और छाया, छाया और कोक अपने व्यवहार और वार्त्तालाप से हँसा देते है।

आकर्षण और अनुराग

पन्त जी ने जीवन को सौन्दर्य्य और स्नेह की निर्दोष क्रीडा के रूप मे देखा है। फूलो के गीत मे मानो वे मानव समाज को प्रसन्नता का निमन्त्रण देते है—

हिल हँस ले सग-सग
जीवन चल-जल-तरग!

'परिवर्त्तन' मे जग की अनित्यता के कारण पन्त को निर्मोह हो गया था। अब 'ज्योत्स्ना' मे अरुण से उषा कहती है—"मोह को मिटाना ध्येय नही है, नाथ! अनुरक्ति और मोह को पहचानना ही ध्येय है। जड भी निर्मोही होते है, पर ज्ञान घृणा नही करता।"

'परिवर्त्तन' के बाद 'गुञ्जन', 'ज्योत्स्ना' तथा अन्यान्य उत्तरोतर रचनाओ मे पन्त जी फिर जीवन पर मोहित हो गये हैं। 'युगवाणी' मे उन्होने कहा है—

राशि राशि सौन्दर्य्य, प्रेम,
आनन्द, गुणो का द्वार,

मुझे लुभाता रूप, रग,
रेखा का यह ससार।

'ज्योत्स्ना' मे उषा भी यही कहती है—"इस जीवन के पास कितने रूप-रग, कितने हाव-भाव, कितना सुख और सौन्दर्य्य है? यह रूप-रग रुचि-रेखा का ससार ही मुझे सबसे प्रिय है।"

'ज्योत्स्ना' मे पन्त जी ने अपनी इसी सुरुचि से 'एक अभिनव सौन्दर्य्य-सृष्टि का निर्म्माण कर, मानव-जाति के सामने उसके भविष्य को साकार कर दिया है।'

'गुञ्जन' मे कवि ने 'चिर अव्यय चिर नूतन' से कहा था—

बरसो कुसुमो मे मधु बन,
प्राणो मे अमर प्रणय-धन,
स्मिति-स्वप्न अधर-पलको मे
उर-अगो मे सुख-यौवन!

'ज्योत्स्ना' मे तितली और फूल भी यही शुभकामना करते है--

हो हृदय प्रणय-मधु से मधुमय,
उर-सौरभ से जग सौरभमय!
हो सबके प्रिय स्नेही सहचर,
यह धरा स्वर्ग ही-सी सुखकर!

निशीथ
काशी,
७-१२-५०

पाँच कहानियाँ

इस पुस्तक मे पन्त जी की पाँच कहानियाँ है। ये कहानियाँ कहानी से अधिक शब्द-चित्र है। कथानक मे जब चित्र ही नही, चित्रकार भी बोलने लगता है, तब कहानी शब्द-चित्र की सीमा मे चली जाती है।

इन शब्द-चित्रो की भाषा मे साहित्यिक सरसता और दैनिक जीवन की स्वाभाविकता है। पन्त जी की पुस्तको मे भाषा के कई रूप देखे जा सकते है। विषयानुकूल भाषा लिखने मे पन्त जी सिद्धहस्त है, उनमे सभी प्रकार की अनुभूतियो और अभिव्यक्तियो को ग्रहण करने और व्यक्त करने की क्षमता है। उनकी बोधेन्द्रिय सजग है, चैतन्य है।

कथा-साहित्य की ओर पन्त जी की प्रवृत्ति अपने प्रारम्भिक कवि-जीवन मे ही हो गयी थी। आठवे क्लास मे पढते समय उन्होने 'हार' नामक उपन्यास लिखा था, वह अप्रकाशित है, उसकी पाण्डुलिपि नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) मे सुरक्षित है।

पन्त जी के कथा-साहित्य का कुछ आभास 'ग्रन्थि', 'उच्छ्वास' और 'आँसू' मे मिलता है। कविता की तरह ही इन प्रणय-काव्यो की कथा भी भावात्मक है।

भावात्मक कहानियो के लिए प्रसाद जी प्रसिद्ध है। सामाजिक जीवन से उपराम होने पर 'प्रसाद' ने अपने हृदय को भावात्मक कहानियो मे विश्राम दिया है। यही भाव-विश्राम पन्त जी के प्रणय-काव्यो मे भी है।

प्रसाद जी समाज मे रहते थे, भाव मे विचरते थे। किन्तु पन्त जी का तन-मन दोनो भाव-जगत मे तन्मय था। शैशव के सुखी परिवार और प्रकृति के शोभा-सम्भार ने उन्हे समाज से ऊपर उठाये रखा। परिस्थितियो ने जब पन्त को भी सामाजिक समस्याओ का सदस्य बना दिया तब छायावाद के भाव जगत से उन्हे उपराम हो गया। उनका असन्तोष प्रगतिशील रचनाओ मे व्यक्त हुआ।

'ज्योत्स्ना' के साथ पन्त जी अपने भाव-लोक से पृथ्वी पर पदार्पण करते है, समाज के सम्पर्क मे आते है। 'पल्लव' के 'मौन निमन्त्रण' मे उन्होने कहा था—

> "विहग-कुल की कल-कण्ठ-हिलोर।
> मिला देती भू-नभ के छोर।"

'ज्योत्स्ना' मे पन्त जी ने भी 'भू-नभ के छोर' मिला दिये। किन्तु 'ज्योत्स्ना' मे युग की चाँदनी है, युग का प्रभात नही, वह 'ज्योत्स्ना' है, 'स्वर्णकिरण' या 'स्वर्णधूलि' नही।'

'ज्योत्स्ना' के बाद सन्' ३६ मे पन्त जी की 'पाँच कहानियाँ' प्रकाशित हुई।

'ज्योत्स्ना' मे पृथ्वी का जो वस्तुतल (सामाजिक धरातल) ओझल था, अस्पष्ट था, भावानुरञ्जित था, वह 'पाँच कहानियाँ' मे दिवस के यथार्थ की तरह प्रत्यक्ष एव स्पष्ट हो गया। साथ ही कवि की वह भाव-चेतना भी (जो उसकी सभी कृतियो मे व्याप्त है) 'पाँच कहानियाँ' मे यथार्थ के स्वास्थ्य की तरह प्रतिफलित है।

'प्रसाद' जी अपनी कहानियो मे भाव-जगत को कोई तात्त्विक आधार नही दे सके थे, पन्त ने 'पाँच कहानियाँ' मे भाव को आधार-तत्त्व (समाज-तत्त्व) दे दिया है। प्रसाद की कहानियाँ गीतकाव्य की तरह है, पन्त की 'पाँच कहानियाँ' खण्डकाव्य की तरह। यद्यपि इन कहानियो में बौद्धिक

चिन्तन है तथापि चरित्र-चित्रण और रस-द्रवण मे चिन्तन लवण की तरह घुल-मिल गया है, वह बालू के कणो की तरह कहानियो को किरकिरा नही कर सका। हॉ, कही-कही सैद्धान्तिक विवेचन से कथा भाराक्रान्त हो गयी है। कथानक के सहज प्रवाह मे गत्यवरोध आ गया है।

भाव के साथ चिन्तन का प्रारम्भ 'गुञ्जन' से हुआ। 'परिवर्त्तन' मे भी चिन्तन था किन्तु सामाजिक सम्बल का सर्वथा अभाव न हो जाने के कारण वह चिन्तन पूर्णत भावात्मक था। कालान्तर मे भाव-जगत के निराधार हो जाने पर कवि नवीन सामाजिक सम्बल पाने के लिए बौद्धिक चिन्तन करने लगा। उसका चिन्तन सिद्धान्त और भाव दृष्टान्त बन कर नयी रचनाओ मे समाविष्ट हुआ।

'गुञ्जन' के जीवन-चिन्तन ने 'ज्योत्स्ना' मे भविष्य का चारु चित्रपट पाया था। 'पॉच कहानियाँ' मे उस भावी चित्रपट के प्राणियो का वर्त्तमान सामाजिक सघर्ष है। वे अन्धकार के भीतर से प्रकाश के उदीयमान शिशु है, भविष्य की अग्रिम प्रजा है। पन्त जी जिस विकसित सामाजिक चेतना को सदेह देखना चाहते है उसकी किञ्चित् झलक उन्होने इन कहानियो द्वारा वर्त्तमान वातावरण मे भी दिखला दी है। अतएव यह कहना ठीक है कि 'पाच कहानियाँ' मे "ज्योत्स्ना की विचार-धारा ने अधिक वास्तविक रूप धारण कर लिया है।"

मुख्य केन्द्र · मानववाद

'पल्लव'-काल मे पन्त जी की काव्य-चेतना वैयक्तिक थी। 'गुञ्जन' में उनकी चेतना सामाजिक सामञ्जस्य की ओर बढी—'मानव-जग मे बँट जावें, सुख दुख से औ' दुख सुख से।'—ऐसा जान पडता है कि पन्त जी समाजवाद के स्वर मे बोल रहे है। 'ज्योत्स्ना' और 'पाँच कहानियाँ' मे भी समाजवाद का स्वर-स्पर्श है। किन्तु इन सभी रचनाओ मे छायावाद-युग

के सस्कार विशेष-रूप से है। पन्त जी की सामाजिक रचनाओ का मुख्य केन्द्र मानववाद है। उनके मानववाद मे 'जीवो के प्रति आत्मबोध ही मनुष्यत्त्व की परिणति' है। धरती इन्ही 'जीवो की धात्री ' है।

सवेदनशीलता मे ही पन्त की 'मानवता' है—'प्रथम जीव है मानव मे, पीछे सामाजिक जन।' पन्त जी सृष्टि की एकप्राणता के प्रतिष्ठाता है। प्राण के लिए शरीर की तरह, उनके मानववाद के लिए समाजवाद (अथवा कोई भी प्रगतिशील वाद) एक आयतन या माध्यम मात्र है।

'ज्योत्स्ना' की अपेक्षा 'पॉच कहानियॉ' मे पन्त जी का सामाजिक दृष्टिकोण अधिक व्यावहारिक अथवा क्रियात्मक है, यद्यपि उस समय तक समाजवाद का वह स्वरूप उनके सामने स्पष्ट नही हो सका था जिसे बाद मे उन्होने ऐतिहासिक भौतिकवाद के रूप मे अगीकार किया। इन कहानियो मे यत्र-तत्र पन्त जी ने फ्रायडियन मनोविज्ञान और ऐति-हासिक साम्यवाद के प्रति व्यग्य किया है । किन्तु छायावाद-युग के हार्दिक सस्कारो मे से गुजरते हुए वे इन्ही आधुनिक विचारो की ओर बढ रहे थे। 'पॉच कहानियाँ' पन्त की प्रगतिशील रचनाओ की पूर्व-भूमिका है। 'ग्राम्या' के पहिले ही 'पॉच कहानियॉ' द्वारा पन्त ने लोकजीवन मे प्रवेश किया। 'ग्राम्या' की जनता ग्रामीण है, 'पाँच कहानियॉ' की जनता नागरिक। दोनो क्षेत्रो के जनजीवन के चित्रण मे पन्त जी की अनुभूति-शीलता का परिचय मिलता है। कवि-हृदय की सरसता ओर लोक-हृदय की स्वाभाविकता के सम्मिश्रण से ये कहानियॉ प्रेमचन्द जी की सरलता और सादगी को नवीनता प्रदान करती है।

पानवाला

'पाँच क़हानियाँ' मे समाज और व्यक्ति की विविध परिस्थितियो तथा विविध समस्याओ का विश्लेषण और सश्लेषण है।

पहिली कहानी 'पानवाला' मे पीताम्बर निम्नवर्ग का पात्र है, वह समाज के सम्पन्न वर्ग की तलछट है। "सृष्टिकर्त्ता ने उसे निम्र्माण करने मे किसी प्रकार का सकोच या सकीर्णता न दिखाई थी"—किन्तु, "दुख, दैन्य और दुर्भाग्य के जीवन-प्रवाह के तट पर ठूँठ की तरह खडा, उसके तीक्ष्ण कटु आघातो से लडता हुआ पीताम्बर उस अभाव-वाचक स्थिति पर पहुँच गया है जहाँ उस पर आशा, तृष्णा, लोभ, जीवनेच्छा, सौन्दर्य्य, स्पर्द्धा, मोह, ममता, उम्र आदि भाववाचक विभूतियो के अत्याचार उत्पात का कोई प्रभाव नही पड सकता।

उसका समस्त विश्वास भाव के विश्व से उठ गया।"

समाज की कृत्रिम परिस्थितियो ने पीताम्बर को निराशावादी, भाग्यवादी, दुखवादी, विरक्त, उदास, द्रोही, द्वेषी और निन्दक बना दिया। आत्मविकास का अवसर न मिलने के कारण वह अपने ही भीतर अवरुद्ध हो गया और जीवन की समग्रता से कट कर पेड की डाली से विच्छिन्न पुष्प की तरह मुरझाने और सूखने लगा। उसका मनोवल समाप्त हो गया—"समाज की दुर्बलता को वह अपनी दुर्बलता, उसके दोषो को अपने ही दोष समझने लगा। वह अपनी ही आँखो मे गिर गया।"

पीताम्बर के लिए भविष्य-सी किसी वस्तु का अस्तित्त्व नही रह गया। वह 'भूत, भविष्य और वर्त्तमान से अतीत' हो गया, 'सावन सूखा न भादो हरा।' कहानी-लेखक व्यग्य करता है—"अर्थ-शास्त्र के नियमो के लिए तो उसकी दूकान अपवाद थी ही पर क्या प्रकृति के नियमो ने भी उस के लिए बदलना छोड दिया है?"

पन्त की कविताओ मे छायावाद के प्राकृतिक दर्शन का स्थान ऐतिहासिक दर्शन ने क्यो ले लिया, यह ऊपर की पक्तियो से स्पष्ट है। 'युगवाणी' मे कवि ने कहा है—

भव अभाव से जर्ज्जर
प्रकृति उसे देगी सुख ?
('बदली का प्रभात')

पीताम्बर की कभी की सुन्दर मुखाकृति भी 'अभाव से जर्ज्जर' होकर कैसी जीर्ण-शीर्ण कण्टकाकीर्ण हो गई! देखिये—"इसकी आँखे धँसी हुई, लाल छडो से भरी, छिलका निकाल देने पर पिचकी हुई लीची की तरह गदली, करुणा-क्षोभ-प्रतिहिंसा बरसा रही है। उनके कोनो मे कौओ के पजे बन गये है। गालो की गोल रेखाओ को ससार ने नीबू की तरह चूस कर टेढा-मेढा कर दिया। दुख से काटे हुए रात-दिन के शेष-चिह्नो की तरह बेमेल स्याह, सुफेद, घनी दाढी-मछो ने —जिन्हे हफ्ते मे एक बार भी बनाने की नौबत नही आती—उस सोलह साल के फूल को सुखा कर काँटो की झाडी से घेर लिया है।"—इन पक्तियो मे पन्त जी की चित्र-सजीव भाषा बोल रही है।

'युगवाणी' मे इसी सुषमा-शून्य मानव के प्रति सहानुभूति पूर्ण होकर कवि ने कहा है—

आज असुन्दर लगते सुन्दर
प्रिय पीडित शोषित जन,
जीवन के दैन्यो से जर्ज्जर
मानव-मुख हरता मन
('मूल्याकन')

कहानी का लेखक प्रश्न करता है—"क्या वह निर्धन युवक किसी भाग्य-दोष से या अपने दोष से निरकुश, उच्छृखल अथवा आत्माभिमानी था ? क्या गरीब के लडके मे ऐसे गुण शोभा नही देते ? नही, नही, वह सुन्दर, स्वस्थ, सशक्त, सचेष्ट, आत्मसम्मान से पूर्ण युवक गरीब का लडका

कैसे हो सकता है? जब प्रकृति ने अपने सब विभवों से सँवार कर उसे धनी-मानी बनाया था!"

पीताम्बर का जीवन चारो ओर के वातावरण पर दृष्टिपात करने के लिए एक शीर्ष-बिन्दु है। लेखक का दृष्टिकोण वर्गो और व्यक्तियो मे सकुचित नही, वह बुनियादी दृष्टि से उस सामाजिक व्यवस्था का खोखलापन दिखलाता है जिसने सभी को पीताम्बर की तरह निर्जीव बना दिया है। कहानी का निष्कर्ष यह है कि, "अपने देश मे वह सामूहिक आधार है ही नहीं जिसकी विशद भूमि पर व्यक्ति निर्भीक रूप से खडा होकर आगे बढ सके। हम सब अनाथ, यतीम है, हमारा देश एक विशाल सभ्यता का भग्नावशेष है। हमारे यहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक व्यक्ति-मात्र मासपिण्ड-मात्र है—वह कुलीन हो, अकुलीन, धनी हो या निर्धन। वह समाज नही है, वह देश नही है, उसके पीछे इन सब का सम्मिलित बल काम नही करता। वह निराधार है, वह क्षुद्र है।

फलत, इस विशाल पृथ्वी पर जटिल जीवन-सग्राम की कठिनाइयो का सामना हममे से प्रत्येक को केवल अपने बल पर करना पडता है। अर्थात्, प्रत्येक तिनके को बाढ का सामना पृथक्-पृथक् रूप से करना पडता है।"

कहानी के इस तथ्य मे किसी एक देश का नही, सारे ससार का यथार्थ है। दूसरे महायुद्ध के बाद सभी देश अपनी व्यक्तिगत क्षुद्रता का दुष्परिणाम भोग रहे है, अपने को 'सर्वस्व' (समूह) का अग न बना पाने के कारण सब का जीवन 'शून्यवत्' हो गया है। सच तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति पीताम्बर की तरह 'केवल जीवित रहने के अभ्यास से जीता है।'

'सामूहिक आधार' पर जब 'समाज' का निर्म्माण होगा तभी जीवन्मृत मनुष्य फिर जी उठेगा। भावी युग मनुष्य का सौभाग्यपूर्ण युग है। उसी युग के नवनिर्म्मित समाज में पहुँच कर कवि ने कहा है—

रिक्त पूर्ण हो, शून्य सब,
जीवन से आज गया भर,

चिर अभाव बन गये भाव
हो लोक-प्रेम सपोषित।
('युगवाणी')

'पानवाला' (पीताम्बर) रेखाचित्रो के साहित्य मे उच्चकोटि का शब्द-चित्र है। इसमे व्यक्ति का सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक अध्ययन और समाज का परिपूर्ण दर्शन है।

उस बार

दूसरी कहानी 'उस बार' मे आधुनिक शिक्षा प्राप्त कुछ अविवाहित नवयुवको के माध्यम से प्रेम का मनस्तत्त्व दिखलाया गया है। "प्रेम तत्त्वत एक होते हुए भी भिन्न स्वभावो मे भिन्न रूप से काम करता है।" —इसी के उदाहरण है सुबोध, सतीश, गिरीन्द्र, नलिन। ये सब सम्पन्न वर्ग के पात्र है।

गिरीन्द्र और नलिन भावुक की अपेक्षा व्यावहारिक युवक है। शिक्षा की तरह प्रेम भी उनके लिए भावी जीवन-यात्रा का एक साधन मात्र है, साध्य नही। गिरीन्द्र की अपेक्षा नलिन के स्वभाव मे सरसता है, वह बाहर से रसिक किन्तु भीतर से गम्भीर है, आत्मगोपन मे पटु है। उसका व्यक्तित्त्व दुहरा है। प्रेम-चर्चा मे सब का साथ देने के लिए वह अपने प्रेम के झूठे किस्से गढ कर मित्रो का मनोरञ्जन करता है, किन्तु अपनी प्रेमिका को हृदय के एकान्त मे छिपाये रखता है। भावुक न होते हुए भी, आत्ममर्य्यादा के कारण, उसके अन्त करण मे कला का आभिजात्य (सुरुचि) है। इसीलिए अपनी प्रेमिका को सब के सामने प्रकाशित कर

देना ('सामान्य प्रतिदिन के प्रकाश मे खोल देना') नलिन को पसन्द नहीं है। वह बाहर चरित्र-हीनता का अभिनय इसलिए करता है कि, "हमारे युवको मे प्रचलित आधुनिक छैलापन को कुण्ठित नही करना चाहता था क्योकि हमारा बेकार ज्ञानसन्दिग्ध युवक-समाज शिष्ट और शालीन कहे जाने मे झेपता है।"—कैसा मार्म्मिक व्यग्य है!

सतीश और सुबोध, सरल-स्वभाव के तरल-हृदय युवक है। किन्तु गिरीन्द्र और नलिन की तरह इन दोनो के व्यक्तित्त्व मे भी कुछ अन्तर है। सतीश के प्रेम मे समुद्र के उन्मत्त ज्वार का उद्वेलन है, सुबोध के प्रेम में अन्तस्तल का शान्त नीरव स्पन्दन। लेखक के शब्दो मे, "सतीश के प्रेम का प्रवाह शरीर से हृदय की ओर, सुबोध का हृदय से शरीर की ओर था। एक फ्रायड के सिद्धान्तो का नमूना था, दूसरा प्लैटो के। यह नही कि एक प्रेमी था दूसरा कामी मात्र—दोनो मे आदर्श-भेद था।"

सतीश प्रेम का रगरूट जान पडता है। वह नलिन की तरह आत्मगोपन करना नही जानता, उसका व्यक्तित्त्व इकहरा है, वह निष्कपट हृदय से अपने उद्गारो को व्यक्त कर देता है। नलिन अपनी प्रेमिका को हृदय मे सम्पुटित रखता है, किन्तु सतीश सब के सामने अपने प्रेम को उद्घाटित ही नही करता, बल्कि निराश क्षणो मे अपनी प्रेमिका के लिए कटु भी हो जाता है। अपने इस सीधे स्वभाव के कारण वह मित्रो के मनोरञ्जन का पात्र बन गया है। सन्तुलित व्यक्तित्त्व के लिए जिस आत्मनियन्त्रण और लोक-नैपुण्य की आवश्यकता है, सतीश मे उसका अभाव है, "वह दूसरो के सौजन्य के स्वाग के वशीभूत हो अपनी सीमा गँवा बैठता है, दूसरे की सीमाओ पर उसे अधिकार न मिलता था।"

सुबोध अपनी और दूसरे की सीमाओ को पहिचानता है, इसीलिए आत्मचेतना को खो नही बैठता और दूसरो को अपने ऊपर हावी नही होने देता, साथ ही अपने सहिष्णु स्वभाव से सब को प्रसन्न रखता है। उसका

व्यक्तित्त्व भी नलिन की तरह दुहरा है, अन्तर्गत और बहिर्गत। कहानी-लेखक का कहना है कि, "सहज विश्वास का जीवन मानव-समाज के पूर्ण विकास की ही स्थिति पर सम्भव हो सकता है। तब तक जन-समूह आत्म-पर की सीमाओ को रखने के लिए विवश है। हम सबको दुहरा होकर रहना पडता है।"

नलिन और सुबोध के दुहरे व्यक्तित्त्व मे यह अन्तर है कि नलिन स्वय तो दूसरो के साथ खिलवाड करता है, किन्तु अपने हृदय के साथ किसी को खिलवाड नही करने देता। सुबोध न तो किसी से खिलवाड करता है और न किसी को अपने साथ खिलवाड करने देता है। उसका दुहरापन आत्मरक्षा का कवच है, वह अन्तर्लीन साधक है, कलाकार है।

कथानक सतीश और सुबोध के प्रेम को लेकर चला है।

सतीश विजया से प्रेम करता है। सतीश मे जितनी ही चञ्चलता है, विजया में उतनी ही आत्मस्थता—"वह स्थिर-चित्त, प्रेम की अधिक गम्भीर परिभाषा मे विश्वास रखनेवाली, प्रेम को एक सुव्यवस्थित, सम्मानित गार्हस्थ्य का भाग, सर्वोज्ज्वल भाग मानने वाली शिक्षित लडकी थी।"—ऐसी विजया को सतीश विजित नही कर सका, अपने रोमान्स का खिलौना नही बना सका।—"अन्य युवतियो ने उसकी तरुण-लालसा का सोत्कण्ठ आवाहन कर जिस प्रकार उसके मन मे सौन्दर्य्य की पवित्रता एव कौमार्य्य की दिव्यता के प्रति एक सस्ता, वयस-सुलभ, प्राणिशास्त्र के भीतर से ऑका जानेवाला मूल्य निश्चित कर दिया था, विजया ने ठीक उसके विपरीत अपने सौन्दर्य्य और कौमार्य्य को जीव-शास्त्र एव मनोविज्ञान से ऊपर उठा कर सतीश की पूर्व धारणाओ को अस्त-व्यस्त कर दिया था।"

विजया का हृदय-साम्य सुबोध से हो सकता था, किन्तु वह है 'प्रकृति का कुँआरा', विजया है स्वभाव से गृहिणी।

सुबोध की प्रेमिका सरला है—'वह कैसी स्वतन्त्र, क्रियात्मक, चञ्चल, प्रगतिशील है!'—क्या उसके स्वभाव का साम्य सतीश से हो सकता है? सतीश मे नागरिक उन्मुक्तता है, सरला मे वन्य सरलता। सुबोध उसे एक कला-सृष्टि की तरह प्यार करता है।

सरला की दृष्टि सौन्दर्य्य-प्रवण है—"किसमे कहाँ सौन्दर्य्य छिपा है, इसे उसकी आँखे सब से पहले ढूँढ निकालती थी।"—इसी सुरुचिपूर्ण दृष्टि से सरला ने सुबोध का सुन्दर हृदय देख लिया था। वय मे पर्य्याप्त अन्तर होते हुए भी दोनो की प्रकृति मे कला का कौमार्य्य है—उनमे प्रणय नही, सख्य भाव है।

सुबोध और सरला प्रेम की विशद भावना के प्रतीक है

"सुबोध जीवन की प्रत्येक विकासोन्मुख अवस्था का, उसके समस्त स्वरूपो का प्रेमी है। सब से उसकी सहानुभूति है। जिस वस्तु पर उसका प्रेम पडता वह स्वय प्रेम मे परिणत हो जाती ।"—इसी प्रेम के प्रभाव से सरला सुबोध की प्रेमिका हो गयी।

"सरला सबको प्यार करना, सबसे प्यार पाना चाहती थी। वह एक विशद सामाजिक, सामूहिक व्यक्तित्त्व का उपभोग करना चाहती थी, जिसके लिए उसका चारो ओर से घिरा हुआ समाज अभी तैयार न था।"—ऐसी स्थिति मे उसे सुबोध का प्रेमल व्यक्तित्त्व ही प्रशस्त जान पडा, वह उसी मे केन्द्रस्थ हो गई।

सरला सुबोध से अलग होने की, वृन्त-च्युत होने की कल्पना भी नही कर सकती, वह उसके लिए मर-मिटना चाहती है। किन्तु सुबोध है इस अभावग्रस्त युग का कलाकार, सरला है सुसम्पन्न पिता की दुलारी दुहिता। यद्यपि सरला और सुबोध का प्रेम सासारिक अभाव-भराव से परे है, तथापि आर्थिक युग की वास्तविकता से आँख नही चुराया जा सकता। यदि सरला के पिता सहमत होते तो क्या सुबोध उसका पाणिग्रहण कर

लेता ? सुबोध वास्तविकता का सामना करने मे असमर्थ है। वह पीताम्बर की तरह ही निरवलम्ब है। लेखक ने उसकी असमर्थता को आत्मत्याग का आवरण दे दिया है, सामाजिक समस्या को दार्शनिक बना दिया है।

बीच मे काव्यात्मक होते हुए भी इस रेखा-चित्र मे कहानी का रग है। अन्त बडे सुन्दर ढग से सतीश और नलिन के सक्षिप्त पत्रो से किया गया है। सतीश अब भी रोमान्स मे भटक रहा है, नलिन गृहस्थ होने जा रहा है।

दम्पति

तीसरी कहानी 'दम्पति' मे लेखक ने प्रेम को गार्हस्थ्य का गौरव प्रदान किया है। कथा बहुत साधारण परिवार की है, इसमे रोमैन्टिक रोमान्स नही है। पुराने अग्रेजी मिडिल पास, शहर के डाकखाने मे एक क्लर्क, पार्वती के पति हैं। और पार्वती ? 'गाँव की अशिक्षित साँवली पत्नी' है। लेखक मानो आधुनिक कहानी-रसिको को लक्ष्य कर कहता है—'कला के लिए उनकी कहानी मे स्थान भी है ?'

भाव नही, वैभव नही, रूप नही, फिर भी इस दम्पति में कला की सबसे बडी विशेषता आत्मनिगूढता है। इनका प्रेम 'धडकन' की तरह भीतर छिपा हुआ है। वह अनजाने अपनी स्वाभाविक गति से ससरण कर रहा है।

शरीर मे ओझल होते हुए भी इस दम्पति का प्रेम अतीन्द्रिय नही है, अलौकिक नही है, वह पूर्णत ऐहिक है—"वे दोनो माँस के टुकडे या पिण्ड थे। आत्मा और मन भी माँस बन कर मूक, जड, विचार-बुद्धि-शून्य बन गये थे, या उनसे ऊपर उठ गये थे ? वे शायद चेतना भी खो बैठे थे—हम है इसका ज्ञान भी। केवल दो माँस-लोथ परस्पर घुल-मिल कर अपने को भूल गये थे, घुलने-मिलने का सस्कार बन गये थे। एक-दूसरे को अति-अधिक पहिचानते थे, स्वय खो गये थे।"

इस दम्पति के प्रेम मे कोई असाधारण व्यापार नही है—"उनकी आपस मे बिलकुल सामान्य बाते हुआ करती थी। न उनमे कला रहती, न सस्कृति, और न भाव-व्यञ्जना। उनकी बाते वस्तुएँ होती, यही आटा-दाल, घर-बरतन, तरकारी इत्यादि। उनकी बाते कार्य्य होती—आँखो का मिलना, झपना, हाथो का उठना-गिरना, परस्पर सेवा इत्यादि। फिर भी न जाने कैसे इन्ही जड चेष्टाओ द्वारा उनके भीतर रस छलकता रहता था, गुप्त रूप से! क्या लिखूँ? कुछ भी तो प्रकट नही है—सब कुछ एकदम छिपा हुआ, साधारण, सुन्दरता-हीन गद्य था, उसे उन्होने इतना अधिक अपना लिया था या भुला दिया था कि वह उनका सर्वस्व बन कर, कुछ न बन कर, पद्य हो गया था, उनकी लय मे मिल गया था। ओह, कितना सामान्य, सस्ता, प्रतिदिन का, सबका, कामकाज-मात्र का उनका वह कवित्त्व होता था!"

इस दम्पति का जीवन-चित्र जल-बिम्ब (वाटर-मार्क) की तरह एकदम सादा है—रग नही, रेखा नही, फिर भी इनके जीवन मे जो कवित्त्व है उसकी उपमा वर्ड्सवर्थ की कविता से दी जा सकती है।

ऐसा जान पडता है कि छायावाद की नि शरीर कल्पना से उपराम हो जाने पर पन्त के मन मे जो पार्थिव प्रतिक्रिया हुई वह लोकचित्रो मे जीवन की सहज शान्ति पा गयी। आकाश का पछी वन की डालो पर आ कर जैसे पृथ्वी से तदात्म हो जाता है वैसे ही पन्त जी लौकिक प्राणियो से एकात्म हो गये है। 'पानवाला' की तरह 'दम्पति' भी उनका सफल शब्द-चित्र है। इसकी भाषा, इसकी शैली, इसकी अनुभूति मे सरल मन की स्वाभाविकता है। कथानक विचारो से बोझिल नही, उसमे कहानी का प्रवाह है।

'पानवाला' मे अर्थ और काम (रोटी और सेक्स) की समस्या है, 'दम्पति' में कोई समस्या नही है, इसमे शुद्ध सामाजिक मानवो की कथा है। उनके जीवन के स्वारस्य में लेखक इतना घुल-मिल गया है कि उसे

नारी-अधिकार, आर्थिक आन्दोलन, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की ओर ध्यान देने का अवकाश नही है, आवश्यकता भी नही है, जीवन के स्वस्थ वातावरण मे ये सब अस्वाभाविक और विषाक्त जान पडते है।

कहानी-लेखक ने जीवन की वास्तविकता की उपेक्षा नही की है। इस दम्पति के जीवन मे सुख ही सुख नही, रोग-शोक और दुख-दारिद्रय भी है। किन्तु कष्टो के प्रति पार्वती मे 'पुरुषार्थी विरक्ति' है। अपने पुरुषार्थ से उसने मरणासन्न पति को मृत्यु के मुख से लौटा लिया—"पढे-लिखो का कहना है कि अपने समाज मे स्त्री की परवशता ही पार्वती के इस भगीरथ प्रयत्न का कारण है। पर पढे-लिखे लोग सन्दिग्ध जो रहते है?"

बुढापे मे पार्वती के पति हतबुद्धि और अर्थ-लुब्ध हो गये किन्तु पार्वती अब भी वही प्रकृतिस्थ नारी है। पति से वह परिहास मे कहती है—"लीजिये हाथ-मुँह धो लीजिये। ब्राह्मण का चोला ठहरा। कहा है, धन की शुद्धि दान से, देह की शुद्धि स्नान से।"

स्वामी ने जैसे सोते से जग कर पूछा—"क्या कहा? धन की शुद्धि स्नान ?"

यही इस कहानी का सुखद अन्त है। पन्त जी की ये सभी कहानियाँ एक-एक विचार-चित्र लेकर चली है, किन्तु प्राय सब का अन्त इसी तरह चरित्र के रसोद्रेक से हुआ है।

बन्नू

चौथी कहानी 'बन्नू' मे जीवन के प्राकृतिक दर्शन का सामाजिक निदर्शन है। आधुनिक कवि के 'पर्य्यालोचन' मे पन्त जी ने कहा है—"प्राकृतिक अनुराग की भावना, क्रमश, सौन्दर्य्य-प्रधान से भाव-प्रधान और भाव-प्रधान से ज्ञान-प्रधान होती जाती है।" किन्तु छायावाद-युग की इस

कहानी मे प्राकृतिक दर्शन का क्रम यो है—ज्ञान-प्रधान से भाव-प्रधान, भाव-प्रधान से सौन्दर्य्य-प्रधान। इसी क्रम से इस कहानी का कथानक चलता है—

दूर तक फैला सघन वन (कान्तार), उसमे प्रतिष्ठित एकलिंग शिव का मन्दिर, ज्ञानवृद्ध-तपोनिष्ठ एकलिंग स्वामी मन्दिर के पुजारी, उनका उत्तराधिकारी शिष्य विनोदानन्द, यही है कहानी के केन्द्रस्थल। प्रकृति के प्रागण मे प्रकृति से विमुख और अग-जग से अनासक्त गुरु-शिष्य के उस निर्जन वनवास मे जब एक दिन सन्तप्त हृदय विधुर गृहस्थ दीनानाथ आकर शरणागत हुआ तब वहाँ के शून्य वातावरण मे जीवन का नवीन अध्याय जुड गया।

पत्नी का वियोग-दुख कम हो जाने पर दीनानाथ को जान पडने लगा—"मिलन-विछोह, मोह-ममता, सुख-दुख के ससार से कट कर, विरक्त और तटस्थ हो कालयापन करने से उसके भीतर शान्ति के बदले सूनापन आ रहा है। वास्तविक अभाव की पूर्त्ति न कर काल्पनिक भाव मे रहना उसने पसन्द नही किया। उसे मालूम पडने लगा कि अनेक प्रकार के धार्मिक, नैतिक सत्य, आचार-व्यवहार के नियम-बन्धन, जिनकी चर्चा उसे अब नित्य सुनने को मिलती थी, उसी मोह-ममत्व के ससार को स्थित एव सुव्यवस्थित रखने के लिए बनाये गये है, वे जैसे अन्तस्तल को भूमि मे दिये हुए कन्द-मूल मात्र हैं। बाहर का क्रियाशील, सुख-दुख की शाखा-प्रशाखाओ से पूर्ण जीवन ही उनका वास्तविक स्वरूप है।"

वह निष्क्रिय ज्ञान से सक्रिय निर्म्माण की ओर उन्मुख हो गया। उसका पारिवारिक पुरुषार्थ अपने माया-ममता-मोह को प्रकृति मे रोपने लगा—"उसने धीरे धीरे कान्तार का एक बडा-सा भाग साफ कर डाला और उसमे बारी-बारी से आम, सन्तरा, नीबू, लीची, अमरूद, कटहल, केले आदि के पेड लगाना शुरू कर दिया। बाग के बीच मे उसने अपने

लिए एक छोटी-सी झोपडी भी बना ली, जिसके सामने गेंदा, चमेली, बेला आदि के पौधे और आस-पास मौलसिरी, हर्रसिंगार, कचनार आदि के वृक्ष लगा दिये।"—प्रकृति मे मानव-हृदय की यही अभिव्यक्ति छायावाद मे भी है। इन पक्तियो मे छायावाद का वस्तुतल है, आधारभूत धरातल है।

दीनानाथ प्रकृति मे रम कर, सूनेपन को भुला कर, जब अपने मनोलोक मे विचर रहा था, तब उसी समय उसकी निराधार विधवा भावज दुध-मुँही बालिका को गोद मे लिये हुए अचानक आ उपस्थित हुई। विगत गृह-जीवन की स्मृतियो के इन शेष सजीव चिह्नो को पाकर दीनानाथ के लिए जगल ही मगल हो उठा। दूज के चाँद की ओर देख कर उसने बालिका का नाम रख दिया—'कला'। वह भी दीनानाथ के उपवन का एक प्राकृतिक अग बन कर फूल-पौधो के साथ-साथ खेलने-खिलने लगी।

कला प्रकृति की परिष्कृति है, विनोदानन्द प्रकृति की प्रतिकृति। उसका सक्षिप्त नाम है बन्नू। वीतराग गुरु के सान्निध्य मे वह विद्या-वयस्क हो गया था, किन्तु अभी जीवन से अपरिचित था। उसके जीवन मे विनोद का नाम भी नही। वह विनोद का नही, वन का बन्नू है—"समस्त वन की विषण्ण निर्विकार क्रिया-शून्य स्वच्छन्द आत्मा—उसका स्वप्नपूर्ण, सशक रहस्यमय छायालोक—उसके निर्भीक, बलिष्ठ, विविध रूप के वृक्षो का मौन साहचर्य्य—उस विशाल, भयावह, जनहीन एकान्त का गम्भीर, अभेद्य वैचित्र्य किसी प्रवल झझा के झोको से शब्दायमान होकर जैसे उस बन्नू शब्द मे सजीव एव साकार हो गया था।"

वसन्त के एक अपरान्ह मे बन्नू नीम के पेड की छाया मे कुहुनी, हथेली और सिर का तिकोन बनाये, लेटे-लेटे, "किसी अज्ञात स्वप्न-लोक मे विचर रहा था। कान्तार का नवीन जीवन-सौन्दर्य्य उसके भीतर प्रवेश कर अन्तस्तल मे अनेक अस्पष्ट, आकुल, अपूर्व भावनाओ की सृष्टि कर रहा था। उनमे न रूप था, न अर्थ, केवल अनुभूति थी, सवेदना

थी। उस मधुर अशान्ति का रहस्य उसकी समझ मे कुछ भी न आता था, वह चुपचाप जैसे उसी मे आविष्ट हो गया था।"

ऐसे ही आत्मविस्मृत क्षणो मे जब वह निश्चल पडा हुआ था तब एक जहरीला काला साँप उसकी तरफ बढा चला जा रहा था। माँ के साथ पूजा के लिए आयी हुई कला वन को शोभा देखने के लिए मन्दिर से बाहर निकल आयी थी। वह यह दुर्दान्त दृश्य देख कर चोख पडी। बन्नू का ध्यान भग हुआ। किन्तु वह विचलित नही हुआ, बाँये हाथ के बल उठ कर निर्भय बैठा रहा, साँप चुपके से उसके पास से होकर निकल गया।

बन्नू की विजयिनी दृष्टि जब कला के विस्मय-विमुग्ध मुखमण्डल पर पडी तो वह "उस चित्रस्थ सौन्दर्य्य की प्रतिमा को देखता ही रह गया।" उसे ऐसा मालूम होने लगा कि, "वसन्त के समस्त सौन्दर्य्य का, मलयानिल के कोमल स्पर्शो का, कोकिल की व्याकुल वाणी का, नवीन पल्लवो के विविध रगो का, उसकी अस्पष्ट भावनाओ और मधुर अशान्ति का जैसे यही तात्पर्य्य, यही सन्देश और यही सार है। उस तरुगो के दर्पग मे जैसे उसे अपना अदृष्ट अन्तर-जगत स्पष्ट-रूप से प्रतिबिम्बित दिखाई दिया। भाव रूप का आश्रय ग्रहण कर चरितार्थ हो गया, अर्थ शब्द के मिल जाने से अभिव्यक्त हो उठा।"

यहाँ पर कहानी-लेखक ने प्राकृतिक दर्शन को जोवन्त कर दिया है। वह कहता है—"आत्मा अपने को रूप के लिए फिर-फिर बलिदान कर रही है। आत्मा की मुक्ति जैसे माँस के सुन्दर कोमल बन्धनो मे बँध कर चरितार्थ होती रहती है।"—प्राकृतिक दर्शन का यही मधुर निष्कर्ष कवि ने प्रगतिवाद (ऐतिहासिक दर्शन) के भीतर भी स्थापित किया है। 'युगवाणी' के 'रूप-पूजन' और 'जीवन-मास' मे जीवन का जो सगुण सन्देश है उसी का कथा-भाष्य इस कहानी मे मिल जाता है।

प्राकृतिक वातावरण के अनुरूप ही किन्ही स्वाभाविक घटनाओ,

दृश्यो और वन्यजीवो के माध्यम से यह कहानी सुसघटित है। यत्र-तत्र पन्त जी की चित्रमयी भाषा ने कहानी मे प्राण डाल दिया है। प्रेम-वार्त्ता बिलकुल नही है, केवल नीरव निवेदन और मूक समर्पण है। प्रेम का हृदय वाचाल नही है।

कला के कोमल अन्त करण मे उस दिन की सर्पवाली घटना ने बन्नू के निर्भय व्यक्तित्त्व की छाप छोड दी थी। इसके बाद कई बार बन्नू से साक्षात् हुआ, आकर्षण बढा, किन्तु वह उसकी 'गुप्त मोहिनी विद्या का मर्म्म' नही जान सकी। अज्ञाता को पुरुष के तेजस्वी तारुण्य ने प्रभावित कर दिया था।

और पुरुष ?—वह तरुण-पुरुष बन्नू ? वह भी उस वन-बाला की सम्मोहिनी से मुक्त कैसे रह सकता था !—भाव ने शून्य पर, कला ने प्राकृत पर विजय पा ली थी।

कला के एकान्त का साथी है उसका प्यारा हिरनोटा 'कानू'। कितना सार्थक नाम है ! प्रणय का वह नटखट राजदूत उभय हृदय का मौन सन्देश-वाहक बन गया।

बन की सुरभित साँस की तरह जब उन दोनो का मर्म्मोच्छ्वास छिप नही सका तब दीनानाथ ने एकलिंग स्वामी से परामर्श किया। परिणाम-स्वरूप, एकलिंग के पुजारियो के आजन्म अविवाहित जीवन व्यतीत करने की प्रथा बदल गयी—"शिव को घर की पार्वती मिल गयी।"

विवाह के बाद वर-वधू को आशीर्वाद देते हुए दीनानाथ ने कहा—"एक दिन यह सारा वन हरे-भरे, लहलहे फल-फूलो से लदे हुए बाग मे बदल जाय, मनुष्य के बाहुओ का श्रम और प्रकृति की शक्तियाँ वर-वधू की तरह मिल कर ससार के पारिवारिक सुख और शान्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे, यही मेरीए कान्त-कामना है।"

एकलिंग स्वामी ने प्रसन्न होकर कहा—'तथास्तु।'

इस कहानी के आधार पर 'वन-महोत्सव' के लिए एक मनोहर चित्रपट प्रस्तुत किया जा सकता है।

अवगुण्ठन

पाँचवी कहानी 'अवगुण्ठन' मे पर्दा-प्रथा के विरोध का पर्दाफाश किया गया है। नवशिक्षित रामकुमार अपनी सद्य परिणीता पत्नी सरला को अन्त पुर की अवगुण्ठनवती वधू के रूप मे नही बाहर की बैठक की सहेली के रूप मे देखना चाहता है। यहाँ उसका परिचय रामकुमार के परम मित्र सतीश से हो जाता है। वह कालेज का विद्यार्थी और ऐतिहासिक साम्यिवाद का समर्थक है, अनगढ और अल्हड युवक है। उसके स्वभाव मे उन्मुक्तता और हृदय की सरलता है। सरला को सतीश का स्वभाव भला लगता है।

सरला के जन्म-दिवस पर सतीश गुलाब का एक बडा-सा लाल फूल भेंट देने के लिए ले आया था। उस दिन सरला ने गहरे लाल रेशम की साडी पहने हुए जब कमरे मे प्रवेश किया तब सतीश क्षण भर के लिए 'उस नवीन सौन्दर्य्य के आलोक से जैसे अभिभूत हो गया।' सतीश ने अपने सौन्दर्य्य-वोध से प्रेरित होकर, 'सरला के सिर पर से साडी को सरका कर काले-काले बालो के सघन अँधियाले मे उषालोक की तरह उस लाल फूल को उसकी चोटी में खोस दिया। परिहास के ढग से भाभी को, नीचे तक झुक कर, सलाम कर कुर्सी पर बैठ गया।' पति की उपस्थिति में सतीश के इस स्वच्छन्द व्यवहार से सरला हतप्रभ हो गयी। उसने करुण-सयत स्वर मे कहा, "आपके हाथ से कोई काम बुरा न लगने पर भी आपको इस तरह सहसा, बिना सोचे-समझे कोई काम नही कर डालना चाहिये।" सरला के इस कथन के समर्थन मे रामकुमार का सिर हिल गया। सतीश उदास हो गया।

सतीश और रामकुमार, दोनो ने नारी को सीमित दृष्टिकोण से देखा

था। सतीश की सीमा है बाह्य निष्कर्षों पर अवलम्बित इतिहास, रामकुमार की सीमा है परम्परागत व्यक्तिगत स्वामित्त्व। नारी जड-सम्पत्ति नही, सचेतन प्राणी है, उसका भी अपना मौलिक व्यक्तित्त्व है। उसी व्यक्तित्त्व के भीतर से सरला सतीश को सामाजिक सहानुभूति देती आयी है।

रामकुमार नारी-स्वतन्त्रता का पक्षपाती है। किन्तु यह नही समझता था कि, "यदि सकीर्णता सचमुच ही मनुष्य के भीतर हो तो वह इस तरह नही मिटाई जा सकती। हाँ, भुलाई-छिपाई अवश्य जा सकती है।"

सतीश की उदासी ने रामकुमार को आत्मनिरीक्षण का अवसर दिया। उसने अनुभव किया, "सबसे बडा अवगुण्ठन उसकी आत्मा के ऊपर पडा हुआ है, पत्नी का वह अवगुण्ठन केवल उसकी छाया मात्र है। अपने हृदय का अवगुण्ठन हटाये बिना वह पत्नी को सुख-स्वाधीनता का उपभोग नही कर सकता।"

उसने उठ कर सतीश को गले लगा लिया, और बडे व्यथित भाव से कहा—'मुझे क्षमा करो।'

प्रारम्भ में विचारो से बोझिल होते हुए भी कहानी का अन्त बहुत सरस है। सरला भीतर चली गयी थी। जब चाय का सामान लेकर बाहर आयी तो दोनो मित्रो को प्रसन्न देख कर उसके हृदय का भार हलका हो गया। जल्दी से उस लाल फल के ऊपर चा-पोची डाल कर चाय तैयार कर दी। तीनो नित्य की तरह चाय पीने लगे—'उस बिना नशे के प्याले मे परिहास का रग खासा रहा।'

ये 'पाँच कहानियाँ' पाँच रँग की है, किन्तु इन सब का अन्तरग एक है—सास्कृतिक। समय बदल जायगा, किन्तु ये कहानियाँ कथा-चिह्न के रूप मे शेष रह जायँगी।

हैदराबाद,

१९।८।५०

युगान्त

'युगान्त' के चित्र-रेखाकार ने लिखा है—"अँग्रेजी कवियो के सौन्दर्य्य-बोध तथा पर्वत प्रदेशो के प्राकृतिक सौन्दर्य्य से अपने कल्पना-जगत का निर्म्माण कर लेने पर अपने देश की बाह्य विषण्ण दशा से अपने अन्तर्जगत का कही साम्य न पाने के कारण पन्त जी का व्यथित चित्त १९२३ से दर्शन शास्त्र की ओर झुका।"—कवि की इसी दार्शनिक प्रेरणा का परिणाम था 'परिवर्त्तन', 'पल्लव' का महत् काव्य ।

'धुँधले पद-चिह्न'

'परिवर्त्तन' के दार्शनिक अनुशीलन के बाद 'गुञ्जन', 'ज्योत्स्ना' और 'पाँच कहानियाँ' मे कवि सार्वजनिक अशान्ति का कोई लोक-सिद्ध समाधान नही दे सका था। वह व्यक्ति की वृत्तियो और समाज की प्रवृत्तियो मे सन्तुलन स्थापित कर रहा था। कवि अपेक्षाकृत दार्शनिक से मनोवैज्ञानिक हो गया था, किन्तु वह स्वप्नद्रष्टा ही बना रहा, ऐतिहासिक समीक्षक नही बन सका था। समस्या का यथार्थ रूप ओझल था। अतएव, 'परिवर्त्तन' के बाद समाजिक धरातल पर आकर भी कवि को शान्ति नही मिली, यह 'युगान्त' से ज्ञात होता है। कवि कहता है—

मैं सृष्टि एक रच रहा नवल
भावी मानव के हित, भीतर,
सौन्दर्य्य, स्नेह, उल्लास मुझे
मिल सका नही जग मे बाहर

'युगान्त' मे भी कवि का दृष्टिकोण प्राय दार्शनिक है। वह अनुभव करता है—

लगती विश्री औ' विकृत आज मानव-कृति,
एकत्त्व-शून्य है विश्व-मानवी सस्कृति ।

कवि प्रकृति की शोभा से मनुष्य को जीवन की सुषमा और आध्यात्मिक (आन्तरिक) एकता से सस्कृति की गरिमा देना चाहता है।

'युगान्त' का कवि यथार्थ से अनभिज्ञ नही है, किन्तु यथार्थ से निष्कृति पाने का उसके पास उस समय कोई स्पष्ट मार्ग नही था। कवि कहता है—"युगान्त के मरु मे मेरे मानसिक निष्कर्षो के धुँधले पद-चिह्न पडे हुए है।"

पन्त जी की प्रगतिशील रचनाओ मे 'युगान्त' का वही प्रारम्भिक स्थान है जो छायावाद-काल मे उनकी 'वीणा' का। 'वीणा' मे अस्पष्ट सौन्दर्य्य-वोध था, 'युगान्त' मे अस्पष्ट युग-वोध । एक मे छायावाद का शैशव था, दूसरे मे प्रगतिवाद का बाल्यकाल । 'वीणा' का विकास 'पल्लव' और 'गुञ्जन' मे हुआ, 'युगान्त' का विकास 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे ।

मन'स्थिति

ऐसा जान पडता है कि 'युगान्त' के रचना-काल मे कवि का जीवन श्रान्त और श्लथ हो गया था। ऐसी ही स्थिति मे उसका ध्यान श्रमजीवी मानव की ओर गया—

"ये नाप रहे निज घर का मग
कुछ श्रमजीवी धर डगमग डग
भारी है जीवन ! भारी पग !!"

कवि को श्रमजीवीयो के पगो मे अपने भाराक्रान्त जीवन का साम्य मिला ।

वस्तुत कविता लिखने के लिए उस समय कवि की मन स्थिति अनुकूल नहीं थी। किन्तु अपनी साँसो को वह भीतर रोक नही सकता था और बाहर के विषाक्त वातावरण से प्राणवायु ग्रहण नही कर सकता था, ऐसी ही छटपटाहट मे उसके उद्गार दुर्निवार वेग से उच्छ्वसित हो उठे। कवि की इस असह्य विकलता का परिचय 'युगवाणी' के 'आम्र विहग' में मिलता है—

उन्मुक्त नील
तुम पख ढील,
उड उड सलील
हो जाते लय
निसीम शान्ति मे चिर सुखमय,—
जब नीड निलय मे रुद्ध हृदय
हो उठता पीडातुर अतिशय !

छायावाद-युग का कवि प्रत्यक्ष जगत से पलायन करके निसीम लोक (असीम जगत) मे शान्ति उपलब्ध करता था। किन्तु ऐसे अशान्त युग में जब कि—

चतुर्दिक घहर-घहर आक्रान्ति
ग्रस्त करती सुख-शान्ति
('परिवर्त्तन')

पलायन के लिए अवकाश नही है। सबके साथ कवि भी इसी उत्क्रान्त वायुमण्डल मे साँस लेने के लिए विवश है।

नवसृजन की प्रेरणा

जीवन के अभाव मे भी 'युगान्त' का कवि आशान्वित था। वह अनुभव करता था कि वातावरण बदलेगा, मनुष्य को नवजीवन मिलेगा। कवि

कहता है— "'युगान्त' मे मैं निश्चयरूप से इस परिणाम पर पहुँच गया था कि मानव-सभ्यता का पिछला युग अब समाप्त होने को है ओर नवीन युग का प्रादुर्भाव अवश्यम्भावी है। जिन प्रेरणाओ से प्रभावित होकर यह कहा था उसका आभास 'ज्योत्स्ना' मे पहिले ही दे चुका था।"

कवि जिस युग का अन्त देख रहा था वह सामन्त-युग और पूँजीवादी युग है, इन्ही का अन्त 'युगान्त' है।

मध्ययुग और पूँजीवादी युग की विकृतियाँ मानव के विकास-मार्ग मे वाधक हैं। इन युगो ने मनुष्य को आत्मविस्मृत बनाये रखने के लिए सभ्यता और सस्कृति का भ्रमजाल फैला रखा है। 'युगान्त' मे कवि कहता है—

शत मिथ्या वाद-विवाद, तर्क,
शत रूढ-नीति, शत धर्म्म-द्वार,
शिक्षा, सस्कृति, सस्था, समाज,—
यह पशु-मानव का अहकार।

इसी लिए कवि चाहता है—

झरें, जाति-कुल-वर्ण-पर्ण घन,
अन्ध-नीड-से रूढि-रीति छन,
व्यक्ति-राष्ट्रगत-राग-द्वेष रण,
झरे, मरे विस्मृति मे तत्क्षण।

'युगान्त' के आरम्भ मे (पहिली कविता मे) ही निष्प्राण प्राचीनता के प्रति कवि का तीव्र आक्रोश व्यक्त हो उठा है—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र!
हे स्रस्त-ध्वस्त! हे शुष्क-शीर्ण!
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीत-राग, जड, पुराचीन!!

ये 'जीर्ण पत्र' मध्ययुगों के जीवन्मृत मन्तव्य हैं जो नये विचारों, नये भावों, नये सौन्दर्य्य, नये संगीत अथवा जीवन के नये वसन्त का स्थान घेरे हुए हैं। इनके झर जाने, पतझर हो जाने पर ही नई सृष्टि पल्लवित, पुष्पित एवं उज्जीवित हो सकती है। इसीलिए नवयुग के प्रतिनिधि गायक (गीत-खग कोकिल) को कवि ने पुरातन के विध्वंस और नूतन के सृजन का सन्देश सुनाने के लिए प्रेरित किया है—

गा कोकिल ! बरसा पावक कण
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बन्धन।

यद्यपि 'पावक-कण' बरसा कर कवि ने आन्तरिक और बाह्य (भौतिक) दोनों ही क्रान्ति करने के लिए कहा है, तथापि 'ज्योत्स्ना' की तरह 'युगान्त' में भी कवि मुख्यतः मनःक्रान्ति (आन्तरिक क्रान्ति) की ओर है, यह 'मैं सृष्टि एक रच रहा नवल भावी मानव के हित भीतर' से स्पष्ट है।

बाह्य क्रान्ति ध्वंसात्मक है, आन्तरिक क्रान्ति रचनात्मक। पन्त जी लिखते हैं—"बाहरी क्रान्ति की अभावात्मकता की पूर्त्ति मेरा मन नवीन मनुष्यत्त्व की भावात्मक देन द्वारा करना चाहता है। 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र, हे स्रस्त ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण' द्वारा जहाँ पिछली वास्तविकता को बदलने के लिए ओज-पूर्ण आह्वान है, वहाँ 'कंकाल-जाल जग में फैले फिर नवल रुधिर पल्लव लाली' में 'पल्लव'-काल की स्वप्न-चेतना द्वारा उस रिक्त स्थान को भरने के लिए आग्रह भी है।...'ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बन्धन' के साथ ही 'हो पल्लवित नवल मानवपन', 'रच मानव के हित नूतन मन' भी मैंने कहा है।"—इस तरह प्रकृति के ध्वंसात्मक और रचनात्मक नियमों को कवि मानव-जीवन में भी चरितार्थ देखना चाहता है। छायावाद का प्राकृतिक दर्शन 'युगान्त' में सशक्त हो

गया है। 'युगान्त' का कवि पुरातन-पन्थियो की तरह 'हिम-ताप-पीत, मधु-वात-भीत' नही है। प्रकृति की मधुरता से उसमे नव-सृजन का उन्मेष हो गया है।

'परिवर्त्तन' मे कवि ने प्रकृति और मानव-जीवन का पतझर ही देखा था। क्षणभगुरता ने उसे जीवन से निराश कर दिया था। वह काल-भीरु हो गया था। 'युगान्त' मे उसने आत्मबल पा लिया है। अपनी अन्त स्फूर्त्ति मे कवि मनुष्य को उत्साहित कर रहा है—

बढो अभय, विश्वास-चरण धर!
सोचो वृथा न भव-भय-कातर!

•

सुख-दुख की लहरो के शिर पर
पग धर, पार करो भव-सागर!
बढो, बढो विश्वास-चरण धर!

कवि मनुष्य मे ईश्वरीय शक्ति देखता है—

'मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन
वह न देह का नश्वर रज-कण!'

'युगान्त' मे इसी 'चिरन्तन स्फुलिंग' से ज्वलन्त मानव को कवि ने उसकी अन्तर्निहित शक्ति का बोध कराया है। प्रकृति के कवि ने प्रकृति के प्रतीको से ही मानव व्यक्तित्त्व को प्राणान्वित किया है। कही 'मिट्टी के गहरे अन्धकार' को (मृण्मय आवरण को) 'बीज' की तरह भेद कर मनुष्य 'जड निद्रा' से जग रहा है, सकीर्णता के बन्धनो को तोड कर अपना 'सत्त्व' अथवा अपनी मुक्ति पाने का प्रयत्न कर रहा है, कही 'खद्योत' की तरह 'अँधियाली घाटी मे' अपनी 'हरित स्फुलिंग' (अन्तर्ज्योति) को विकीर्ण कर रहा है।

'युगान्त' मे कवि ने मदान्ध भौतिकवाद के प्रतिकूल प्रकाशमान मानववाद को प्रतिष्ठित किया है और उसे अध्यात्म के परम-तत्त्व (अमृतत्त्व) का सम्बल दिया है।

सक्रमण-काल का अन्धकार स्थायी नही है। आज का अन्धकार कल के प्रकाश मे लुप्त हो जायगा, उसी के साथ युग-युगो की पर्वताकार खडी वाधक शक्तियाँ (प्रभुता, अहम्मन्यता, सामाजिक जडता) भी डूब जायँगी, कवि की यही भविष्यवाणी है—

ये डूबेगी—सब डूबेगी
पा नव मानवता का विकाश,
हँस देगा स्वर्णिम वज्र-लौह
छू मानव आत्मा का प्रकाश!'

यद्यपि 'युगान्त' युगान्त है, तथापि लुप्तमान अतीत मे जो कुछ प्रकाशमान है उसे भी 'बापू' शीर्षक कविता मे स्थान मिल गया है—

"सदियो का दैन्य-तमिस्र तूम,
धुन तुमने कात प्रकाश-सूत,
हे नग्न! नग्न-पशुता ढँक दी
बुन नव सस्कृत मनुजत्त्व पूत।"

'बापू के प्रति' उद्‌गीर्ण ये पक्तियाँ 'युगान्त' के कवि के प्रति भी सार्थक हो जाती है—

आत्मा को विषयाधार बना,
दिशि-पल के दृश्यो को सँवार,
गा-गा एकोह बहु स्याम
हर लिये भेद, भव-भीति-भार।

जीवन और कला

'युगान्त' मे जीवन और कला के विगत युग का पतझड और सद्य-प्रस्फुटित युग का नव-पल्लवन है—

"पतझड के कृश पीले तन पर
पल्लवित तरुण लावण्य-लोक,
शीतल हरीतिमा की ज्वाला
दिशि-दिशि फैली कोमलालोक।"

कवि ने 'दो शब्द' मे लिखा है—"युगान्त मे 'पल्लव' की कोमल कान्त कला का अभाव है। इसमे मैंने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है, भविष्य मे मै उसे अधिक परिपूर्ण रूप मे ग्रहण एव प्रदान कर सकूगा।"

'युगान्त' मे चाहे 'पल्लव' की विशद कलाकारिता न हो, किन्तु उसकी भावना वैसी ही कोमल कान्त है। इसमे 'हिम-परिमल की रेशमी वायु' बह रही है, 'शाश्वत शोभा का अदन' खिला हुआ है, 'कलि के पलको मे मिलन-स्वप्न' है, 'अलि के अन्तर मे प्रणय-गान' है। प्रकृति मे जहाँ कही सृष्टि की सरसता है वहाँ चिडियाँ चहक रही है—

'वे ढाल-ढाल कर उर अपने
है बरसा रही मधुर सपने।'

यही उल्लास और शोभा का सहृदय समाज कवि मानव के जीवन मे देखना चाहता है।

'युगान्त' मे भी कवि भावाविष्ट कलाकार है। वह युगान्त और युगान्तर का गान गीत-विहग की तरह ही सुनाना चाहता है—

'गा सके खगो-सा मेरा कवि
विश्री जग की सन्ध्या की छवि।

गा सके खगो-सा मेरा कवि
फिर हो प्रभात, फिर आवे रवि।'

'युगान्त' मे कवि की आत्मा तो छायावाद-युग की है, किन्तु काव्य का कलेवर (कला-विन्यास) बदल गया है। एकाध कविताओ (जैसे सन्ध्या, छाया, मञ्जरित आम्रवन, छवि के नव-बन्धन) को छोड कर अधिकाश कविताएँ छन्द, भाषा और शैली की दृष्टि से पद्य की सीमा मे चली गई है। भाषा कही-कही गद्यात्मक हो गई है। यथा—

सन्ध्या के सोने के नभ मे
तुम उज्ज्वल हीरक-सदृश जडे,
उदयाचल पर दीखते प्रात
अँगूठे के बल हुए खडे।

('शुक्रतारा')

'जडे' 'खडे' इस तरह के तुक पद्य मे ही फिट हो सकते है।

पन्त जी कल्पना-कुशल कवि है, अतएव 'युगान्त' मे गद्य की उभरी हुई पक्तियाँ (अस्थियाँ) भी तूलिका का रूप-रग पाकर भावो से भरी-पूरी जान पडती है।

छायावाद-युग की शब्द-सजीवता 'युगान्त' मे भी देखी जा सकती है। यथा—

वे डूब गये—सब डूब गये
दुर्दम, उदग्रशिर अद्रि-शिखर!
स्वप्नस्थ हुए स्वर्णातप मे
लो, स्वर्ण-स्वप्न अब सब भूधर!

'दुर्दम, उदग्रशिर अद्रि-शिखर' से आँखो के सामने दुर्लंघ्य और उत्तुग पर्वत-शिखरो का विराट चित्र खिच जाता है। रूपक की भाषा मे 'अद्रि

शिखर' जड-प्रतिक्रियाओ के प्रतीक है। उनका अतिक्रमण कर युग के स्वर्णोदय ने अपने प्रकाश से उन्हे भी ओतप्रोत कर दिया है।

पन्त जी शब्द-निष्णात है। उन्होने अपनी सभी कृतियो मे कुछ नये शब्द दिये है। 'यगान्त' मे लम्बे-पैने नखो का शक्ति-वाचक एक नया शब्द 'नखर' आया है—

'प्रखर नखर नव जीवन की लालसा गडा कर
छिन्न भिन्न कर दे गत युग के शव को, दुर्धर!'

तितली को 'तिली' सम्बोधन देकर उसके नन्हे सुकुमार कलेवर को कवि ने और भी सुकोमल कर दिया है—

प्रिय तिली! फूल-सी ही फूली
तुम किस सुख मे हो रही डोल?

तितली को प्यार से 'तिली' कह कर ही कवि का जी नही भरा, उसकी शोभा की सूक्ष्मता को व्यञ्जित करने के लिए 'अनिल-कुसुम' भी कहना पडा।

कवि शब्दो के द्वारा रूप-चित्रण के अतिरिक्त ध्वनि-चित्रण भी करता आया है। इसका परिचय 'युगान्त' मे भी मिलता है। यथा—

बाँसो का झुरमट
सन्ध्या का झुटपुट
है चहक रही चिडियाँ
टी-वी-टी—टुट् टुट्!

ऐसा जान पडता है मानो सन्ध्या के सूने वातावरण मे छोटी-छोटी चिडियाँ अपनी तुतलाहट से जीवन के स्पन्दन की टेक भर रही है।

कही-कही कविता मे कवि ने नाटकीय टेकनिक का भी उपयोग किया है। यथा—

द्वाभा के एकाकी प्रेमी,
नीरव दिगन्त के शब्द मौन,
रवि के जाते, स्थल पर आते
कहते तुम तम से चमक कौन ?
('शुक्र')

चमक' में अभिनय की द्युति-स्फूर्ति है, प्रकृति के प्रहरी की सजग तेजस्विता है।

रङ्गमञ्चके आकस्मिक पटोद्घाटनकी तरह चकित कर देने वाली एक दृश्य-योजना देखिये—

तारो का नभ ! तारो का नभ !
सुन्दर, समृद्ध आदर्श सृष्टि !
जग के अनादि पथ-दर्शक वे
मानव पर उनकी लगी दृष्टि !
वे देव-बाल भू को घेरे
भावी भव की कर रहे पुष्टि !

'तारो का नभ, तारो का नभ' कह कर कवि ने दृश्य की रमणीयता और दर्शक के कुतूहल-जनित आनन्द और आश्चर्य्य की व्यञ्जना की है।

'युगान्त' मे पन्त जी की कवि-प्रतिभा का नवीन कैशोर्य्य है। लघु-लघु मुक्तको मे युग के बाल्यकण्ठ का सारल्य है। उनम छायावाद का प्रसाद गुण है। देखिये कितनी सहज रचना है—

वे चहक रही कुन्जो मे चञ्चल सुन्दर चिडियाँ,
उर का सुख बरस रहा स्वर-स्वर पर।
पत्रो पुष्पो से टपक रहा स्वर्णातप
प्रात समीर के मृदु स्पर्शो से कँप-कँप !

तितली, सन्ध्या, छाया, स्वर्गकिरण, मञ्जरित आम्रतरु, शुक्रतारा और वसन्त के भाव-चित्र इतने सुगम और मनोरम हैं कि वे कलामयी उँगलियो से कसीदे पर फूल-पत्तो और सितारो की तरह कढे हुए जान पडते हैं।

'युगान्त' की 'मञ्जरित आम्रवन-छाया' और 'सन्ध्या' ('कहो तुम रूपसि, कौन ?') 'गुञ्जन' की रचना-शैली की याद दिलाती है।

'सन्ध्या' शीर्षक कविता तो 'गुञ्जन'-काल की ही रचना है। 'प्राण ! तुम लघु लघु गात'की तरह यह एक मनोहर चित्र-गीत है। इस छोटेसे प्रगीत मे पूर्ण सगीत और पूर्ण चित्र (साग रूपक) है। बडी सक्षिप्त और सरस रचना है।

'युगान्त' मे पन्त की कविता का ह्रास नही हुआ है। ब्रजभाषा के बाद जैसे द्विवेदी-युग ने हिन्दी-कविता का नवीन प्रयोग किया, वैसे ही छायावाद के बाद 'युगान्त' मे पन्त ने। उन्होने द्विवेदी-युग के पद्योन्मुख गद्य को छायावाद का अलकरण दे दिया। स्वास्थ्य के लिए शरीर के आधार की तरह उन्हें भाव के लिए युग के सुदृढ गद्य का आधार लेना पडा। 'मैं और मेरी कला' शीर्षक लेख मे पन्त जी लिखते हैं—"१९२१ के असहयोग-आन्दोलन के साथ ही हमारे देश की बाहरी परिस्थितियो ने भी जैसे हिलना-डुलना सीखा है। युग-युग से जडीभूत उनकी वास्तविकता मे सक्रियता तथा जीवन के चिह्न प्रकट होने लगे। उनके स्पन्दन-कम्पन तथा जागरण के भीतर से एक नवीन वास्तविकता की रूप-रेखाएँ मन को आकर्षित करने लगी। मेरे मनके भीतर वे सस्कार धीरे धीरे सञ्चित तो होने लगे, पर 'पल्लव' की रचनाओ मे वे मुखरित नही हो सके, न उसके स्वर उस नवीन भावना को वाणी देने के लिए पर्य्याप्त तथा उपयुक्त प्रतीत हुए।"

अपन नये सस्कार और नये स्वर के अनुकूल पन्त जी जिस जीवन और

कला की रचना करना चाहते थे उसी का प्राथमिक प्रयोग 'युगान्त' मे है। खडीबोली की कविता के क्रम-विकास मे उसका अपना ऐतिहासिक स्थान है।

'युगान्त' मे काव्य-कला के परिवर्त्तन के साथ-साथ कविता का आलम्बन भी बदला है। छायावाद-युग मे प्रकृति आलम्बन थी, 'युगान्त' मे मनुष्य आलम्बन है। पहिले मनुष्य और प्रकृति मे पार्थक्य नही था, दोनो मे एकात्म्य था, सारूप्य था। इसीलिए मनुष्य ने प्रकृति मे ही अपनी अभि-व्यक्ति पा ली थी। यथा—

उषा-सी स्वर्णोदय पर भोर
दिखा मुख कनक-किशोर,
प्रेम की प्रथम मदिरतम-कोर
दृगो में दुरा कठोर,
छा दिया यौवन-शिखर अछोर
रूप-किरणो मे बोर,
सजा तुमने सुख-स्वर्ण-सुहाग,
लाज-लोहित अनुराग!

('गुञ्जन' 'रूप-तारा')

मनुष्य और प्रकृति का साहचर्य्य युग-युग से चला आ रहा है—

यह लौकिक औ' प्राकृतिक कला
यह काव्य अलौकिक सदा चला
आ रहा,—सृष्टि के साथ पला!

('युगान्त')

किन्तु 'युगान्त' से प्रकृति पीछे छूटने लगती है, मनुष्य का मुरझाया मुख सामने आ जाता है। प्रकृति अब भी एक आदर्श दृष्टान्त के रूप में सश्लिष्ट है, किन्तु मानव-जीवन के अवलोकन के लिए प्राकृतिक जगत पार्श्वभाग बन गया है—

"है पूर्ण प्राकृतिक सत्य ! किन्तु मानव-जग !
क्यो म्लान तुम्हारे कुञ्ज, कुसुम, आतप, खग ?"

प्रकृति तो प्रफुल्लित है ही, मनुष्य के म्लान जीवन को भी कवि उसी की तरह विकसित-प्रमुदित देखना चाहता है। युग के गहनतम विषाद मे 'द्वाभा के एकाकी प्रेमी' शुक्रतारा की तरह जागरूक कवि के लिए भी यही स्नेहोद्‌गार निकल पडता है—

"अब सूनी दिशि औ' श्रान्त वायु,
कुम्हलाई पकज-कली सृष्टि,
तुम डाल विश्व पर करुण-प्रभा
अविराम कर रहे प्रेम-वृष्टि !"

यद्यपि 'युगान्त' मे कवि स्वभावत कलाकार है, तथापि कला की अपेक्षा उसने जीवन को महत्त्व दिया है। इसीलिए 'ताज' शीर्षक कविता मे कवि कहता है—

मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ?
आत्मा का अपमान, प्रेत औ' छाया से रति !!
शव को दे हम रूप-रग आदर मानव का ?
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दे शव का ?

जीवन के रचनात्मक निर्म्माण मे निष्क्रिय कलाभवनो का यही वीभत्स रूप है। 'पल्लव' मे जिस कवि ने सूक्ष्म 'छाया' को भी अपनी उर्व्वर कल्पनाशीलता से सजीव कर दिया था, वह 'ताज' मे प्रत्यक्ष आधार पाकर भी उसे कोई मूर्त्त कल्पना नही दे सका, कवि की कलाकारिता करुणा से कुण्ठित हो गयी।

कवि की सभी कृतियो मे जीवन का करुण स्पर्श है, फिर भी साहित्य मे उसने दु खवाद को प्रधानता नही दी। 'गुञ्जन' में कवि ने कहा है—

आँसू की आँखो से मिल
भर ही आते है लोचन,
पर हँस-मुख से ही जीवन का
हो सकता है अभिवादन।

पन्त जी हृदयोल्लास के कवि है। 'युगान्त' मे भी उनकी रुचिरता का आनन्द-प्रसन्न-लोक है—

"आह्लाद, प्रेम औ' यौवन का
नव स्वर्ग सद्य सौन्दर्य्य-सृष्टि,
मञ्जरित प्रकृति, मुकुलित दिगन्त,
कूजन-गुञ्जन की व्योम-वृष्टि।"

निशीथ,
काशी,
२०।१२।५०

शिवम्

[प्रगतिशील युग]

पृष्ठ-पोषण

तुम्हारे नयनो का आकाश
सजल, श्यामल, अकूल आकाश!
गूढ, नीरव, गम्भीर, प्रसार,
न गहने को तृण का आधार,
बसायेगा कैसे ससार
प्राण! इनमे अपना ससार!
न इनका ओर-छोर रे पार,
खो गया वह नव-पथिक अजान!

('गुञ्जन')

भाव-विहारी कवि पन्त जी छायावाद-युग से ही काव्य के भाव-जगत के लिए पार्थिव आधार खोज रहे थे। प्रकृति—

'तुहिन-विन्दु बन कर सुन्दर
नभ से भू पर समुद उतर',

फूलो को आभूषित कर रही थी, किन्तु मनुष्य तो निराधार ही था। निरवलम्ब भाव-जगत से कवि को 'ग्रन्थि' मे ही उपराम हो गया था—

अनिल-कल्पित कमल-कोमल गात को
अक भर कर रसिक! किसकी चाह की
बाँह तृप्त हुई? तुहिन जल से हसित—
किसलयो को चूम किसका मन बुझा?

कवि ज्यो-ज्यो अभाव-जगत के सम्पर्क मे आता गया त्यो-त्यो भाव-जगत से उसका असन्तोष बढता गया। 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे उसका असन्तोष स्पष्ट हो गया। 'ग्राम्या' मे काव्य के भाव-विलास के प्रति एक मार्म्मिक व्यग्य है—

कृत्रिम रति की है नही हृदय मे आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव-कल्पित मनोज।

'युगवाणी' मे कवि ने नागरिक कृत्रिमता मे पले हुए भाव-विलासियो की भर्त्सना की है। एक ओर मानो छायावादियो से कवि कहता है—

भाव-सत्य पीडित मानव,
मत धरो स्वप्न के चरण,
वाष्प लोक के योग्य तुम्हारा
भाव - सत्य - विश्लेषण।

भाव-भीत तुम, गत भावो के
पहने स्वर्णिम बन्धन,
रूप-हीन मृत भावो को
देते हो सत्य चिरन्तन।

दूसरी ओर रहस्यवादियो से कहता है—

ताक रहे हो गगन?
मृत्यु-नीलिमा-गहन गगन?
अनिमेष, अचितवन, काल-नयन?—
नि स्पन्द, शून्य, निर्जन, नि स्वन?

देखो भू को।
जीव-प्रसू को ।
हरित भरित
पल्लवित मर्म्मरित
कुञ्जित गुञ्जित
कुसुमित
भू को।

कवि ने भाव, स्वप्न और कल्पना की उपेक्षा नही की, (उसने स्वय अपने को 'कल्पना-पुत्र' और 'स्वप्न-धर' कहा है), उसकी आकाक्षा यह है कि भाव, स्वप्न और कल्पना जीवन मे जीवन्त हो, शून्य की तरह निराधार न हो, प्रत्यक्ष जगत मे साकार हो। इसीलिए कवि ने कलाकारो का ध्यान भूतल की ओर आकृष्ट किया है—

देखो भू को,
स्वर्गिक भू को,
मानव पुण्य-प्रसू को।

चित्र के लिए चित्रपट की तरह, कवि ने भाव, स्वप्न ओर कल्पना के लिए भू-पृष्ठ को आधार बनाने का सकेत किया है।

कवि काव्य के मनोलोक को मानव-लोक मे अवतरित करना चाहता है, अमूर्त्त को मूर्त्त रूप देना चाहता है। कहा जा सकता है कि कवि भावुकता से वास्तविकता के क्षेत्र मे चला गया है। किन्तु अभाव-जगत मे भाव-जगत को प्रतिष्ठित करने के लिए ही कवि का यह स्थानान्तर है। मध्ययुग के अर्वाचीन सस्करण (छायावाद और रहस्यवाद) की अपेक्षा वह काव्य मे नवीन सगुण का सन्देश देता है, गेही को गेह की और देही के देह की सुध-बुध दिलाता है। काव्य के अलौकिक आनन्द के उपासको से कवि कहता है—

कहाँ खोजने जाते हो
सुन्दरता औ' आनन्द अपार ?
इस मासलता मे है मूर्त्तित
अखिल भावनाओ का सार।
('युगवाणी')

इस अकाल-ग्रस्त युग मे असीम के अनुयायियो को कवि मानव-अस्तित्त्व की रक्षा के लिए ऐहिक सीमा की ओर प्रेरित करता है—

आज अखिल विज्ञान, ज्ञान को
रूप, गन्ध, रस मे प्रकटाओ।
आत्मा की निसीम मुक्ति को
भव की सीमा मे बँधवाओ।
जन की रक्त-माँस-इच्छा को
मधुर अन्न-फल में उपजाओ।
('युगवाणी')

काव्य की इस भौतिक आकाक्षा के अनुरूप ही कवि के धर्म्म और कला-सम्बन्धी विचारो मे भी वास्तविकता आ गयी। 'युगवाणी' मे कवि कहता है—

आज सत्य, शिव, सुन्दर करता
नही हृदय आकषित,
सभ्य, शिष्ट औ' सस्कृत लगते
मन को केवल कुत्सित ।
सस्कृति, कला, सदाचारो से
भव-मानवता पीडित,
स्वर्ण-पीजडे मे है वन्दी
मानव-आत्मा निश्चित ।

धर्म्म, नीति औ' सदाचार का
मूल्याकन है जन-हित,
सत्य नही वह, जनता से जो
नही प्राण-सम्बन्धित ।

आज, सत्य, शिव, सुन्दर केवल
वर्गो मे है सीमित,
ऊर्ध्वमूल सस्कृति को होना
अधोमूल है निश्चित ।

मध्यकालीन आदर्शो के ऊर्ध्वलोक के नीचे (निम्नतल पर) जर्ज्जरित प्राणियो को देखकर कवि कहता है—

आज असुन्दर लगते सुन्दर
प्रिय पीडित,शोषित जन,
जीवन के दैन्यो से जर्ज्जर
मानव-मुख हरता मन ।

इस 'मानव-मुख' का जो सौन्दर्य्य लुप्त हो गया है उसी का नव-निर्म्माण करने मे ही कला का लालित्य है—'ललित कला, कुत्सित कुरूप जग का जो रूप करे निर्म्माण ।'

एवमस्तु ।

काशी,
२१-२-५०

प्रगति, संस्कृति और कला

'आधुनिक कवि' के सग्रह मे पन्त जी ने अपनी काव्यकृतियो के कला- और जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण का 'पर्य्यालोचन' किया है, रचनाओ का मनोवैज्ञानिक क्रम-विकास और सामाजिक परिस्थितियो का ऐतिहासिक स्थापत्य दिखलाया है ।

पन्त जी लिखते है—"'वीणा' और 'पल्लव', विशेषत , मेरे प्राकृतिक साहचर्य्य-काल की रचनाएँ है । तब प्रकृति की महत्ता पर मुझे पूर्ण विश्वास था, और उसके व्यापारो मे मुझे पूर्णता का आभास मिलता था । वह मेरी सौन्दर्य्य-लिप्सा की पूर्त्ति करती थी, जिसके सिवा, उस समय, मुझे कोई वस्तु प्रिय नही थी । स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के अध्ययन से, प्रकृति-प्रेम के साथ ही, मेरे प्राकृतिक दर्शन के ज्ञान और विश्वास मे भी अभिवृद्धि हुई । 'परिवर्त्तन' मे इस विचार धारा का काफी प्रभाव है । अब मै सोचता हूँ कि प्राकृतिक दर्शन, जो एक निष्क्रियता की हद तक सहिष्णुता प्रदान करता है और एक प्रकार से प्रकृति को सर्वशक्तिमयी मान कर उसके प्रति आत्मसमर्पण सिखलाता है, वह सामाजिक जीवन के लिए स्वास्थ्यकर नही है ।

'गुञ्जन' और 'पल्लव'-काल के बीच मे मेरा किशोर-भावना का सौन्दर्य्य-स्वप्न टूट गया ।

यदि मेरा हृदय अपने युग मे बरते जाने वाले आदर्शो के प्रति विश्वास न खो बैठता तो मेरी आगे की रचनाओ मे भी हार्दिकता पर्य्याप्ति मात्रा मे मिलती । जब बस्तु-जगत के जीवन से हृदय को भोजन अथवा

भावना को उद्दीप्ति नही मिलती तब हृदय का सूनापन बुद्धि के पास, सहायता माँगने के लिए पुकार भेजता है । यही कारण है कि मेरी आगे की रचनाएँ भावात्मक न रह कर बौद्धिक बनती गई,——या मेरी भावना का मुख प्रकाशवान् हो गया ?"

ऐतिहासिक भौतिकवाद

भाव-जगत् के सूनेपन से ऊब कर पन्त जी बुद्धि (विश्लेषण) के सहारे छायावाद से प्रगतिवाद की ओर प्रेरित हुए । प्रगतिवाद क्या है ?——इस प्रश्न पर उनकी इन पक्तियो से प्रकाश पडता है——"प्रगतिवाद उपयोगितावाद का ही दूसरा नाम है । वैसे सभी युगो का लक्ष्य सदैव प्रगति की ही ओर रहा है, पर आधुनिक प्रगतिवाद ऐतिहासिक विज्ञान के आधार पर जन समाज की सामूहिक प्रगति के सिद्धान्तो का पक्षपाती है ।"

साहित्य मे जिसे हम प्रगतिवाद कहते है वह मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद है । उसकी दृष्टि से 'मनुष्य का विकास समाज की दिशा को होता है, समाज का इतिहास की दिशा को । '——प्रगति के इस दृष्टिकोण मे 'इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या' है ।

इतिहास की इसी वैज्ञानिक व्याख्या के अनुसार पन्त जी ने 'युगवाणी' मे मार्क्सवाद का सैद्धान्तिक पक्ष और 'ग्राम्या' के 'ग्राम-देवता' मे ऐतिहासिक पक्ष दिया । गान्धीवाद और छायावाद उन्हे अनैतिहासिक, अवैज्ञानिक और वैयक्तिक जान पडे ।

इतिहास-विज्ञान की दृष्टि से पन्त जी कहते हैं——"मनुष्य की सास्कृतिक चेतना उसकी वस्तु-परिस्थितियो से निर्म्मित सामाजिक सम्बन्धो का प्रतिविम्ब है । यदि हम बाह्य परिस्थितियो मे परिवर्त्तन ला सके तो हमारी आन्तरिक धारणाएँ उसी के अनुरूप बदल जायेंगी ।" आज वातावरण मे जो क्षोभ, क्रान्ति, उत्पीडन ओर उद्वेलन है वह मनुष्य की बाह्य परिस्थितियो के साथ-साथ उसके अन्तर्जगत मे भी परिवर्त्तन ला रहा है——

जो अन्तर-जग था बाह्य जगत् पर अवलम्बित,
वह बदल रहा युगपत् युग-स्थितियो से प्रेरित।
('ग्राम्या')

अन्तर्जगत् के अधिष्ठान के लिए पन्त जी ने बाह्य जगत् के निम्माण को प्रमुखता दी है। वे कहते है—"मनुष्य क्षुधा-काम की प्रवृत्तियो से प्रेरित होकर सामाजिक सगठन की ओर और जरा-मरण के भय से आध्यात्मिक सत्य की खोज की ओर अग्रसर हुआ है। भौतिक दर्शन का यह दावा ठीक ही जान पडता है कि एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था में जिसमे कि अधिकाधिक मनुष्यो को क्षुधा-काम की परितृप्ति के लिए पर्य्याप्त साधन मिल सकते है और वे वर्त्तमान युग की सरक्षण-हीनता से मुक्त हो सकते है, उन्हे अपने सास्कृतिक एव आध्यात्मिक विकास के लिए भी अधिक अवकाश और सुविधाएँ मिल सकेगी। एक ओर समाजवादी विधान, उत्पादन-यन्त्रो की सामाजिक उपयोगिता बढा कर, मनुष्य को वर्त्तमान सघर्ष से मुक्त कर सकेगा, दूसरी ओर वह उसे सास्कृतिक मानो की सकीर्णता से मुक्ति दे सकेगा, जिनकी ऐतिहासिक उपयोगिता अब नही रह गई है और जिनकी धारणाएँ आमूल विकसित एव परिवर्त्तित हो गई है। यदि भावी समाज मनुष्य को रोटी (जन-आवश्यकताओ का प्रतीक) की चिन्ता से मुक्त कर सका तो उसके लिए केवल सास्कृतिक सघर्ष का प्रश्न ही शेष रह जायगा।"

जन-आवश्यकताओ की पूर्त्ति के लिए रचनात्मक निर्देशन की अपेक्षा, पन्त जी ने भौतिक दर्शन का मुख्यत सैद्धान्तिक निरूपण किया है। रचनात्मक दृष्टि से उन्होने विज्ञान और यन्त्र के लोक-कल्याणकारी सदुपयोग का सकेत दिया है। यन्त्रो को वे अर्थ-तत्र (पूँजीवाद) से मुक्त कर जन-तन्त्र के वाहक के रूप मे देखना चाहते है। 'उत्तरा' की 'प्रस्तावना' मे लिखते है—

"हम अभी यन्त्र का मानवीकरण नही कर सके है, उसे मानवीय अथवा मानव का वाहन नही बना सके हैं, बल्कि वही हम पर अभी आधिपत्य किये हुए है। यन्त्र-युग ने हमे जो शक्ति तथा वैभव प्रदान किया है, वह हमारे लोभ तथा स्पर्धा की वस्तु बन कर रह गया है, उसने जहाँ मानव-श्रम के मूल्य को अतिरिक्त लाभ मे परिणत कर शोषक-शोषित के बीच बढती हुई खाई को रक्त-पकिल विक्षोभ तथा असन्तोष से भर दिया है, वहाँ हमारे भोग-विलास तथा अधिकार-लालसा के स्तरो उकसा कर हमे अविनीत भी बना दिया है, किन्तु वह हमारे ऊपरी धरातलो तथा सास्कृतिक चेतना को छू कर मानवीय गौरव से मण्डित नही हो सका है,—दूसरे शब्दो मे, यन्त्र-युग का मनुष्य की चेतना मे अभी सास्कृतिक परिपाक नही हुआ है।"

उद्योग और मनोयोग

मनुष्य की बाह्य परिस्थितियो मे परिवर्त्तन लाने के लिए पन्त जी ने ऐतिहासिक दर्शन का उद्योग-पक्ष देखा, किन्तु प्राकृतिक दर्शन का उद्योग-पक्ष (ग्रामोद्योग) उनसे छूट गया। यन्त्रोद्योगो पर से पूँजीवादी प्रभाव को हटा कर जिस तरह उन्होने यन्त्र-युग का उज्ज्वल मुख देखना चाहा है उसी तरह यदि वे मध्यकालीन उद्योगो (ग्रामोद्योगो) को सामन्तवाद, पूँजीवाद और यन्त्रवाद से अलग कर के देखते तो उन्हे प्राकृतिक दर्शन मे निष्क्रियता नही जान पडती।

गान्धीजी ने ग्रामोद्योगो का पुनरुद्धार कर प्राकृतिक दर्शन को सक्रिय बनाने का प्रयत्न किया था। इस रेडियो, तार, टेलीफोन, वाष्प, विद्युत्, वायुयान और कल-कारखानो के युग मे ग्रामोद्योग सम्प्रति भले ही निष्प्रभ पड गया हो, किन्तु उसका भविष्य उसकी स्वाभाविक उर्व्वरता (जीवनी शक्ति) मे सुरक्षित है।

यदि ऐतिहासिक दर्शन प्रगतिवाद की ओर है तो प्राकृतिक दर्शन भाव-पक्ष मे छायावाद की ओर, कर्म्म-पक्ष मे गान्धीवाद की ओर ।

सम्प्रति छायावाद के मुरझा जाने का कारण ग्रामोद्योगो का ह्रास है। दूसरे महायुद्ध के बाद अब सभी देशो के औद्योगिक विशेषज्ञ ग्रामोद्योग का गुण-गान करने लगे है। निकट भविष्य मे यन्त्रोद्योगो से अकाल-निवारण का प्रयास विफल हो जाने पर जब सभी देशो को ग्रामोद्योगो का आश्रय लेना पडेगा तब विश्व-साहित्य मे पुन छायावाद का युग आयेगा। वह उसी तरह खिल उठेगा जैसे ग्रामगीतो और लोक-कथाओ का भाव-जगत् खिल उठा था। मुरली के लिए अधर की तरह छायावाद के भावयोग के लिए ग्रामोद्योग पार्थिव आधार है।

चाहे पूँजीवाद हो, चाहे प्रगतिवाद, कोई भी यान्त्रिक युग आगे चल नही सकता। काव्य और जीवन के पनपने के लिए आर्द्रता (तरलता-सजलता) चाहिये। यन्त्रोद्योगो मे रसार्द्रता नही, प्रखरता है, जल नही, विद्युत् है। नि सदेह जीवन मे कुछ उष्णता की भी आवश्यकता है, वह ग्रामोद्योगो मे शरीर के स्वाभाविक ओज (पुरुषार्थ) की तरह स्वत व्याप्त है, उसे यन्त्रो के कृत्रिम आश्रय की जरूरत नही।

उद्योग के अनुरूप ही मनुष्य का मनोयोग बनता है। जैसा कि पन्त जी ने कहा है—"यदि हम बाह्य परिस्थितियो मे परिवर्त्तन ला सकें तो हमारी आन्तरिक धारणाएँ उसी के अनुरूप बदल जायँगी।" इस दृष्टि से यन्त्रोद्योग और ग्रामोद्योग मनुष्य के मनोजगत् के विधायक अथवा उसकी जीवन-प्रणाली के प्रवर्त्तक है। अतएव, ऐतिहासिक दर्शन और प्राकृतिक दर्शन का मतभेद जीवन की दो भिन्न प्रणालियो का मतभेद है ।

पन्त जी का भाव-दर्शन (सबजेक्टिव फिलासफी) ग्रामोद्योग के युग का है, ऐतिहासिक दर्शन (ऑबजेक्टिव फिलासफी) यन्त्रोद्योग के युग का। भाव और कर्म्म दोनो के दो भिन्न युगो मे विभक्त हो जाने के

कारण वे उनमे सामञ्जस्य लाना चाहते है, इसीलिए पूर्व और पश्चिम, अध्यात्म ओर देहात्म, सूक्ष्म ओर स्थूल, व्यक्ति और विश्व के समन्वय का प्रयत्न करते है।

छायावाद-युग मे पन्त जी ने भावना-द्वारा जीवन का जो अखण्ड दृष्टिकोण पाया था, वह बुद्धि के धरातल पर आकर खण्ड-खण्ड हो गया। जीवन को अध्यात्म ओर विज्ञान (सूक्ष्म और स्थूल) मे विभक्त कर वे दोनो को इनसे परे किसी मूलतत्त्व से सयोजित देखते है—

> आत्मा ओ' भूतो मे स्थापित करता कौन समत्त्व ?
> बहिरन्तर, आत्मा-भूतो से है अतीत वह तत्त्व।
> भौतिकता, आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,
> व्यक्ति-विश्व से, स्थूल-सूक्ष्म से परे सत्य के मूल।
>
> ('युगवाणी')

पन्त जी ने मूल-तत्त्व को दार्शनिक दृष्टि से देखा है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से आध्यात्मिकता और भौतिकता दोनो का मूल ग्रामोद्योग मे है।

ग्रामोद्योग मे मूल-तत्त्व भूमिष्ठ है, उसमे आध्यात्मिकता भौतिकता की ही परिणति है—आहार से रस की तरह, शरीर से स्वास्थ्य की तरह, कर्म्म से भाव की तरह। दोनो अद्वैत है। 'युगान्त' मे 'छाया' से कवि ने प्रश्न किया है—'हम दो भी है या नित्य एक ?' यही प्रश्न भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच भी उठता है। शब्द और ध्वनि की तरह दोनो दो होकर भी एक है।

पन्त जी लिखते है—"भारतीय दर्शन अद्वैतवादी है, किन्तु भारतीय सस्कृति द्वैतवादी रह गयी। इसका यही कारण है कि अद्वैतवाद के सत्य को देश-काल के भीतर (सस्कृति के रूप मे) प्रतिष्ठित करने के योग्य विधान को जन्म देना सामन्त-युग की परिस्थितियो के बाहर था। उसके लिए एक ओर भौतिक विज्ञान के विकास-द्वारा भौतिक शक्तियो पर आधिपत्य

प्राप्त करने की जरूरत थी, दूसरी ओर मनुष्य की सामूहिक चेतना के विकास की।" इसी दृष्टि से 'युगवाणी' मे पन्त जी ने कहा है—

अन्तर्मुख अद्वैत पडा था युग-युग से निष्क्रिय, निष्प्राण,
जग मे उसे प्रतिष्ठित करने दिया साम्य ने वस्तु-विधान।

अद्वैत के लिए सक्रिय और प्राणवान् वस्तु-विधान गान्धी जी के ग्रामोद्योग में और सामूहिक चेतना के विकास का रचनात्मक प्रयास उनके सकल्पित 'लोक-सेवक-सघ' मे भी देखा जा सकता है।

द्वैत अथवा युग-द्वन्द्व का कारण मुद्रागत कृत्रिम अर्थ-शास्त्र है जिसने मानव-समाज को उत्पादक और उपभोक्ता मे वर्ग-विभक्त कर दिया। किसी भी युग मे (चाहे वह साम्यवादी युग ही क्यो न हो) जब तक मुद्रा का माध्यम बना रहेगा, कोई मौलिक परिवर्त्तन नही हो सकता। पन्त जी भी इसी ओर सकेत करते है—

राजनीति का प्रश्न नही रे आज जगत् के सम्मुख,
अर्थ-साम्य भी मिटा न सकता मानव जीवन के दुख।

आज वृहत् सास्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,
खण्ड-मनुजता को युग-युग की होना है नव-निर्म्मित।
('ग्राम्या')

मनुष्य-मनुष्य के बीच मे अविश्वास-सूचक निर्जीव माध्यम (मुद्रा) रख कर उससे किसी सजीव (सास्कृतिक अथवा आन्तरिक) निर्म्माण की आशा नही की जा सकती। इसलिए गाधी जी श्रम का माध्यम चलाना चाहते थे, जिसका आरम्भ उन्होने खादी पर दो पैसे का सूत लेकर किया था। जीवन की यावत् आवश्यकताओ मे वे मनुष्य को क्रमश पूर्ण श्रम-स्वावलम्बन की ओर अग्रसर कर रहे थे। उनके निर्देशानुसार अधिकार-

लालसा और वर्ग-द्वन्द्व का अन्त उत्पादक श्रम मे प्रत्येक व्यक्ति के लग जाने से होगा, अन्यथा ऐतिहासिक विडम्बनाओ (सामन्तवाद, पूँजीवाद, यन्त्रवाद, प्रगतिवाद) की पुनरावृत्ति होती रहेगी। लेकिन वैज्ञानिक-औद्योगिक प्रयोगो की क्षणिक सफलता के बाद, परिस्थितियाँ इनके लिए अनुकूल नही रह जायँगी। गान्धी जी व्यापारिक उद्योगो के नही, सामाजिक साधना के सञ्चालक थे। उनकी सस्कृति कर्म्मणा थी। पन्त जी भी 'युगवाणी' मे उसी ओर उन्मुख है—

'प्रथम कर्म्म, कहता जन-दर्शन,
पीछे रे सिद्धान्त, मन, वचन।'

इसी कर्म्म के अभाव मे आज का बुद्धिजीवी नाना सिद्धान्तो का वैचारिक प्रयोग (मानसिक ऊहापोह) ही करता रह जाता है।

सक्रान्तिकालीन परिस्थितियो से वाध्य होकर रोम्या रोलॉं की तरह पन्त जी ने ऐतिहासिक दर्शन को अपनाया, किन्तु उनका हृदय श्रमण-सस्कृति के साथ है, 'ग्राम्या' के 'चरखा-गीत' मे उनकी अन्तर्ध्वनि है—

घूम घूम, भ्रम भ्रम रे चरखा
कहता 'मै जन का परम सखा,
जीवन का सीधा-सा नुसखा—
श्रम, श्रम, श्रम!'

... ...

कहता चरखा प्रजातन्त्र से,
'मै कामद हूँ सभी मन्त्र से',
कहता हँस आधुनिक यन्त्र से,
'नम, नम, नम!'

[२]

समन्वय

ऐतिहासिक भौतिकवाद से प्रेरित होते हुए भी पन्त जी का जीवन-दर्शन उसी मे आवद्ध अथवा सीमित नही। वे सौन्दर्य्य को पृथ्वी के समतल से और आनन्द को अध्यात्म के ऊर्ध्वतल से ग्रहण करना चाहते है। 'युगवाणी' की 'कैलिफोर्निया पॉपी' मे उनकी यही आकाक्षा है—

जड-वृन्त मूल ! उडती होती
तुम तितली-सी सुख से उन्मुख,
पृथ्वी के हो ये डाल-पात,
पर पार्थिव नही तुम्हारा सुख !

लौकिक सौन्दर्य्य और अलौकिक आनन्द की अभिन्नता के लिए कवि भौतिक और अध्यात्म दर्शन को सयोजित करता है, पृथ्वी और आकाश को समन्वय के क्षितिज मे मिलाता है।

पन्त जी कहते है—"मै अध्यात्म और भौतिक, दोनो दर्शनो के सिद्धान्तो से प्रभावित हुआ हूँ। पर भारतीय दर्शन की, सामन्तकालीन परिस्थितियो के कारण, जो एकान्त-परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति मे हुई है (दृश्य-जगत् एव ऐहिक जीवन के माया होने के कारण उसके प्रति विराग आदि की भावना जिसके उपसहार मात्र है), और मार्क्स के दर्शन की, पूँजीवादी परिस्थितियो के कारण, जो वर्ग-युद्ध और रक्त-क्राति मे परिणति हुई है, —ये दोनो परिणाम मुझे सास्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नही जान पडे।"

पन्त जी ने ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय अध्यात्म दर्शन का 'लोकोत्तर कल्याणकारी पक्ष ग्रहण' कर दोनो का समन्वय किया है। मानव-स्वभाव का भी उन्होने सुन्दर ही अश लिया है, इसी से उनका मन 'वर्त्तमान समाज की कुरूपताओ से कट कर भावी समाज की ओर प्रधावित हुआ है।'

पन्त जी ने अपनी नई रचनाओ मे छायावाद-युग के प्राकृतिक सौष्ठव को भी अपनाया है। वे लिखते ह—"प्रकृति के सुन्दर रूप ने ही मुझे अधिक लुभाया है पर उसका उग्र रूप भी मैंने 'परिवर्त्तन' मे चित्रित किया है। यह सत्य है कि प्रकृति का उग्र रूप मुझे कम रुचता है। यदि मै सघर्ष-प्रिय अथवा निराशावादी होता तो Nature red in tooth and claw वाला कठोर रूप, जो जीव-विज्ञान का सत्य है, मुझे अपनी ओर अधिक खीचता। किन्तु 'वह्नि, बाढ, उल्का, झझा की भीषण भू पर' इस 'कोमल मनुज-कलेवर' को भविष्य मे अधिक से अधिक 'मनुजोचित साधन' मिल सकगे, और वह अपने लिए ऐसा 'मानवता का प्रासाद' निर्म्माण कर सकेगा जिसमे 'मनुष्य-जीवन की क्षण-धूलि' अधिक सुरक्षित रह सकेगी,—यह आशा मुझे अज्ञात रूप से सदैव आकर्षित करती रही है।'

पन्त जी ने इतिहास, समाज, व्यक्ति और प्रकृति से सुन्दर सार-अश चुन-चुन कर सस्कृति को आकार, आत्मा और वाणी दी है।

पन्त जी विध्वस के नही, निर्म्माण-युग के कवि है। उनकी सृजनशील चेतना से निर्म्मित होकर 'भावी स्वप्नो के पट पर युग-जीवन' नर्त्तन करता है।

छायावादी कवियो की तरह पन्त जी पर भी पलायन का आरोप किया जा सकता है। छायावादी कवि भूतकाल की ओर देखते थे, पन्त जी भविष्य की ओर देखते है। पन्त जी कहते है—"यदि स्वण-युग की आशा आज की अतृप्त आकाक्षा की काल्पनिक पूर्त्ति और पलायन-प्रवृत्ति का स्वप्न भी है तो वह इस युग की मरणासन्न वास्तविकता से कही सत्य और अमूल्य है। यदि इस विज्ञान के युग मे मनुष्य अपनी बुद्धि के प्रकाश और हृदय की मधुरिमा से अपने लिए पृथ्वी पर स्वर्ग का निर्म्माण नही कर सकता और एक नवीन सामाजिक जीवन आज के रिक्त और सन्दिग्ध मनुष्य मे जीवन के प्रति नवीन अनुराग, नवीन कल्पना और स्वप्न नही भर सकता, तो

यह कही अच्छा है कि इस 'दैन्य, जर्जर, अभाव-ज्वर पीडित', जाति-वर्ग मे विभाजित, रक्त की प्यासी मनुष्य जाति का अन्त हो जाय।"

पन्त जी के पक्ष मे यही कहा जा सकता है कि, "विशिष्ट व्यक्ति की चेतना सदैव ही ह्रासोन्मुख समाज की रूढि-नीतियो से ऊपर होती है, उसके व्यक्तित्त्व की सार्वजनिक उपयोगिता रहती है, अतएव उसे किसी भी समाज और युग मे मान्यता मिल सकती है।"

पूव और पश्चिम तथा गान्धीवाद और साम्यवाद पन्त जी के लिए अन्तर्जगत् और बहिर्जगत् के प्रतीक हैं, एक मे वे व्यक्तित्त्व का विकास और दूसरे मे समूह का निर्म्माण देखते हैं। 'युगवाणी' के शब्दो मे—

साम्यवाद ने दिया जगत् को सामूहिक जनतन्त्र महान्,
भव-जीवन के दैन्य दु ख से किया मनुजता का परित्राण।

•

गान्धीवाद हमे देता जीवन पर अन्तर्गत विश्वास,
मानव की नि सीम शक्ति का मिलता उससे चिर आभास।
व्यक्ति पूर्ण बन, जग-जीवन मे भर सकता है नूतन प्राण,
विकसित मनुष्यत्त्व कर सकता पशुता से जन का कल्याण।

पन्त जी लिखते हैं—"रवि बाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की, मशीन-युग की सौन्दर्य्य-कल्पना मे परिधानित किया है। पूर्व और पश्चिम का मेल उनके युग का स्लोगन भी रहा है।"—यही स्लोगन पन्त जी का भी है। पूर्व और पश्चिम के समन्वित युग मे वे देखते हैं—

दर्शन-युग का अन्त, अन्त विज्ञानो का सघर्षण,
अब दर्शन-विज्ञान सत्य का करता नव्य निरूपण।

अपने समन्वय मे पन्त जी प्रगतिशील कवि है, किन्तु उनमे प्रगतिवाद की तीव्रता नही है। वे कहते है—"अनुभूति की तीव्रता का वोध बहिर्मुखी

(एक्स्ट्रोवर्ट) स्वभाव अधिक करा सकता है, मगल का बोध अन्तर्मुखी स्वभाव (इट्रोवर्ट)।"

तीव्रता और तीक्ष्णता पन्त जी के स्वभाव के विरुद्ध है। वे साम्यवाद के सौम्य कवि है। सन्, ४५ मे कम्युनिस्ट पार्टी को सन्देश देते हुए उन्होने लिखा था—"मेरे प्राण सौन्दर्य्यवादी है, और मेरा सौन्दर्य्य लोक-प्राण है। मै चाहता हूँ, कोई प्रतिभाशाली कवि कम्युनिज्म के लोक-कल्याणकारी सौन्दर्य्य को राजनीति और अर्थनीति की श्रृखलाओ से मुक्त कर विश्व के हृदय-शतदल मे प्रतिष्ठित कर दे, जिससे लोग उसे अनायास ही ग्रहण कर सके। आज का राशिवाचक कम्युनिज्म भविष्य मे गुण-वाचक हो जायगा।"—इन पक्तियो से पन्त जी की नयी रचनाओ की आत्मा पर प्रकाश पडता है। युगनिर्म्माण के लिए उन्होने जैसे कवि को देखना चाहा है वह कवि वे स्वय है। पन्त जी प्रगतिवाद के सशोधक और सास्कृतिक प्रेक्षक है।

राशि, गुण, मन, सस्कृति इत्यादि शब्दो का वे साकेतिक अर्थ मे प्रयोग करते है। उनके शब्द प्रतीकवत् है, पारिभाषिक है। राशि से उनका अभिप्राय आर्थिक गणित से है। वे मानते है कि जीवन का सञ्चालन सस्कृति से ही हो सकता है, गणित से नही—

"नही गणित से रे परिचालित,
मानव-जीवन का विकास-क्रम,
विजय-पराभव, सन्धि-क्रान्ति का
स्रवणशील मानव-मन सगम
('स्वर्णकिरण')

गुण से उनका अभिप्राय मन है, सगुण से सास्कृतिक मन, नवीन सगुण से नव सास्कृतिक मन।

देश-काल की परिस्थितियो के अनुसार सगुण (सास्कृतिक मन) का युगावतरण (देहान्तर) होता रहता है। इस दृष्टि से पन्त जी अतीत के सगुण का अन्त और अपने युग के नवीन सगुण का उदय देख रहे है।

सस्कृति को पन्त जी मनुष्य का मनोविकास मानते है, उसका मूल वस्तु-भूमि मे रहता है, विकास भावाकाश मे होता है। वह 'भव-भूतल को भेद गगन मे उठने वाले शाल' की तरह है। पन्त जी कहते है—"युग के सृजन एव निर्म्माण-काल मे सस्कृति के मूल सदैव परिस्थितियो की वास्तविकता मे ही होते है, वह अधोमूल वास्तविकता, समय के साथ साथ, विकास एव उत्कर्ष-काल मे ऊर्ध्वमूल (भावरूप) सास्कृतिक चेतना बन जाती है। आज जब कि पिछले युग की वास्तविकता आमूल परिवर्त्तित और विकसित होने जा रही है, हमारी सस्कृति को, नवीन जन्म के प्रयास मे, फिर से अधोमूल होना ही पडेगा।"

सस्कृति को पन्त जी सापेक्ष (तात्कालिक) दृष्टि से भी देखते है और निरपेक्ष (देश-काल से परे चिरकालिक)दृष्टि से भी, एक युग-रचना की ओर है, दूसरी युग-युग की रचना की ओर। इसीलिए सस्कृति समतल (वस्तुतल) पर भी सञ्चरण करती है और ऊर्ध्वतल (सूक्ष्मतल) पर भी।

'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे पन्त जी सस्कृति के वस्तुतल पर थे, उसके बाद की रचनाओ मे उन्होने ऊर्ध्वतल को विशेष महत्त्व दिया है। 'उत्तरा' की प्रस्तावना मे वे लिखते है—"ऊर्ध्व मान्यताएँ उस अन्तस्थ सूत्र की तरह है जो हमारे बहिर्गत आदर्शो को सामञ्जस्य के हार मे पिरो कर हृदय मे धारण करने योग्य बना देती है

केवल ऊर्ध्व सञ्चरण ही वर्गहीन सञ्चरण हो सकता है, और वर्गहीनता का अर्थ केवल अन्तरैक्य पर प्रतिष्ठित समानता ही हो सकता है। अत मानवता को वर्गहीन बनने के लिए समतल-प्रसारगामी के

साथ ऊर्ध्वविकासकामी बनना ही पडेगा, जो हमारे युग की एकान्त आवश्यकता है ।"

सचमुच विविधता मे विभक्त ओर वैचित्र्य मे मनोमोहक इस चित्र-मय जगत् का सामञ्जस्य (आन्तरिक ऐक्य) ऊर्ध्वतल पर ही हो सकता है। इसीलिए भारत ईसा को मानता है, पश्चिम बुद्ध, गान्धी, रवीन्द्र और अरविन्द को, यह भविष्य की विश्व-मानवता का सूचक है ।

समतल पर सस्कृति सूक्ष्म के लिए सामाजिक शरीर धारण करती है, इस रूप मे वह परिवर्त्तनशील अथवा प्रगतिशील है, निर्जीव रूढि-रीतियो मे निश्चल नही, यह कवि का ऐतिहासिक निर्देशन है ।

निरपेक्ष दृष्टि से सस्कृति मे जो कुछ अपरिवर्त्तनीय शिव-तत्त्व (अमृत-त्व) है, कवि ने उसे भी गान्धी ओर अरविन्द के जीवन-दर्शन से सँजो लिया है ।

अदृश्य शक्ति

ऐतिहासिक युग मे ससरण करते हुए भी पन्त जी अन्त सञ्चरण-शील कवि है । वे मानते है कि जीवन केवल प्रत्यक्ष नियमो से ही नही, परोक्ष प्रेरणाओ से भी सञ्चालित होता है। जीवन मे पन्त जी एक अदृश्य शक्ति का अनुभव करते है। 'पल्लव' के 'मौन निमन्त्रण' की अनुभूति 'युगवाणी' की इन पक्तियो मे भी है—

शीत, ताप, झझा के सह बहु वार,
कौन शक्ति सजती जीवन का वासन्ती शृगार ?
सभी उसी के लिए विकल मन,
उसी शक्ति का पाने जीवन-स्पर्श,
रोम रोम मे भरने विद्युत हर्ष,
चिर चञ्चल व्याकुल जन !

'वीणा' मे कवि ने कहा था—

जब जीवन के स्रोत सम्मिलित
हो जाते है किसी प्रकार,
उन्हे नही तब बिछुडा सकता
सखे! स्वय तारक-करतार।

'किसी प्रकार' से पन्त जी का अभिप्राय अज्ञात आकस्मिक दैवी सयोग से है। वह जीवन का अन्तर्मुख नियम है। जड-चेतन दोनो उस नियम के वशवर्त्ती है—

जड-चेतन है एक नियम के वश परिचालित,
मात्रा का है भेद, उभय है अन्योन्याश्रित।
('युगवाणी')

'ग्राम्या' मे भी उस नियम का सकेत है—

जग-जीवन के अन्तर्मुख नियमो से स्वय प्रवर्त्तित
मानव का अवचेतन मन हो गया आज परिवर्त्तित।

पन्त जी लिखते है—"मै मानता हूँ कि सामूहिक विकास मे बाह्य परिस्थितियो से प्रेरित होकर मनुष्य की अन्तर्चेतना (साइकी), तदनुकूल, पहिले ही विकसित हो जाती है। किन्तु उसके बाद भी मनुष्य के उपचेतन (सबकाशस) के आश्रित विगत सास्कृतिक गुणो की प्रतिक्रियाएँ होती रहती है, जिसका परिणाम बाह्य सघर्ष होता है, साथ ही वह नवविकसित अवचेतन (अनकाशस) की सहायता से प्रबुद्ध होकर नवीन सत्य का समन्वय भी करता रहता है।"

कवि देखता है, 'नव-विकसित अवचेतन' मन से ही चेतन मन का सञ्चालन होता है—

अवचेतन मन से होता रे,
चेतन मन सन्तत सञ्चालित,
मन के दर्पण मे भव की छवि
रञ्जित हो कर होती बिम्बित।

('युगवाणी')

सस्कृति का मूल

मनुष्य के मनोविकास के लिए, ऐतिहासिक और आध्यात्मिक प्रयत्नो के अतिरिक्त, पन्त जी राग-तत्त्व को प्रमुख स्थान देते है। 'युगवाणी' मे राग-तत्त्व को ही उन्होने सस्कृति का 'मूलधातु' माना है—

गूढ राग का सवेदन ही
जीवन का इतिहास,
राग-शक्ति का विपुल समन्वय
जन-समाज, सवास।
निखिल ज्ञान, विज्ञानो मे
वह पाता नव अभिव्यक्ति,
राग-तत्त्व ही मूल धातु,
सस्कृतियाँ रूप, विभक्ति।
दुर्निवार यह राग, राग का
रूप करो निर्म्माण,
वेष्टित करो राग से भव,
हो जन-जीवन कल्याण!

मनुष्य के अवचेतन मन मे यही राग-तत्त्व व्याप्त रहता है। इसीलिए पन्त जी लिखते हैं—"मनुष्य-स्वभाव को सस्कृत बनाने के लिए रागात्मिका प्रवृत्ति के विकास से मनुष्य अपने देवत्त्व के समीप पहुँच जायगा और

ससार मे नर-नारी सम्बन्धी रागात्मक मान्यताओ मे प्रकारान्तर हो जायगा। दोनो भौतिक विज्ञान-शक्ति से सगठित भावी लोकतन्त्र मे रहने योग्य सस्कार-विकसित प्राणी बन सकेगे। तब शायद धरती की चेतना स्वर्ग के पुलिनो को छूने लगेगी।"

राग का अभिप्राय है मनुष्य की वह रमणशील प्रवृत्ति जो प्रिय वस्तुओ मे उसका मन रमाती है। इसे हम आकर्षण-वृत्ति अथवा अनुरक्त प्रवृत्ति भी कह सकते है। मनुष्य का यही राग आनन्द के लिए अनुराग बन जाता है। काव्य मे स्वर की सगति पाकर राग सगीत बन जाता है, जीवन मे सुरुचि की सगति पाकर भाव। भाव मे मनुष्य का रस-बोध और सौन्दर्य्य-बोध है।

[३]

जैसा कि पन्त जी ने कहा है, उनका मन 'वर्त्तमान समाज की कुरूपताओ से कट कर भावी समाज की ओर प्रधावित हुआ है', इस ऐतिहासिक अभियान मे उनकी रचनाओ का अनुरागी 'वीणा' से कण्ठ मिला कर पूछ सकता है—

> शब्द का गौरव, स्वर का स्पर्श
> हो गया है क्या विभव-विहीन ?
> दिखाने को यह रूप नवीन
> हो गये क्या निरर्थ आदर्श ?

नही, न तो आदर्श ही व्यर्थ हो गये, न शब्द का गौरव और स्वर का स्पर्श ही शून्य हो गया, केवल देश, काल और कला का चित्रपट (युगपट) बदल गया। पन्त जी अब भी वही आदर्श-प्राण लोकाभिराम कवि है।

कल्पनाशीलता

हम कह सकते है कि छायावाद के भाव-जगत् को, जो केवल कवि के मनोलोक मे था, उसे ही पन्त जी ने भविष्य के मानव-लोक मे अवतरित कर

दिया, जीवन मे जीवन्त कर दिया। 'ज्योत्स्ना' मे स्वप्न ओर कल्पना का यह गीत पन्त जी की प्रगतिशील दृष्टि पर भी घटित होता है—

शिशुओ के अविकच उर मे
हम चिर रहस्य बन रहते।
छायावन के गुञ्जन मे
युग-युग की गाथा कहते।

अनिमिष तारक-पलको पर
हम भावी का पथ तकते।
नवयुग की स्वर्ण-कथाएँ
ऊषा-अञ्चल पर लिखते।

सीमाएँ बाधा बन्धन,
नि सीम सदैव विचरते,
हम जगती के नियमो पर
अनियम से शासन करते।

हम मनोलोक से जग मे
युग-युग मे आते जाते,
नव जीवन के ज्वारो मे
दिशि पल के पुलिन डुबाते।

इसी दृष्टि से कवि भावी युग मे उपस्थित होकर देखता है—

ग्राम नही वे ग्राम आज
औ' नगर न नगर जनाकर,
मानव-कर से निखिल प्रकृति-जग
सस्कृत, सार्थक, सुन्दर।

•••

नाच रहे रवि, शशि,
दिगन्त मे, नाच रहे ग्रह, उडुगण,
नाच रहा भूगोल,
नाचते नर-नारी हर्षित मन।
ग्राम नही वे, नगर नही वे,—
मुक्त दिशा औ' क्षण से
जीवन की क्षुद्रता निखिल
मिट गयी मनुज-जीवन से।

('ग्राम्या')

'युगवाणी' में भी कवि ने कहा है—

खुल गये छन्द के बन्ध
प्रास के रजत पाश,
अब गीत मुक्त
औ' युगवाणी बहती अयास।
बन गये कलात्मक भाव
जगत के रूप नाम,
जीवन-सघर्षण देता सुख,
लगता ललाम।

इन पक्तियो की व्याख्या स्वय कवि ने इस प्रकार की है—"अब छन्दो और प्रासो मे सीमित कविता विश्व-जीवन के रूप मे बहने लगी है, मानव-जीवन ही काव्यमय बन गया है, कलात्मक भाव जीवन की वास्तविकता मे बँध गये है। ऐसे ससार मे जहाँ सास्कृतिक शक्तियाँ उन्मुक्त हो गयी है, अब जीवन-सघर्षण एव समाज-निर्म्माण का श्रम सुखद सुन्दर लगता है।"

'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे सक्रान्ति-काल की अमा-तमिस्रा से ग्रस्त युग-जीवन की इसी मुक्ति का महोत्सव-पर्व है, उज्ज्वल भविष्य का दर्शन, पूजन, आराधन और उद्बोधन है। कवि ने तामसिक युग के असगठित जीवन को अन्धकार कहा है, सगठित जीवन को प्रकाश। अन्धकार की कुरूपता दिखला कर प्रकाश की सुन्दरता का चित्रण किया है, उसे युग का आमन्त्रण दिया है—

आओ, प्रकाश! इस युग युग के
अवगुण्ठन से मुख दिखलाओ,
आओ हे, मानव के घट के
पट खोल मधुर श्री बरसाओ।

('युगवाणी')

'युगवाणी' मे भावी युग के जीवन-सौन्दर्य्य का रुचिर चयन (सश्लेषण) भी है और वर्त्तमान विरूपता का विश्लेषण भी। विश्लेषण और सश्लेषण मनुष्य का नीर-क्षीर-विवेक है। इसी के द्वारा वह एक युग को छोडता है और दूसरे युग की रचना करता है। आज का वर्त्तमान भूत का भविष्य है। कल का भविष्य भी जब किसी युग का वर्त्तमान हो जायगा तब नूतन रचना के लिए उसका भी विश्लेषण होने लगेगा। इसलिए वर्त्तमान के विश्लेषण के साथ कवि भविष्य के विश्लेषण के प्रति भी सजग है—

सच है जग जीवन विकास मे
आते ऐसे युग-क्षण,
जब मानव इस रूप-जगत का
करता सूक्ष्म निरूपण।

वह विश्लेषण-युग देता
निम्मर्णि शक्ति फिर नूतन,

अन्तर-जग का बहिर्जगत में
होता जब परिवर्त्तन।

('युगवाणी')

युग की आवश्यकताएँ समय-सापेक्ष हैं, अतएव कवि सम्प्रति निकट भविष्य के ही रूप-जगत् को रच रहा है, अन्तर-जग को बहिर्जगत् में परिवर्त्तित कर रहा है।

अभी जो अगोचर (भविष्याधीन) है उसकी कल्पना ही की जा सकती है, अतएव, छायावाद-युग की तरह प्रगतिशील युग को भी कवि अपनी कल्पवती चेतना (कल्पना) का सौन्दर्य्य दे रहा है। 'ग्राम्या' में कवि ने अपने को कल्पना-पुत्र कहा है—

"कवि अल्प, उडुप मति, भव-तितीर्षु,—दुस्तर अपार,
कल्पना-पुत्र मैं, भावी द्रष्टा, निराधार।"

कवि स्थापित स्वार्थों से सम्बद्ध नहीं, अवसरवादी नहीं; वह युगधर है, इसीलिए निराधार है।

फ्रायडियन आलोचक कल्पनाशीलता को अतृप्त वासनाओं की तृप्ति या पूर्त्ति समझते हैं। शायद उन्होंने अपनी ही प्रतिच्छाया छायावादी कवियों में देखी।

पन्त जी लिखते हैं—"छायावादी कवियों पर अतृप्त वासना का लाञ्छन मध्यवर्गीय (बूर्ज्वा) मनोविज्ञान (डेप्थ साइकॉलॉजी) के दृष्टिकोण से नहीं लगाया जा सकता। भारत के मध्ययुग की नैतिकता का लक्ष्य ही अतृप्त वासना और मूक वेदना को जन्म देना रहा है, जिससे बंगाल के वैष्णव कवियों के कीर्त्तन एवं सूर-मीरा के पद भी प्रभावित हुए हैं। संसार में सभी देशों की संस्कृतियाँ अभी सामन्त-युग की नैतिकता से पीड़ित हैं। हमारी क्षुधा (सम्पत्ति) काम (स्त्री) के लिए अभी वही

भावना बनी हे। पुगनी दुनिया का सास्कृतिक सगुण अभी निष्क्रिय नही हुआ है, ओर यन्त्र-युग उन परिस्थितियो को जन्म नही दे सका है जिन पर अवलम्बित सामाजिक सम्बन्धो से उदित नवीन प्रकाश।(चेतना) मानव जाति का नवीन सास्कृतिक हृदय बन सके।

मेरी कल्पना भविष्य की उस मनुष्यता ओर सामाजिकता को चित्रित करने मे सुख का अनुभव करने लगी जिसका आधार ऐतिहासिक सत्य है। ऐतिहासिक शब्द का प्रयोग मे 'इतिहास-विज्ञान के अर्थ म ही कर रहा हूँ जो दृश्य ओर द्रष्टा के सामूहिक विकास के नियमो का निरूपण करता है—

'मानव-गुण भव-रूपनाम होते परिवर्तित युगपत्।'

मै कल्पना के सत्य को सब मे बडा सत्य मानता हूँ और उसे ईश्वरीय प्रतिभा का अश भी मानता हूँ। मेरा विचार है कि 'वीणा' से लेकर 'ग्राम्या' तक (अब 'स्वणकिरण' से लेकर 'युगपथ' तक), अपनी सभी रचनाओ मे मैंने अपनी कल्पना ही को वाणी दी है, उसी का प्रभाव उन पर मुख्य रूप से रहा हे। शेष सब विचार, भाव, शैली आदि उसकी पुष्टि के लिए गौण रूप से काम करते रहे है।"

जहाँ कल्पना है, वहाँ कला भी है। कल्पना जिस अदृश्य का ध्यान करती है, कला उसे आकार देती है, भाव आकार को आत्मा देता है। निर्गुण को सगुण एव अमूर्त्त को मूर्त्त करने के लिए कल्पना को कला की सहायता लेनी पडती है। पन्त जी भी कहते हे—"अभी जो (युग) वास्तव मे अरूप है उसके कलात्मक रूप-चित्र को स्वभावत अलकृत (कला-कलित) होना चाहिये। 'युगवाणी' मे कहा भी है—

'बन गये कलात्मक भाव जगत के रूप नाम'

'सुन्दर शिव सत्य कला के कल्पित माप-मान
बन गये स्थूल जग जीवन से हो एकप्राण।'

जगत के रूप-नाम से मेरा अभिप्राय नवीन सामाजिक सम्बन्धो से निर्म्मित भविष्य के मानव-ससार से है।"

विचार और कला

पन्त जी कला को जीवन की अनुवर्त्तिनी भी मानते है और जीवन की अधिष्ठात्री भी। युग के परिवर्त्तन-काल मे कला जीवन की अनुगामिनी रहती है और 'विकास के युग मे जीवन कला का अनुगामी होता है।' इस दृष्टि से वे कहते है—"विचार और कला की तुलना मे इस युग मे विचारो ही को प्राधान्य मिलना चाहिये । जिस युग मे विचार (आइडिया) का स्वरूप परिपक्व और स्पष्ट हो जाता है उस युग मे कला का अधिक प्रयोग किया जा सकता है। उन्नीसवी सदी मे कला का कला के लिए भी प्रयोग होने लगा था, वह साहित्य मे विचार-क्रान्ति का युग नही था।"

'युगवाणी' मे पन्त जी विचार-क्रान्ति से प्रभावित हैं, इसीलिए उसमे विश्लेषण (बुद्धि) की प्रधानता है। अपनी इस कविता-पुस्तक को कवि ने गीत-गद्य कहा है। गीत का अभिप्राय जीवन की भावमयता है और गद्य का अभिप्राय वास्तविकता अथवा वैचारिकता। एक भविष्य के सश्लेषण (भावना) की ओर है, दूसरा वर्त्तमान के विश्लेषण की ओर। इस तरह 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे भाव ने अपना आधार (विचार), और विचार ने अपना भाव (निम्र्माण) पाया है। दोनो कविता-पुस्तको मे भाव-विचार-मिश्रित चित्रण हैं ।

'युगवाणी' के बाद पन्त जी का निष्कर्ष यह है कि "भावना और बुद्धि से, सश्लेषण और विश्लेषण से, हम एक ही परिणाम पर पहुँचते है।"—

इसलिए स्वभावत अपनी नयी रचनाओ मे कवि पुन भाव-सम्पन्न हो गया। उसमे सश्लेषण का सवेदन और सौहार्द आ गया।

सक्रान्ति-काल के साहित्यकार की दुर्वह परिस्थितियो से पन्त जी अनभिज्ञ नही है। वे सहानुभूति-पूर्ण शब्दो मे कहते है—"इस ह्रास और विश्लेषण-युग के स्वल्पप्राण लेखक की सृजनशील कल्पना अधिकतर जीवन के नवीन मानो की खोज मे ही व्यय हो जाती है, उसका कलाकार स्वभावत पीछे पड जाता है अतएव उससे अधिक कला-नैपुण्य की आशा नही रखनी चाहिये। इस परिवर्त्तन-काल के लेखक की अत्यन्त सीमाएँ और अपार कठिनाइयाँ है।"

पन्त जी ने जीवन के जिन 'नवीन मानो' की ओर सकेत किया है उन मानो का सम्बन्ध आर्थिक समस्या से भी है। बाहर से स्थूल होते हुए भी इस समस्या का जीवन पर सूक्ष्म प्रभाव पडता है। आर्थिक सघर्षों के साथ अपने स्वभाव का मेल न होने के कारण ही पन्त जी को मानसिक सघष (सुरुचि और सस्कृति का सघर्ष) करना पडा। पन्त जी इसे 'अन्तर्मानव का सघर्ष' कहते है।

कला पर कलाकार के स्वभाव और सस्कार के अतिरिक्त आर्थिक समस्या का भी अनिवार्य्य प्रभाव पडता है। द्विवेदी-युग के कवि प्राय मध्यमवर्गीय थे, अतएव अपनी आर्थिक विपन्नता मे कला को सँवार नही सके। यही बात प्रसाद और निराला के लिए भी कही जा सकती है। भाषा देखने से ही ज्ञात हो जाता है कि कवि कितना सासारिक है, कितना हार्दिक। जहाँ सासारिकता है वहाँ भाषा रूक्ष, परुष और कवित्त्व-शून्य हो गयी है।

द्विवेदी-युग के कवियो की अपेक्षा रवीन्द्र और पन्त को आर्थिक दृष्टि से कला के विकास के लिए अनुकूल अवसर मिला था। कला के साथ-साथ

पन्त जी का सुरुचिपूर्ण सुसस्कृत मनोविकास हुआ था, इसीलिए ह्रास-युग मे आकर भी उनकी कला गरिमा-मण्डित है।

अभाव-युग मे द्विविध सघर्ष (बाह्यत आर्थिक, सूक्ष्मत सास्कृतिक सघर्ष) के कारण पन्त जी दो बार साघातिक रूप से अस्वस्थ हो गये थे, सन् २९ और सन, ४४ मे। इस अस्वस्थता का प्रभाव उनकी भाषा पर पडा, 'पल्लव' के बाद अशत 'गुञ्जन' मे, अधिकाशत 'युगान्त' और 'युगवाणी' मे वह गद्य-शुष्क हो गयी। बाद की रचनाओ मे भाषा अपेक्षाकृत सरस है, साथ ही शैली गद्य के कसाव से सुपुष्ट है।

पन्त जी मे प्रभूत मनोवल है, इसीलिए अत्यधिक अस्वस्थता मे भी स्वास्थ्य लाभ कर सके। हमारे साहित्य को वे अपने स्वास्थ्य की सञ्जीवनी दे रहे हैं। भविष्य की ओर प्रसन्न दृष्टि से देख कर कहते है—

"मानव-समाज का भविष्य मुझे जितना उज्ज्वल और प्रकाशमान जान पडता है उसे वत्तमान के अन्धकार के भीतर से प्रकट करना उतना ही कठिन लगता है। भविष्य के साहित्यिक को इस युग के वाद-विवादो, अर्थशास्त्र और राजनीति के मतान्तरो-द्वारा, इस सदिग्ध काल के घृणा-द्वेष-कलह के वातावरण के भीतर से, अपने को वाणी नही देनी पडेगी। उसके सामने आज के तर्क, सघर्ष, ज्ञान-विज्ञान, स्वप्न-कल्पना सब घुल-मिल कर एक सजीव सामाजिकता और सास्कृतिक चेतना के रूप मे वास्तविक एव साकार हो जायँगे। वर्त्तमान युद्ध और रक्तपात के उस पार वह एक नवीन, प्रबुद्ध, विकसित ओर हँसती-बोलती हुई, विश्व-निर्म्माण मे निरत, मानवता से अपनी सृजन-सामग्री ग्रहण कर सकेगा।"

'ग्राम्या' के 'स्वप्न-पट' मे भी भविष्य का यही शुभाङ्कन है—

"डूब गये सब तर्क वाद,
सब देशो राष्ट्रो के रण,

डूब गया रव घोर क्रान्ति का,
शान्त विश्व-सघर्षण।

फुल्ल रक्त शतदल पर शोभित
युग-लक्ष्मी लोकोज्ज्वल
अयुत करो के लुटा रही
जन-हित, जन बल, जन मगल।"

तथास्तु ।

काशी,
७।३।५०

युगवाणी

'युगान्त' मे कवि छायावाद की सौन्दर्य्य-भावना और गान्धीवाद की आध्यात्मिक चेतना के साथ था। सौन्दर्य्य और अध्यात्म के लिए भूतल का आधार न मिलने के कारण उसके मन मे असन्तोष था। वह अभाव का अनुभव करता था, निदान उसे नही मिल रहा था। इसी समय 'युग-वाणी' मे कवि को मार्क्सवाद का अवलम्ब मिल गया।

मार्क्सवाद को स्वीकार करके भी कवि सर्वथा उसी का अनुगत नही हो गया। उसके पूर्व सस्कार (सूक्ष्म सस्कार) और नवभौतिक स्थूल ससार मे मत-भेद है। इसीलिए वह उसके प्रति प्रश्नोन्मुख भी है—

वस्तुवाद ही सत्य, मृषा सिद्धान्तवाद, आदर्श?
बाह्य परिस्थिति के आश्रित अन्तर-जीवन-उत्कर्ष?

('युगवाणी')

पूँजीवाद की तरह प्रगतिवाद भी अन्त शून्य न हो जाय, अतएव कवि उसमे 'मानवी भावना' का विकास चाहता है। 'ग्राम्या' की ये पक्तियाँ पूँजीवाद की तरह ही प्रगतिवाद को भी सजग करती है—

है श्लाघ्य मनुज का भौतिक सञ्चय का प्रयास,
मानवी भावना का क्या पर उसमे विकास?

युगान्तर के लिए कवि प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपनाता है, किन्तु अभ्यन्तर के लिए प्रगतिवाद से उसका दृष्टि-विपर्य्यय है। इसीलिए युग-द्वन्द्व मे उसका अन्तर्द्वन्द्व भी अग्रसर है। कवि मनोजीवी है, केवल युगजीवी नही,

अतएव किसी भी युग मे उसका व्यक्तित्त्व राजनीतिक सीमाओ से ऊपर उठा रहेगा। वह नेता नही, प्रणेता है।

युग-निम्माण

'युगवाणी' मे कवि युग-निर्देशक है। वह अतिवास्तविकता (सकीर्ण-भोतिकवाद) और अतिभावुकता (छायावाद-रहस्यवाद) मे सन्तुलन स्थापित करता है, भाव-सत्य को मासल ओर वस्तु-सत्य को शाद्वल (सुन्दर) बनाता है।

'युगवाणी' मे भी कवि 'गुञ्जन' की तरह उन्मन है। कभी अध्यात्म से खिन्न होकर कहता है—

> जीवन का चिर-सत्य
> नही दे सका मझे परितोष,
> मुझे ज्ञान से वस्तु सुहाती,
> सूक्ष्म बीज से कोष।

कभी वस्तु-जगत् (ऐतिहासिक भौतिकवाद) की नीरसता से विकल होकर कहता है—

> वस्तु-ज्ञान से ऊब गया मैं,
> सूखे मरु मे डूब गया मैं—
> मेरे स्वप्नो की छाया मे
> जग का वस्तु-सत्य जावे खो।

अध्यात्म और मार्क्सवाद की एकागिता कवि को अभीष्ट नही है। इन दोनो मे खण्ड-युगो (असगठित युगो) की अभिव्यक्ति है। अखण्ड-युग (भावी युग) की ओर लक्ष्य कर कवि कहता है—

> दर्शन-युग का अन्त, अन्त विज्ञानो का सघर्षण,
> अब दर्शन-विज्ञान सत्य का करता नव्य निरूपण।

सस्कृति की ओर से गान्धीवाद को, राजनीति की ओर से मार्क्सवाद को, कला की ओर से छायावाद को लेकर कवि युग का नव-निर्म्माण चाहता है। एक रासायनिक की तरह इन सब के सार-अश का लोक-जीवन मे समन्वय करता है। जीवन की इस विस्तृत परिधि पर 'युगवाणी' को कवि ने 'विश्व-मूर्त्ति' कहा है—

युग की वाणी,
हे विश्वमूर्त्ति कल्याणी!

कवि की शुभाकाक्षा यह है कि राष्ट्रो, व्यक्तियो और सम्प्रदायो में विभक्त मानव-समाज को 'युगवाणी' अपने स्वरो से "युग के विश्व-मन एव लोक-मन मे मूर्त्त कर सके मनुष्य की अन्तश्चेतना मे जो सत्य अभी अमूर्त्त है उसे रूप दे सके जीवन-सौन्दर्य्य की जो मानवी प्रतिमा आज अन्तर्मन मे विकसित हो रही है उसे भौतिक जीवन मे साकार कर सके, और मन स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आये।"—'युगवाणी' की विश्वमूर्त्ति मे कवि के इसी मनोरथ का समावेश है।

'युगवाणी' विश्व-वाणी है। कवि ने उसे समष्टिवादी युग की ओर प्रेरित किया है—

सर्व-मुक्ति हो मुक्ति-तत्त्व अब,
सामूहिकता ही निजत्व अब,
बने विश्व-जीवन की स्वर-लिपि
जन-जन-मर्म-कहानी।
कवि की वाणी!

व्यक्ति और समूह

छायावाद-युग मे व्यक्ति अकेला पड गया था। उसकी स्थिति 'गुञ्जन' के 'एक तारा' मे देखी जा सकती है—

एकाकीपन का अन्धकार, दुस्सह है इसका मूक भार,
इसके विषाद का रे न पार।

तारो के समूह (समष्टि) मे मिल जाने पर इस एक 'तारा' का जीवन भी सुखद हो जाता है—

गुञ्जित अलि-सा निर्जन अपार,
मधुमय लगता घन-अन्धकार,
हलका एकाकी व्यथा-भार!

जगमग-जगमग नभ का आँगन,
लद गया कुन्द-कलियो से घन,
वह आत्म और यह जग-दर्शन!

'युगवाणी' मे कवि इसी सामूहिक जीवन की प्रेरणा जगाता है—

क्षुद्र विश्व को विकसित हो
अब बनना है जन-मानव,
सामूहिक मानव को निर्म्मित
करनी है सस्कृति नव।

इस सामूहिक निर्म्माण के अभाव मे व्यक्ति निराधार है—

दुर्लभ रे दुर्लभ अपनापन,
लगता यह निखिल विश्व निर्जन,
वह निष्फल इच्छा से निर्धन!

('गुञ्जन')

सामूहिक जीवन के लिए कवि मार्क्सवाद को चाहता है। छायावाद की तरह गान्धीवाद को भी वह व्यक्तिगत साधना का ही सन्देश-वाहक समझता है—

गान्धीवाद हमे देता जीवन पर अन्तर्गत विश्वास,
मानव की नि सीम शक्ति का मिलता उससे चिर आभास।
व्यक्ति पूर्ण बन, जग-जीवन मे भर सकता है नूतन प्राण,
विकसित मनुष्यत्त्व कर सकता पशुता से जन का कल्याण।
मनुष्यत्त्व का तत्त्व सिखाता निश्चय हमको गान्धीवाद
सामूहिक जीवन-विकास की साम्य-योजना है अविवाद।
('युगवाणी')

छायावाद की साधना चाहे व्यक्तिगत रही हो, किन्तु गान्धीवाद के लिए ऐसा नही कहा जा सकता। छायावाद की आत्मसाधना को जिस सामूहिक निर्म्माण की आवश्यकता थी, वह गान्धी जी के सर्वोदय मे है।

'युगवाणी'-काल मे पन्त जी गान्धीवाद को श्रद्धा देकर भी, रवीन्द्र की तरह उसके पर्य्यवेक्षक भी थे। 'ग्राम्या' मे 'महात्मा जी के प्रति' उन्होने कहा है—"भावादर्श न सिद्ध कर सके सामूहिक जीवन-हित'। हाँ, रवीन्द्रनाथ जब कि छायावाद-युग मे ही रह गये, पन्त उसकी सीमा से बाहर चले गये। छायावाद के एकान्त लोक से निकल कर कवि ने सामूहिक दृष्टि से प्रगतिवाद के सार्वजनिक धरातल पर पदार्पण किया।

बहिरन्तर-रूपान्तर

'पल्लव' के 'परिवर्त्तन' मे कवि आत्मवाद की ओर था, सृष्टि की क्षण-भगुरता से उसका हृदय भग्न था। उसने कहा—

चार दिन सुखद चाँदनी रात,
और फिर अन्धकार अज्ञात!
यही तो है असार ससार,
सृजन, सिञ्चन, सहार!

कवि लिखता है, "ये भावनाएँ मनुष्य को अपने केन्द्र से च्युत करने के

बाद किसी सक्रिय सामूहिक प्रयोग के लिए अग्रसर नही करती, बल्कि उसे जीवन की क्षण-भगुरता का उपदेश भर देकर रह जाती है।"

क्षण-भगुरता मे सृष्टि की परिवर्त्तनशीलता नवीनता के लिए है, इसकी भी अनुभूति कवि को उस ममय थी—

जगत की मुन्दरता का चॉद
सजा लाञ्छन को भी अवदात,
सुहाता बदल-बदल दिन-रात—
नवलता ही जग का आह्लाद।

यह कवि का प्राकृतिक दर्शन है। प्रकृति की तरह मानव-लोक मे निर्म्माण की नवीनता न मिलने से वह जीवन के नये मानो के सन्धान मे लग गया। अपनी इस अनिश्चित मन स्थिति के सम्बन्ध मे कवि कहता है—"मेरे हृदय की समस्त आशाकाक्षाएँ और सुख-स्वप्न अपने भीतर और बाहर किसी महान्, चिरन्तन वास्तविकता का अग बन जाने के लिए लहरो की तरह अज्ञात प्रयास की आकुलता मे ऊब-डूब करने लगे।" एक निश्चित तल पर पहुँचने के लिए 'युगवाणी' में कवि ने भविष्य की दिशा में सन्तरण किया।

'परिवर्त्तन' मे कवि अतीत के वैभव और सौन्दर्य्य पर मुग्ध था—

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल?
भूतियो का दिगन्त-छवि-जाल,
ज्योति-चुम्बित जगती का भाल?
राशि-राशि विकसित वसुधा का वह यौवन-विस्तार?
स्वर्ग की सुखमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार!"

'युगवाणी' मे यह अतीत का मोह छूट गया। प्राकृतिक दर्शन के बाद

ऐतिहासिक दर्शन के सम्पर्क में आकर कवि को जान पडा—"जीवन की बाह्य परिस्थितियाँ एक सीमा तक विकसित होने के बाद निष्क्रिय और जड हो गयी थी। मध्ययुगीन विचारको, सन्तो एव साधुओ के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे विश्व-सञ्चरण के प्रति निरीह होकर (मायावाद, मिथ्यावाद आदि जिसके दुष्परिणाम है) व्यक्ति से सीधे परात्पर की ओर चले जाएँ। उनके नैतिक उन्नयन के प्रयत्न भगीरथ-प्रयत्न कहे जा सकते है, पर वे राम-प्रयत्न या कृष्ण-प्रयत्न (जिन्हे राम-कृष्ण-अवतरण कहना उचित होगा) नही थे, जिनके द्वारा विश्व-सञ्चरण मे भी प्रकारान्तर या युगान्तर उपस्थित हो सकता और जिनकी विकसित चेतना विश्व-जीवन के रूप मे सगठित एव प्रतिष्ठित हो सकती। वर्त्तमान युग नैतिक उन्नयन से अधिक इसी प्रकार के बहिरन्तर-रूपान्तर की प्रतीक्षा करता है।"

'बहिरन्तर' से कवि का अभिप्राय वस्तु-जगत् और मनोजगत् से है। वस्तु-जगत् 'युगवाणी' का 'रूप-सत्य' है, मनो जगत् 'कर्म्म का मन' है। 'रूप-सत्य' मे लोक-जीवन (सामूहिक जीवन) का सगठन है, 'कर्म्म के मन' मे उसी रूप-सत्य का सास्कृतिक (आन्तरिक) सगठन। 'युगवाणी' की इन पक्तियो से कवि का अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है—

क्षुद्र व्यक्ति को विकसित हो बनना है अब जन-मानव,
सामूहिक मानव को निर्म्मित करनी है सस्कृति नव।

वर्त्तमान युग के असगठित जीवन को कवि ने 'अन्धकार' कहा है, सगठित मन (सास्कृतिक मन) को 'प्रकाश'। कवि ने 'प्रकाश' का स्वागत इन शब्दो मे किया है—

आओ, जीवन के आँगन मे स्वर्णिम प्रभात जग के लाओ,
मानव-उर के प्रस्तर-युग के इस अन्धतमस को बिखराओ।

कवि जिस बहिरन्तर-रूपान्तर की प्रतीक्षा कर रहा है, विश्व-क्रान्ति उसी ओर सलग्न है। क्रान्ति मे कवि, विनाश ही नही, सृजन भी देख रहा है—

तुम चिर विनाश, नव सृजन गोद मे लाती,
चिर प्राकृत, नव सस्कृति के ज्वार उठाती ।

क्रान्ति मे 'मरण' 'जन्मशील' है। बहिरन्तर रूपान्तर के लिए वह एक ओर जीवन्मृत-युग की निष्प्राणता को समाप्त करती है, दूसरी ओर नवप्राण-युग को उव्वर क्षेत्र प्रदान करती है ।

'पल्लव' के 'आँसू' मे कवि निराश होकर इस निष्कर्ष पर पहुचा था—

दैव ! जीवन भर का विश्लेष
मृत्यु ही है नि शेष ।।

इसी दृष्टि से उसने 'परिवर्त्तन' मे भी देखा था—

खोलता इधर जन्म लोचन
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण !

इन पक्तियो के सम्बन्ध मे कवि लिखता है—

"मनुष्य के जीवन के अनुभवो का इतिहास बडा ही करुण प्रमाणित हुआ। जन्म के मधुर रूप मे मृत्यु दिखाई देने लगी, वसन्त के कुसुमित आवरण के भीतर पतझर का अस्थि-पञ्जर !"

'युगवाणी' मे कवि का श्मशान-वैराग्य दूर हो गया, उसे फिर जीवन से अनुराग हो गया । वह कहता है—

सच है, जीवन के वसन्त मे रहता है पतझार,
वर्ण-गन्धमय कलि-कुसुमो का पर ऐश्वर्य्य अपार !
राशि-राशि सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द, गुणो का द्वार,
मुझे लुभाता रूप, रग, रेखा का यह ससार !

कवि ने जीवन का प्रसन्न दर्शन पा लिया है। वह अनुभव करता है—

सृजन-तत्त्व की सृजनशीलता से
हो अवश, अकाम—

निरुद्देश्य जीवन धारा
बहती जाती अविराम ।

इसीलिए नश्वरता से कवि अब सन्त्रस्त नही है, सृष्टि की चिरन्तनता के प्रति आश्वस्त है—

झरते हो, झरने दो पत्ते,—डरो न किञ्चित्
नवल मुकुल-मञ्जरियो से भव होगा शोभित ।
सदियो मे आया मानव-जग मे यह पतझर
सदियो तक भोगोगे नव मधु का वैभव वर ।

इस तरह मानव-जग मे फिर वह युग आ सकता है—

स्वर्ग की सुखमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार ।

मृत्यु और पतझर मनुष्य और प्रकृति के नवजीवन के लिए एक क्रान्ति है । नवनिर्म्माण के लिए कवि क्रान्ति का आह्वान करता है—

नृत्य करो, नृत्य करो ।
शिशिर-समीर,
मत्त, अधीर,
प्रलयकर नृत्य करो,
मृत्यु से न व्यर्थ डरो ।

जीर्ण-शीर्ण विश्व-पर्ण,
हे विदीर्ण, हे विवर्ण,
कालभीत, रक्तपीत,
अभयकर नृत्य करो
प्रगति-क्षिप्र चरण धरो ।

क्रान्ति को वर्तमान के लिए छोड कर कवि मुख्यत जीवन की भावी समाज-रचना का कलाकार है। वह प्रभविष्णु है। क्रान्ति तो राजनीतिक सघर्षो मे स्वत सचेष्ट है। उसके बाद जिस नव-निर्माण की आवश्यकता है, कवि उसी का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। वह माडलिस्ट है। यह 'लोकायतन' के योजना-पत्र से भी सुस्पष्ट है।

छायावाद-युग मे कवि जिस सौन्दर्य्य, सगीत और सस्कृति की रचना अपने भीतर कर रहा था, अब उसे बाहर प्रतिष्ठित करना चाहता है। नव-निर्म्माण के लिए वह वैज्ञानिक भूमि पर है। प्रकृति का गायक अब अनुभव करता है—'मानव-जीवन प्रकृति-सञ्चलन मे विरोध है निश्चित।' अतएव प्रकृति पर विजयी होने के लिए वह मनुष्य को उत्साहित करता है—'बढे प्रकृति-शिशु भव मानव मे।'

छायावाद-युग मे प्रकृति सचेतन थी, अब इस वैज्ञानिक युग में वह 'जड' है, मनुष्य की 'अवयव' है, उस पर शासन किया जा सकता है।

'युगवाणी' मे पन्त जी मार्क्स के इतिहास-विज्ञान और फ्रायड के मनोविज्ञान से किसी नये ज्ञान-यात्री की तरह प्रभावित है। इसीलिए एक ओर मार्क्सवादी दृष्टि से कहते है—'बाह्य विवर्तन से होता युगपत् परिवर्तन', दूसरी ओर फ्रायडियन दृष्टि से कहते है—'अवचेतन मन से होता रे, चेतन मन सन्तत सञ्चालित।'

छायावाद की सौन्दर्य्य-भावना और गान्धीवाद की आत्मचेतना की कवि ने अवहेलना नही की, वह माया के भीतर जीव की तरह जुगजुगा रही है। सच तो यह है कि 'युगवाणी' मे पन्त का अभ्यन्तर नही बदला, केवल कलेवर बदल गया। सौन्दर्य्य और अध्यात्म को ही नवीन देहावरण देने के लिए कवि ने मार्क्सवाद का ऐतिहासिक शरीर (युग-शरीर) धारण कर लिया।

नवीन सगुण

सष्टि ने अपनी अभिव्यक्ति (शोभा, सजीवता, नानारूपता) आकार से पायी है। 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि' से इसका आभास मिलता है—

निराकार तम मानो सहसा
ज्योति-पुञ्ज मे हो साकार,
बदल गया द्रुत जगत्-जाल में
धर कर नाम रूप नाना,
सिहर उठे पुलकित हो द्रुम-दल,
सुप्त समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम-अधरो पर
हिल मोती का सा दाना,
खुले पलक, फैली सुवर्ण-छवि,
खिली सुरभि, डोले मधु-बाल,
स्पन्दन कम्पन औ' नवजीवन
सीखा जग ने अपनाना।

छायावाद मे चिन्मयी ज्योति का आकार था, 'युगवाणी' मे मृण्मयी धरती का स्वरूप है। एक का उद्गम सत् है, दूसरे का उद्गम रज है। दोनो तामसिक प्रवृत्तियो से ऊपर है।

छायावाद भाव-प्रधान था। अभाव-युग मे आकर कवि ने अनुभव किया कि भव से ही भाव बनता है, इसीलिए साकार जीवन के लिए उसने मनुष्य को भव-लोक की ओर प्रेरित किया—

आज भाव से बनो वस्तु-भव
चेतनता से रूप-गन्ध-रस-
शब्द-स्पर्श बन उपजो अभिनव।

स्थूल का आधार सूक्ष्म है, अथवा सूक्ष्म का आधार स्थूल ? 'सुमन के प्रति' शीर्षक कविता मे कवि इसी का साकेतिक उत्तर देता है—

भाव, वाणी या रूप ?
तुम क्या हो, चिर मूक सुमन !
किसके प्रतिरूप ?
मौन सुमन !
सुन्दरता से अनिमिष चितवन,
छू कोमल मर्म्मस्थल,
मूक सत्त्व के भेद सकल
कह देती , (खुल दल पर दल)—
सहज समझ लेता मन !
विजय रूप की सदा भाव पर,
भाव रूप पर निर्भर !
मैं अवाक् हूँ तुम्हे देख कर,
मौन रूपधर !
रूप नही है नश्वर !—
सत्ता का वह पूर्ण, प्रकृत स्वर,
सुन्दर है वह, अमर !

प्राकृतिक दर्शन (भाव-दर्शन) को प्राणिशास्त्र की यथार्थता देने के लिए कवि कहता है—

प्रकृति रूप-इच्छा से उन्मद
करती सृजन सनातन,
रूप-सृष्टि यह भावो को दो
मधुर-रूप - परिरम्भण ।

'युगवाणी' की 'विश्वमूर्त्ति' मे कवि इसी रूप-सृष्टि की कामना करता है—

रूप-रूप बन जायँ भाव स्वर,
चित्र-गीत झंकार मनोहर,
रक्त-मास बन जायँ निखिल
भावना, कल्पना, रानी!
युग की वाणी!

आत्मा ही बन जाय देह नव,
ज्ञान ज्योति ही विश्व स्नेह नव,
हास, अश्रु, आशाऽकाक्षा
बन जायँ खाद्य, मधु, पानी।
युग की वाणी!

स्वप्न वस्तु बन जाय सत्य नव,
स्वर्ग मानसी ही भौतिक भव,
अन्तर-जग ही बहिर्जगत्
बन जावे वीणापाणि, इ!
युग की वाणी!

भाव के लिए रूप की, आत्मा के लिए आकार की यही प्रेरणा 'युगान्त' में भी थी—

भाव रूप मे, गीत स्वरो मे,
गन्ध कुसुम मे, स्मिति अधरो मे,
जीवन की तमिस्र वेणी मे
निज प्रकाश कण बाँधो!
छवि के नव वन्धन बाँधो!

सुख से दुख औ' प्रलय से सृजन,
चिर आत्मा से अस्थिर रज तन,
महामरण को जग जीवन का
दे आलिगन बाँधो !
छवि के नव बन्धन बाँधो।

छायावाद निर्गुण (रहस्यवाद) की तरह निराकार नही था, अतएव उसकी भाव-सृष्टि मे भी रूप, रग और स्वर का समारोह था, किन्तु मरुस्थल मे 'ओएसिस' की तरह उसका एक अलग ससार था, पृथ्वी पर 'खाद्य, मधु, पानी' का अभाव हो जाने से वह सूख गया। 'युगवाणी' का कवि उस रूप-जगत् को नवजीवन देने के लिए रक्त-मास के निर्म्माण पर जोर देता है—

शत वसन्त, शत ग्रीष्म, शरद का
मास बीज मे है आवास,
ईश्वर है यह मास, पूर्ण यह,
इसका होता नही विनाश।

•

मासो का है मास, मानुषी मास,
करो इसका सम्मान,
निर्म्मित करो मास का जीवन,
जीवन-मास करो निर्म्माण।

रक्त-मास मे जीवन का सर्वाङ्ग-सगठन है—

मानवता का रक्त-मास
जग-जीवन से चिर ओत-प्रोत,
निखिल विचारो का बहता
इस अरुण रुधिर मे जीवित स्रोत।

रक्त-मास उद्योग, भाव-योग और आत्मयोग का प्रतीक है। शरीर को नश्वर, ससार को असार और जीवन को माया मान कर परलोक की ओर दृष्टि रखने वालो से कवि कहता है—

कहाँ खोजने जाते हो
सुन्दरता औ' आनन्द अपार ?
इस मासलता मे है मूर्त्तित
अखिल भावनाओ का सार।

जन-साधारण मे लोक-परलोक तथा स्वर्ग और ईश्वर-सम्बन्धी जो धारणाएँ वद्धमूल हो गयी है वे उसके अकर्म्मण्य वैराग्य को सूचित करती है। मनुष्य की मन शक्ति को निर्म्माण की दिशा मे मोडने के लिए, उसमें रचनात्मक प्रतिभा जगाने के लिए, कवि कहता है—

जीवन की क्षण-धूलि रह सके जहाँ सुरक्षित,
रक्त-मास की इच्छाएँ जन की हो पूरित,
—मनुज प्रेम से जहाँ रह सके,—मानव ईश्वर!
और कौन सा स्वर्ग चाहिये तुझे धरा पर ?

जहाँ मनुष्य स्रष्टा (जीवन का रचयिता) बन जाता है वहाँ वही ईश्वर (स्वर्ग-निर्म्माता) हो जाता है। मनुष्य का स्वर्ग (सुन्दर, सुखद समाज) उसके अन्तर्बाह्य निर्म्माण मे है—

मुक्त जहाँ मन की गति, जीवन मे रति
भव-मानवता मे जन-जीवन-परिणति
सस्कृत वाणी, भाव, कर्म्म, सस्कृत मन,
सुन्दर हो जन-वास, वसन, सुन्दर तन।
—ऐसा स्वर्ग धरा मे हो समुपस्थित
नव मानव-सस्कृति-किरणो से ज्योतित।

धरा पर ही स्वर्ग का शिखर उठाने के लिए कवि सस्कृति को वसुमती के रूप मे देखता है। पृथ्वी की 'हरीतिमा' मे सस्कृति का ही हरित-भरित हर्षोत्फुल्ल हृदय है—

हँमते भू के अँग-अँग,
हरित-हरित रँग।

दूर्वा-पुलकित भूतल
नवोल्लसित तृण-तरु-दल,
इगित करते चञ्चल——
जीवन का जीवित रग
हरित-हरित रँग।

श्यामल, कोमल, शीतल
लोचन-प्रिय, प्राणोज्वल,
तन-पोषक, मन-सम्बल
सजल-सिन्धु-शोभित रँग
हरित-हरित रँग।

हरित वसन, तन-छवि सित,
जग-जीवन-प्रतिमा नित
हरती मानव का चित,
भव सम्कृति-भावित रँग,
हरित-हरित रँग।

इस चित्र मे प्रकृति सस्कृति वन गयी है।

प्रकृति की इमी प्राकृतिक प्रसन्नता को मनुष्य की सास्कृतिक सुषमा में साकार कर देने के लिए क्रान्ति सचेष्ट है। क्रान्ति जहाँ सृजनवती है वहाँ उसमे भी पृथ्वी की ही प्रतिच्छवि है—

तुम हरित-कञ्चु,
सित-ज्योति-किरण-छवि-वसना,
भव-सस्कृति की प्रतिमा ।

इस रूप में क्रान्ति 'पृथ्वी की स्वर्ग-मधुरिमा' है ।

मानवता ('मानवपन') को भी कवि पृथ्वी की ओर प्रेरित करता है—

इस धरती के रोम-रोम मे
भरी सहज सुन्दरता,
इसकी रज को छू प्रकाश
बन मधुर, विनम्र निखरता ।

जीवो की यह धात्री, इसकी
मिट्टी का उनका तन,
इस सस्कृत रज का ही प्रतिनिधि
हो सकता मानवपन ।

'ज्योत्स्ना' के एक गीत मे कवि ने कहा है—

न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर
देवता यही मानव शोभन,
अविराम प्रेम की बाँहो मे
है मुक्ति यही जीवन - वन्धन ।

'युगवाणी' की 'दो लडके' शीर्षक कविता की इन पक्तियो में भी यही सन्देश है—

सुन्दर लगती नग्न देह, मोहती नयन-मन,
मानव के नाते उर में भरता अपनापन ।

मानव के बालक है ये पासी के बच्चे,
रोम-रोम मानव, साँचे मे ढाले सच्चे,
अस्थि-मास के इन जीवो का ही यह जग घर
आत्मा का अधिवास न यह, वह सूक्ष्म अनश्वर।
न्योछावर है आत्मा नश्वर रक्त-मास पर,
जग का अधिकारी है वह, जो है दुर्बलतर।

भौतिकवादी होते हुए भी कवि अन्तर्जीवी मानव है। इसीलिए एक ओर उसने 'धिक मैथुन-आहार-यन्त्र' कह कर 'सकीर्ण भौतिकवादियो' की भर्त्सना की है, दूसरी ओर मध्ययुगो की रूढ नैतिकता के प्रति मानवता का असन्तोष भी प्रकट किया है। भूतवादी ओर अध्यात्मवादी दोनो को कवि जीवन का एक मर्म्मविन्दु देता है—

जीवो के प्रति आत्मवोध ही
मनुष्यत्त्व की परिणति।
विद्या-वैभव, गुण-विशिष्टता
भूषण हो मानव के,
जीव-प्रेम के बिना किन्तु ये
दूषण है दानव के।

'ग्राम्या' मे कवि ने कहा है—

ज्ञान वृथा है, तर्क वृथा, सस्कृतियाँ व्यर्थ पुरातन,
प्रथम जीव है मानव मे, पीछे है सामाजिक जन।
मनुष्यत्त्व के मान वृथा, विज्ञान वृथा रे दर्शन,
वृथा धर्म, गण-तन्त्र, उन्हे यदि प्रिय न जीव जनजीवन!

जीव-वोध से ही आन्तरिक एकता अथवा हार्दिक साम्य सम्भव है।

जीव मानव-हृदय के कोमल तारो को स्पर्श करता है, उसे सवेदनशील बनाता है ।

सस्कृति को कवि इसी जीव की स्वाभाविक सजीवता मे देखता है—

जीव-जनित जो सहज भावना
सस्कृति उससे निर्म्मित
चिर ममत्त्व की मधुर ज्योति—
जिससे मानव-उर ज्योतित ।

प्राकृतिक आकाक्षाओ की तरह ही सस्कृति भी एक नैसर्गिक चेतना है । अतएव, मनुष्य मे प्रकृतिजन्य दुर्बलता भी अनिवार्य्य है । कवि नैतिक और सास्कृतिक शासक नही है, इसलिए वह दुर्बलताओ के प्रति सहृदय है—

रक्त-मास का जीव विविध
दुर्बताओ से शोभित,
मनुष्यत्त्व दुर्लभ सुरत्त्व से,
निष्कलकता पीडित ।

दुर्बलताओ मे ही मनुष्य का मुख चन्द्रोज्ज्वल है ।

कवि जीवन का विकास एक स्वाभाविक क्रम से देखना चाहता है । उसे आदर्शो की सीमाओ से बाँधता नही, बल्कि मुक्तछन्द की तरह जीवन का मुक्त नियम देता है—

सीमाएँ आदर्श सकल,
सीमा-विहीन यह जीवन,
दोषो से ही दोष शुद्ध है
मिट्टी का मानवपन ।

पक मे ही पकज की तरह मानवता का विकास है ।

अनन्त सृष्टि की तरह जीवन की पूर्णता की भी सीमा नही है। पूर्णता के लिए अपूर्णता का तिरस्कार नही किया जा सकता। कवि कहना है—

व्याधि सभ्यता की है निश्चित
पूर्ण सत्य का पूजन,
प्राण-हीन वह कला, नही
जिसमे अपूर्णता शोभन ।

अति-आदर्शवादिता अथवा आध्यात्मिकता के ऊर्ध्वतल पर उठी हुई, परलोक को सँवारने वाली सस्कृति ने इहलोक के मनुष्य को पूँजीवाद की तरह ही दीन-हीन-कुरूप बना दिया। दोनो की परिणति श्रमजीवी मानव मे देखी जा सकती है—

भूख-प्यास से पीडित उसकी भद्दी आकृति
स्पष्ट कथा कहनी,—कैसी इस युग की सस्कृति !

इसी रूप-हीन का रूप-निम्मणि करन म सस्कृति की सजीवता है। कवि का कला-सम्बन्धी दृष्टिकोण भी सस्कृति की तरह रचनात्मक हो गया है, इसीलिए वह 'ललित कला' की सार्थकता 'कुत्सित, कुरूप जग के रूप-निम्मणि' मे मानता है। सौन्दर्य्य भी सवेदनशीलता से सृजनात्मक हो गया है, वह 'बाह्य वैरूप्य' और 'विरोध' मे सामञ्जस्य स्थापित कर 'अन्त सौन्दर्य' बन गया है। इस तरह 'युगवाणी' मे सस्कृति, कला और सोन्दर्य्य, सब एक-दूसरे के पर्य्याय बन गये है। यही नही, जीवन के सभी उपकरण ('युग-उपकरण') नवमानवता के निम्मणि मे एकसार हो गये है। जैसा कि 'ओस विन्दु' शीर्षक कविता मे कवि ने लिखा है—

ये पक्षी, मधुमक्खी, तितली,
जुगनू, मछली, रवि, ऋक्ष इन्दु,

निज नाम-रूप खो, जान-बूझ,
सब बने हुए है ओस-विन्दु।

—इसी तरह 'जगत् के रूप-नाम' भी 'जग-जीवन, से 'एकप्राण' होकर 'कलात्मक भाव' बन जाना चाहते है।

कवि राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक उपदेशक नही है, इसीलिए जड उपकरणो मे मनुष्य के सचेतन अन्त करण की रचना करता है—

जन-मन के मास-खण्ड पर मै
मुद्रित करता हूँ सत्य अमर।

वह अमर सत्य मनुष्य का भाव-सत्य है।

वर्त्तमान युग की अशान्ति मे कवि का यही आश्वासन है—

क्रान्ति पालतू पशु-सी होगी शान्त,
तर्क-बुद्धि के वाद लगेगे भ्रान्त।

•• •

जीवन के स्वर मे हो प्रकट महान
फूटेगा जीवन-रहस्य का मान।

कवि युग-कल्पक है। वह वर्त्तमान के आवरण को भेद कर भविष्य का साक्षात्कार कर रहा है—

रक्त-माँस की देह बन गई
जीवन-इच्छा निर्भर,
मधुर भावना, मदिर कल्पना
रुधिर-शिराएँ सुन्दर।
रिक्त पूर्ण हो, शून्य सर्व,
जीवन से आज गया भर,

निश्चल मरण स्पृहा से चञ्चल
कँप-कँप उठता थर् थर्।

सामन्त-युग और पूँजीवादी युग के बाद समष्टिवादी युग मे जिस नवीन सगुण-लोक का उदय होगा, कवि ने उसी की 'युगवाणी' सुनाई है। मध्ययुग की अपेक्षा भावी युग का सगुण इस अर्थ मे नवीन है कि वह मृत्यु को ही ध्रुव मान कर रक्त-मास की उपेक्षा नही करता। उसका दृष्टिकोण जीवन्त है।

वैज्ञानिक आधार पर भविष्य का निरूपण इस युग का नूतन जीवन-दर्शन है। 'युगवाणी' मे यह दर्शन चिन्तन-प्रधान है। 'परिवर्त्तन' के आध्यात्मिक दर्शन की भाँति इस नवभौतिक दर्शन को कवि काव्यत्त्व नही दे सका। इसका कारण यह है कि पन्त जी की कल्पना का क्षेत्र राज-नीतिक नही, प्राकृतिक और सामाजिक धरातल है। इसीलिए, 'जगत् के नाम-रूप' 'युगवाणी' की अपेक्षा 'ज्योत्स्ना' और 'स्वर्णधलि' की 'मानसी' मे 'कलात्मक भाव' बन सके है।

कलाकारिता

चित्र और सगीत में कवि की प्रतिभा छायावाद-युग से ही सधी आ रही है, अतएव 'युगवाणी' मे भी कलाकारिता का अभाव नही है। हाँ, उसकी चित्र-लिपि और स्वर-लिपि बदल गयी है। 'युगान्त' मे जिस नयी काव्य-कला का अस्फुट कैशोर्य्य था, 'युगवाणी' मे उसी का नव-परिणत तारुण्य है। उसकी दृष्टि और कण्ठ मे प्रसार और परिष्कार आ गया है।

'युगवाणी' मे कई नवीनताएँ है; जैसे, भाषा, छन्द और शली मे। भाषा की सरलता, छन्द की उन्मुक्तता और शली की स्वाभाविकता इन कविताओ मे देखी जा सकती है—'पुण्य प्रसू', 'चीटी', 'दो मित्र', 'दो लडके', 'आम्र विहग', 'ओस के प्रति', 'झझा मे नीम'

इत्यादि। इन कविताओ मे छायावाद की लोक-कला है, 'पल्लव'-काल के कवि का नूतन, सहज मन है।

मुक्तछन्द मे पन्त की अपनी विशेषता है। उसमे 'प्राणो की रिलमिल झिलमिल' है। पक्तियो मे विस्तार नही, पद-लाघवता है। जैसा कि चीटी के लिए कवि ने कहा है—'चलती लघुपद पल पल मिल जुल', इसी तरह पन्त के मुक्तछन्द मे पल-पल ही लघु पद बन गये है। 'ओस के प्रति' शीर्षक कविता मे मनोगति के अनुसार ही छन्द भी प्रवाहित है अन्तिम पक्तियो मे मानो हर्षातिरेक से कण्ठावरोध हो गया है। वाष्पाकुल (स्नेहार्द्र) कण्ठ से कवि इतना ही कह पाता है—

ओऽस!
उर-परितोष!
ओ स्पर्श-शीत!
छवि-प्रीत!
ओस!

'युगवाणी' मे कई तरह के चित्र है—रेखा-चित्र, रगीन चित्र, ध्वनि-चित्र, राग-चित्र, स्वर-चित्र, विचार-चित्र।

रेखा-चित्र के अन्तर्गत हम 'दो लडके' और 'दो मित्र' शीर्षक कविताएँ ले सकते है। इन कविताओ मे शुद्ध प्राकृत चित्र है (विशेषत 'दो मित्र' मे), सीधी-सादी ड्राइग है, किसी तरह की अलकृति या बनावट नही। ऐसे चित्रो के लिए 'इम्प्रेशनिस्ट' शब्द चल पडा है। हम इन्हे प्रकृत चित्र कह सकते है।

प्रकृत चित्रो मे रेखाओ के अतिरिक्त, रूप, रग, ध्वनि, गति और लय का भी समावेश हो सकता है। चित्र जब स्वय अपने व्यक्तित्त्व से व्यक्त होते है, कलाकार की भावना से अनुरञ्जित नही होते, तब वे प्रकृत चित्र

बन जाते है। इनमे जिस गुण की प्रधानता होती है उसीके अनुरूप उनका नामकरण हो जाता है, यथा, ध्वनि-चित्र, स्वर-चित्र, इत्यादि।

ध्वनि-चित्र की दृष्टि से 'झझा मे नीम' की ये पक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

सर् सर् मर् मर्
रेशम के-से स्वर भर,
घने नीम दल
लम्बे, पतले, चञ्चल,
श्वसन-स्पर्श से
रोम-हर्ष से
हिल-हिल उठते प्रतिपल।

इन पक्तियो मे ध्वनि के साथ आकार ओर अन्त करण भी है। अन्त मे चित्र गत्यात्मक हो गया है—

खिसक, सिसक, साँसे भर,
भीत, पीत, कृश, निर्बल,
नीम दल सकल
झर-झर पडते पल-पल।

'खिसक, सिसक साँसे भर' मे स-स के शब्दानुप्रास से समय की द्रुतगति अथवा अस्थिरता सूचित होती है।

गति और दृश्य की सजीवता 'गगा की साँझ' मे भी देखी जा सकती है—

अभी गिरा रवि, ताम्र कलश-सा,
गगा के उस पार,
क्लान्त पान्थ, जिह्वा विलोल
जल मे रक्ताभ प्रसार।

भूरे जलदो से धूमिल नभ,
विहग-छदो से बिखरे—
धेनु - त्वचा-ँ से सिहर रहे
जल मे रोओ-से छितरे।

पन्त जी ने कम-से-कम शब्दो मे अधिक-से-अधिक विशद चित्र अंकित किया है। 'गगा का प्रभात' मे दो शब्दो से ही एक सम्पूर्ण सृष्टि सजीव हो उठी है—'गलित ताम्रभव भृकुटिमात्र रवि।' यह अरुणोदय का दृश्य है—'गलित ताम्रभव' मे लालिमा का विस्तार और उसका ताम्रवर्ण है, 'भृकुटिमात्र रवि' मे भ्रू-रेखा की तरह लालिमा की तिरछी लकीर है।

पन्त जी के लिए एक-एक शब्द जीवित साँस है, उनमे भाषा का अन्त सञ्चार है, इसीलिए शब्द, स्पन्दन बन गये है, यथा—

हरित भरित
पल्लवित मर्म्मरित
कुञ्जित गुञ्जित
कुसुमित
भू को।
कोमल
चञ्चल
शाद्वल
अञ्चल,—
कल कल
छल छल
चल-जल-निर्मल,—

ये शब्द केवल चित्रही नही खीचते, मनुष्य के राग-तत्त्वको भी जगाते है।

'युगवाणी' मे भी पन्त जी सूक्ष्मतम कलाकरिता की ओर है। उनकी कलाकारिता शब्दो मे ही नही है, वह अक्षर तक पहुँच गयी है। देखिय, एक अक्षर भी कितना मर्म्म-व्यञ्जक हो सकता है—

अन्तर-जग ही बहिर्जगत
बन जावे वीणापाणि, इ !

भाव की दृष्टि से 'वीणापाणि' के बाद 'इ' माता के साथ आत्मजा की तरह है, उससे सम्बोधन मे स्वाभाविकता आ गयी है। कला की दृष्टि से 'णि' के बाद 'इ' पद की आत्मा को स्वर-प्रवाह दे देती है। 'इ' उत्स की तरह फूट पडी है।

'युगवाणी' किसी कोरे कार्यकर्त्ता की वक्तृता नही है, वह एक कवि की कला-कृति है, इसीलिए वास्तविकता को भी उसने यथासम्भव कविता बना दिया है। इसका सरस उदाहरण 'घननाद' है—

ठङ्-ठङ्-ठन !
लौह नाद से ठोक पीट घन
निर्मित करता श्रमिको का मन,
ठङ्-ठङ्-ठन !

इसकी टेक लय के ताल पर कर्म-क्लिष्ट श्रमजीवियो को जीवन का मधुर सगीत प्रदान करती है—

अग्नि स्फुलिगो का कर चुम्बन
जाग्रत करता दिग्दिगन्त घन,—
'जागो, श्रमिको, बनो सचेतन,
भू के अधिकारी है श्रमजन।'
ठ ङ्-ठङ्-ठन !

'घननाद' श्रमिको का सुन्दर समूह-गीत (कोरस) बन सकता है।

पन्त जी साहित्य मे उपयोगितावाद (वस्तुवाद) को स्वीकृति दे चुके है। 'घननाद' मे 'युगवाणी' का वस्तु-सत्य घनीभूत है—

लौह-काष्ठ-मय, रक्त-मास-मय
वस्तु-रूप ही सत्य चिरन्तन।

किन्तु श्रमिक 'लौह-काष्ठ' नही है, वह 'रक्त-मास-मय' सचेतन प्राणी है, इसीलिए उसके 'श्रम-कण' जीवन की सजीव शोभा से 'चिर-लावण्यपूर्ण' हो जाते है।

कला का सम्बन्ध उपयोगिता से हो सकता है, किन्तु वही उसकी सीमा नही है। समाज मे व्यक्ति के व्यक्तित्त्व की तरह कला का भी उपयोगिता से परे स्वतन्त्र स्थान है। यही पर कला निरुद्देश्य है, अपना उद्देश्य वह स्वय है। जहाँ कला का हेतु (उद्देश्य) अन्यत्र नही रहता, वहाँ कला स्वान्त-सुखाय है। पन्त जी कला को इस रूप मे भी अगीकार करते है—

सिहर अमर जीवन-कम्पन से
खिल-खिल अपने आप,
केवल लहराने को लहराता
मृदु लहर - कलाप।
('गगा का प्रभात')

इसी तरह स्वान्त सुखाय कला का भी अपना एक मौलिक आनन्द है।

कला मे उपयोगिता का दृष्टिकोण बाह्य है, उसकी स्वतन्त्रता का दृष्टिकोण आन्तरिक। छायावाद के बाद पन्त जी ने उसे दोनो दृष्टिकोणो से अपनाया है, इसीलिए 'युगवाणी' मे वह 'गीत-गद्य' बन गयी है। गीत-अश (भावात्मक अश) चित्रण की ओर है, गद्य-अश (प्रेरणात्मक अश) चिन्तन अथवा सैद्धान्तिक विचार की ओर।

'युगवाणी' की इन कविताओ मे विचार और भावना, चिन्तन और चित्रण का एकत्रीकरण है—'चीटी', 'आम्र विहग', 'गगा का प्रभात', 'गगा की साँझ', 'मधु के स्वप्न', 'पलाश के प्रति', 'कैलिफोर्निया पॉपी', 'बदली का प्रभात', इत्यादि।

भावना के साथ विचार जहाँ चिन्तन बन कर सम्बद्ध होता है वहाँ कविता मे समरस हो जाता है। ऊपर की प्राय सभी कविताओ मे चित्रण ओर चिन्तन की समरसता है। एकाध कविता मे (जैसे 'चीटी' ओर 'गगा की साँझ' मे) विचार चिन्तन नही बन सका, इसीलिए कविता बुद्धि से बोझिल हो गयी है। 'गगा की साँझ' तो स्पष्ट रूप से एक मे दो कविता जान पडती है—चित्रात्मक और सैद्धान्तिक। 'बहते तरु क्षितिज, अवनि तल' के साथ यह कविता अपनी भावना मे पूर्ण हो जाती है। इसके बाद वह वक्तृता बन गयी है।

पन्त की कविता मे 'गुञ्जन'-काल से चित्रण और चिन्तन का आरम्भ हुआ। 'एक तारा' और 'नौका-विहार' मे उनका यह नवीन प्रयोग देखा जा सकता है। एकान्तवासी कवि ज्यो-ज्यो सामाजिक विषमता का भुक्त-भोगी होता गया, त्यो-त्यो वस्तु-जगत् की नीरसता भी गद्य बन कर उसकी कविता मे सम्मिलित होती गयी। किन्तु कवि का स्वारस्य उसका स्वाभाविक गुण है, इसीलिए युग की शुष्कता मे भी उसकी काव्य-सुषमा सूख नही गयी। कवि ने कहा है—

> मेरे मन की आवेश शान्ति
> गीतो मे पडती बिखर-बिखर।

इधर की रचनाओ मे कवि ने गीतो मे ही शान्ति पायी है।

'मानसी', 'उत्तरा' और 'युगपथ' मे कवि के हृदय-कुञ्ज का गीत-गुञ्ज है।

'युगवाणी' मे भावना, विचार और चिन्तन परस्पर सम्बद्ध भी है और कवि की मानसिक स्थिति के अनुसार विभक्त भी। 'पुण्य प्रसू', 'पलाश' और 'ओस के प्रति' पूर्णत भावात्मक कविताएँ है। चिन्तन की दृष्टि से 'जीवन-तम' अनुपम है। उसमे चित्रचारुता है। इनके अतिरिक्त अनेक कविताएँ सैद्धान्तिक है। ऐसी कविताओ के सम्बन्ध मे कवि का कहना है कि, "भाषा के अधिक बुद्धिगर्भित (ऐब्स्ट्रेक्ट) हो जाने के कारण मेरी अलकारिता (कलाकारिता) अभिव्यक्ति-जनित हो गयी है। ' 'युग उपकरण', 'नव सस्कृति' आदि रचनाएँ मनोरम विचार-चित्र उपस्थित करती है।" विचार-चित्र से कवि का अभिप्राय यह है कि उनमे 'विश्लेषण का सौन्दर्य्य' है।

अस्तु। युगो का जीवन-दर्शन, चाहे वह आध्यात्मिक हो या भौतिक, उसके लिए कवि के शब्दो मे हमारी यही कामना है—

नीरस दर्शन दर्शनीय—
मानव-वपु पा कर मुग्ध करे भव।

काशी,
१८।५।५०

ग्राम्या

"सुलभ यहाँ रे कवि को जग मे
युग का नही सत्य शिव सुन्दर,
कँप-कँप उठते उसके उर की
व्यथा-विमूर्च्छित वीणा के स्वर।"

पन्त जी लिखते है—"युगवाणी के दृष्टिकोण से यदि हम अपने ग्रामीणो के जीवन को देखे तो आप गाँवो को शान्ति और प्राकृतिक सुन्दरता की रगस्थली नही पायेगे। न वहाँ आपको स्वर्ग का सुख ही कही देखने को मिलेगा जैसा कि आप प्राय द्विवेदी-युग के कवियो के ग्राम-वर्णन मे पढते आये है। सच बात तो यह है कि 'ग्राम्या' की निम्न पक्तियाँ ही हमारे ग्राम-जीवन का सच्चा चित्र है—

यह तो मानव लोक नही रे, यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम सभ्यता सस्कृति से निर्वासित!
अकथनीय क्षुद्रता, विवशता भरी यहाँ के जग मे
गृह-गृह मे है कलह, खेत मे कलह, कलह है मग मे!
प्रकृति-धाम यह तृण-तृण कण-कण जहाँ प्रफुल्लित जीवित,
यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन्मृत।"

पन्त जी ने 'ग्राम्या' मे जिस ग्राम-जीवन को देखा है वह कृत्रिम अर्थशास्त्र का दुष्परिणाम है। द्विवेदी-युग के कवियो ने प्रकृतिस्थ युग के ग्रामीण जीवन को देखा था, उस समय तक नगरो की आर्थिक राजनीति ने गाँवो

को ग्रस नही लिया था, जीवन मे सामाजिक सौष्ठव शेष था। उस युग का सास्कृतिक और प्राकृतिक सौन्दर्य्य द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कवि की इन पक्तियो मे देखा जा सकता है—

> गोपद-चिह्नित आँगन-तट है,
> रक्खे एक ओर जल-घट है।
> खपरैलो पर बेले छाई,
> फूली-फली, हरी, मन-भाई।

इस ग्राम्य चित्र मे सस्कृति और प्रकृति का स्वाभाविक साहचर्य्य है।

गाँव अभी तक 'प्रकृति-धाम' ही है, किन्तु आर्थिक दुश्चिन्ता के कारण नागरिको की तरह ग्रामवासियो का सम्बन्ध भी प्रकृति से विच्छिन्न हो गया है। 'ग्राम्या' मे कवि ने कहा है—

> यह रवि-शशि का लोक,—जहाँ हँसते समूह मे उडुगण,
> जहाँ चहकते विहग, बदलते क्षण-क्षण विद्युत-प्रभ घन।
>
> यहाँ वनस्पति रहते, रहती खेतो की हरियाली,
> यहाँ फूल है, यहाँ ओस, कोकिला, आम की डाली!
> ये रहते है यहाँ,—और नीला नभ, बोई धरती,
> सूरज का चौडा प्रकाश, ज्योत्स्ना चुपचाप विचरती!

प्रकृति और उसके चिरसखाओ (ग्राम-मनुजो) के बीच यह मौन असहयोग क्यो? यह दुराव क्यो? इसका कारण यन्त्र-युग का अर्थ-शास्त्र है। मनुष्य और प्रकृति के बीच फिर से सम्बन्ध जोडने के लिए, किसी ऐसे औद्योगिक माध्यम (आर्थिक माध्यम) की आवश्यकता है जिसमे प्रकृति की अनुरूपता हो।

सामाजिक स्थिति

पन्त जी ने 'ग्राम्या' की रचना सन् '३९-४० मे की थी। वह दूसरे महायुद्ध का आरम्भ-काल था। उस युद्ध के बाद से विश्व-व्यापी अकाल और आर्थिक गत्यवरोध चारो ओर दिखाई दे रहा है। गाँवो और नगरो मे कोई भेद नही रह गया है, दोनो एक-से ही अर्थ-ग्रस्त (स्वार्थ-ग्रस्त) हो गये हैं। सब जगह 'अकथनीय क्षुद्रता' फैली हुई है। इन थोडे वर्षो मे ही इतिहास क्या से क्या हो गया! 'ग्राम्या' का ग्राम-चित्र विश्व-चित्र बन गया!

'ग्राम्या' मे कवि ने क्षुद्र चेतना, व्यक्तिगत राग-द्वेष, लघु स्वार्थ, अधिकार-तृष्णा, और जीवन के प्रति बर्बर दृष्टिकोण के कारण सारे भारत को 'एक महाग्राम' कहा है। इस दृष्टि से क्या सारा ससार 'ग्रामीण' नही हो गया है? सर्वत्र 'आदिम मानव' ही तो निवास कर रहा है!

शरीर से सचल और भीतर से निश्चल, निश्चेतन ससार के सभी 'कठपुतले' मनुष्यो के लिए क्या यही नही कहा जा सकता—

किस महारात्रि-तम मे निद्रित
ये प्रेत?—स्वप्नवत् सञ्चालित!
किस मोह-मन्त्र से रे कीलित
ये देव-दग्ध, जग के पीडित!!

ये मानव नही, जीव शापित,
चेतना-विहीन, आत्म-विस्मृत!

('ग्राम्या')

पन्त जी सामाजिक पतन का कारण व्यक्तिवाद को मानते हैं। आर्थिक दृष्टि से वे यन्त्रो का सामूहिक सदुपयोग चाहते हैं। आर्थिक दृष्टि से ही नही, सास्कृतिक दृष्टि से भी वे यन्त्रो को उपयोगी समझते हैं—

जड़ नहीं यन्त्र, वे भाव-रूप, संस्कृति-द्योतक;
वे विश्व-शिराएँ, निखिल सभ्यता के पोषक।
('ग्राम्या')

हमें मध्ययुगों का व्यक्तिवाद वाञ्छनीय नहीं है, किन्तु आधुनिक युग का यन्त्र-प्रेम भी अभीष्ट नहीं है। यन्त्र किसी भी वर्ग, किसी भी तन्त्र के हाथ में क्यों न हों, उनके द्वारा मनुष्य और प्रकृति का सीधा सजीव सम्बन्ध नहीं स्थापित हो सकता। यन्त्रों में मनुष्य और प्रकृति की संगति नहीं है। दोनों की सुसंगति से ही जीवन संगीत बन सकता है।

यन्त्रों से मनुष्य प्रकृति का शोषक हो जाता है। जिस परिमाण में प्रकृति का शोषण होगा उसी परिमाण में अकाल फैलेगा, मनुष्य मनुष्य का शोषण करेगा। व्यक्तिवाद के होते हुए भी मध्ययुगों में जो सांस्कृतिक उत्थान हुआ था, उसका कारण यह है कि उस युग में प्रकृति सुरक्षित थी। साम्राज्यों और सामन्तों ने मनुष्य का शोषण किया, किन्तु संस्कृति के लिए सृष्टि की सञ्जीवनी शक्ति (प्रकृति) बनी हुई थी। वस्तुतः प्रकृति ही संस्कृति और कला का मूल है। सत्य-शिव-सुन्दर मानवी चेतना में प्रकृति का ही मनो-विकास है।

युगों के आर्थिक शोषण के कारण गाँवों का जीवन सूख गया। 'वीणा' की ये पंक्तियाँ सहसा याद आ जाती हैं—

सखी ! सूखी बिन्दाल—
सम्मुख बहती है वह नीरव,
निःसलिला, कङ्काल !
गिरी-बिखरी, स्मृति-सी प्राचीन,
अतृप्त, अकथ, वियोग-सी दीन !
अचिर-लालसा-सी निर्बल वह,
वैभव-सी कङ्काल !

समय के पद-चिह्नो-सी क्षीण,
स्वप्न-ससृति-सी आज विलीन!

शब्दश यही स्थिति सम्पूर्ण ग्रामीण विश्व की है। सभी की जीवन-धारा सूख गयी है, अच्छे दिनो की स्मृति 'समय के पद-चिह्नो-सी क्षीण' हो गयी है। जीवन के अभाव मे ककाल की तरह रूढियाँ ही समाज मे उभरी हुई है। प्रकृति के धाम अब 'रूढि-धाम' रह गये है। कवि सहानुभूति-पूवक कहता है--

इनमे विश्वास अगाध, अटल,
इनको चाहिये प्रकाश नवल,
भर सके नया जो इनमे बल!

('ग्राम्या')

बौद्धिक सहानुभूति

'ग्राम्या' के 'निवेदन' मे पन्त जी ने अपनी सहानुभूति को 'बौद्धिक' कहा है। उनके कथनानुसार "बौद्धिकता हार्दिकता ही का दूसरा रूप है, वह हृदय की कृपणता से नही आती।" पन्त जी की बौद्धिक सहानुभूति मे एक चिकित्सक की-सी स्वस्थ सवेदनशीलता है, वह रोगी के साथ स्वय भी रुग्ण नही हो जाता, बल्कि रोग का निदान और उपचार अपने विवेक से करता है। विवेक के अभाव मे सहानुभूति दयामात्र (निष्क्रिय करुणा) रह जाती है। पन्त जी लिखते है--"जहाँ आलोचनात्मक दृष्टि की आवश्यकता है, वहाँ केवल भावुकता और सहानुभूति से कैसे काम चल सकता? वह तो ग्रामीणो के दुर्भाग्य पर आँसू बहाने या पराधीन, क्षुधा-ग्रस्त किसानो को तपस्वी की उपाधि देने के सिवा हमे आगे नही ले जा सकती। इस प्रकार की थोथी सहानुभूति या दया-काव्य (पिटी पोएट्री) से मैंने 'वे आँखे', 'गाँव के लडके', 'वह बुड्ढा', 'ग्राम-वधू', 'नहान' आदि कविताओ

को बचाया है, जिनमे वर्त्तमान प्रणाली के शिकार, ग्रामीणो की दुर्गति का वर्णन होने के कारण ये बाते सहज ही मे आ सकती थी।"

पन्त जी ने मनुष्य से नही, उसकी सामाजिक व्याधियो से घृणा की है। ग्रामीणो के साथ उनकी हार्दिक सहानुभूति है, किन्तु उस प्रणाली से उन्हे बौद्धिक असन्तोष है जिसने ग्रामीणो को दीन-हीन, दयनीय बना दिया। पन्त जी कहते है—"मैने ग्राम-जनता को 'रक्त माँस के जीवो' के रूप मे नही देखा है, एक मरणोन्मुखी सस्कृति के अवयव-स्वरूप देखा है, और ग्रामो को सामन्त-युग के खँडहर के रूप मे।"—इन शब्दो मे इतिहास का भविष्य देखा जा सकता है, दूसरे महायुद्ध के बाद सामन्त-युग समाप्त हो रहा है, उसी के साथ-साथ पूँजीवाद भी। तीसरे युद्ध के बाद यन्त्रो का भी भाग्य स्पष्ट हो जायगा।

सास्कृतिक दृष्टि

जनता को उसकी दयनीय स्थिति से उबारने के लिए पन्त जी ने प्रणाली बदलने का सकेत किया है, क्योकि व्यक्ति अपने युग की प्रणाली का एक अगमात्र है। 'दया' से नही, सामूहिक (सामाजिक) जीवन से प्रणाली बदली जा सकती है,अपनी 'पाँचकहानियाँ' के 'पानवाला' मे पन्त जी लिखते है—"आत्म-सतोष के लिए धनी युवको के पास जाना पीताम्बर की अनुभव-शून्यता एव भ्रम था। वे इस काम के लिए उससे भी निर्धन थे। यह काम किसी एक व्यक्ति के करने का था भी नही। इसका सम्पादक या सञ्चालक हो सकता है हमारा सुव्यवस्थित सामाजिक या सामूहिक व्यक्तित्त्व।"

'ग्राम्या' मे पन्त जी ने इसी सामूहिक व्यक्तित्त्व के जागरण की प्रेरणा दी है—

घुसे घरौदो मे मिट्टी के, अपनी-अपनी सोच रहे जन,
क्या ऐसा कुछ नही, फूँक दे जो सबमे सामूहिक जोवन ?

पन्त जी का सामूहिक दृष्टिकोण 'ग्राम्या' मे भी मार्क्सवादी है। इसी दृष्टि से वे दु ख-दैन्य-पूण, 'अन्धकार की गुहा सरीखो' आँखो को देख कर कहते है—

वर्ग-सभ्यता के मन्दिर के
निचले तल की वे वातायन !

किन्तु वर्ग-चेतना पन्त जी की सामाजिक सीमा नही है। वर्ग-चेतना का दृष्टिकोण आर्थिक (राजनीतिक) है। 'ग्राम्या' का दृष्टिकोण मुख्यत सास्कृतिक (मानसिक) है। तुलनात्मक दृष्टि से पन्त जो कहते है—"सर्वहारा (मशीन के सम्पर्क मे आई हुई जनता) की बीमारी उसके राजनीतिक वर्ग-सस्कार है, जिनका लारेस ने चित्रण किया है। अपने देश के जन-समूह की बीमारी उससे कही गहरी, आध्यात्मिकता के नाम पर रूढि-रीतियो एव अन्ध-विश्वासो के रूप मे पथराये हुए (फासिलाइज्ड) उनके सास्कृतिक सस्कार है।"—इस दृष्टि से न केवल 'ग्राम्या' की, बल्कि विश्व-जीवन की भी समस्या आन्तरिक है, कवि इसी ओर ध्यान दिलाता है—

राजनीति का प्रश्न नही रे आज जगत् के सम्मुख,
अर्थ-साम्य भी मिटा न सकता मानव-जीवन के दुख।
व्यर्थ सकल इतिहासो, विज्ञानो का सागर मन्थन,
यहाँ नही युगलक्ष्मी, जीवन-सुधा, इन्दु जन-मोहन !
आज बृहत् सास्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,
खण्ड मनुजता को युग-युग की होना है नव-निर्म्मित।
विविध जाति, वर्गो, धर्म्मों को होना सहज समन्वित,
मध्ययुगो की नैतिकता को मानवता मे विकसित।
('ग्राम्या')

कवि का अभिप्राय यह है कि बिना सास्कृतिक विकास (अन्तर्विकास) के, केवल बाह्य प्रयत्नो (आर्थिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक प्रयत्नो) से विश्व का कल्याण सम्भव नही है। युग की प्रगति में जब सबके सास्कृतिक पग एक साथ उठेगे तभी जन-हित हो सकेगा।

कवि देख रहा है कि आज जो जन-क्राति हो रही है वह उन परिस्थितियो को प्रस्तुत कर रही है जिनसे मनुष्य के मध्यकालीन सास्कृतिक हृदय को नवीन आत्मा मिलेगी—

बहु जाति धर्म औ' नीति कर्म्म मे पा विकास
गत सगुण आज लय होने को , औ' नवप्रकाश
नवस्थितियो के सर्जन से हो अब शनै उदय
बन रहा मनुज की नव आत्मा, सास्कृतिक हृदय।

('ग्राम्या')

व्यक्तिवाद के कारण मध्ययुगो मे सस्कृति का सगुण रूप लोकोत्तर पुरुषो मे केन्द्रित था और पूँजीवादी युग मे 'मानवी सस्कृतियाँ वर्ग-चयन से पीडित' चली आ रही है। कवि कहता है कि सक्रान्ति-काल के बाद सास्कृतिक गुण वर्गो और व्यक्तियो मे सीमित न रह कर जन-जन मे मूर्त्त होने जा रहा है—

आज मानव जीवन का सत्य
धर रहा नये रूप-आकार,
आज युग का गुण है जन-रूप,
रूप-जन सस्कृति के आधार!

पन्त जी सस्कृति को मनुष्य के स्थूल जीवन मे सगुण देख रहे है—

स्थूल, जन आदर्शो की सृष्टि
कर रही नव-सस्कृति निर्म्माण,

स्थूल युग का शिव, सुन्दर, सत्य,
स्थल ही सूक्ष्म आज, जन-प्राण !
('ग्राम्या')

सगुण तो अपनी साकारता मे स्थूल ही होता है। किन्तु नवजीवी युग मे उसकी नवीनता यह होगी कि वह मध्यकाल की तरह मनुष्य के पारलौकिक प्रयत्नो मे नही, बल्कि लौकिक जीवन मे प्रत्यक्ष होगा।

डी० एच० लारेन्स के प्रसग मे पन्त जी ने लिखा है--"लारेन्स जीवन के मूल्यो के सम्बन्ध मे प्राणिशास्त्रीय मनोविज्ञान (बायोलाजिकल थाट) से प्रभावित हुआ है, मै ऐतिहासिक विचार-धारा से, जिसका कारण स्पष्ट ही है कि मैं पराधीन देश का कवि हूँ। *लारेन्स जहाँ द्वन्द्व-पीडन (सेक्स रिप्रेशन) से मुक्ति चाहता है, मैं राजनीतिक आर्थिक शोषण से।"

यद्यपि पन्त जी की प्रगतिशील रचनाओ का अन्तर्मुख सास्कृतिक है, तथापि सामाजिक समस्याओ के रूप मे प्राणिशास्त्र, अर्थशास्त्र और द्वन्द्व-पीडन भी सस्कृति के साथ सम्बद्ध है। 'युगवाणी' मे मार्क्स का आर्थिक दृष्टिकोण तो है ही, 'अवचेतन' मे फ्रायड का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण भी है। नारी की अधोगति या जागृति पर भी दृष्टिपात किया गया है। 'ग्राम्या' के 'द्वन्द्व-प्रणय' मे 'सेक्स रिप्रेशन' है, 'सौन्दर्य्य-कला' मे प्राणिशास्त्र और अर्थशास्त्र का सयोजन है।

इस तरह पन्त जी का सास्कृतिक हृदय अतीन्द्रिय नही है, वह सदेह है, उसमे जीव का जीवन है---'जीव-जनित जो सहज भावना, सस्कृति उससे निर्म्मित।' ऐसी सस्कृति मे जीव की नैसर्गिक दुर्बलता भी अपने स्थान पर सार्थक है। कवि कहता है---

---

*देश स्वाधीन हो गया, किन्तु 'उत्तरा' की प्रस्तावना मे पन्त जी का मन्तव्य यह है कि "गान्धीवाद का सास्कृतिक चरण अभी पगु और निष्क्रिय पडा हुआ है।"

वह भी क्या मानव-जीवन का लाञ्छन ?
वह, मानव के देव-भाव का वाहन !

('युगवाणी')

अतएव,

'मत कहो मास की दुर्बलता हे जीव-प्रवर !'

('ग्राम्या')

पन्त जी सस्कृति को भौतिकवादी दृष्टि से देखते हुए भी उसके आध्यात्मिक पक्ष के प्रति जागरूक है। यही वे गान्धी जी के श्रद्धालु और जिज्ञासु है। 'ग्राम्या' के 'बापू' मे वे पूछते है—

चरमोन्नत जग मे जब कि आज विज्ञान, ज्ञान,
बहु भौतिक साधन, यन्त्र, यान, वेभव महान,
सेवक है विद्युत-वाष्प-शक्ति, धन बल नितान्त,
फिर क्यो जग मे उत्पीडन ? जीवन यो अशान्त ?

कवि गान्धीवादी दृष्टि से इस प्रश्न का उत्तर स्वय दे लेता है—

मानव ने पायी देश-काल पर जय निश्चय,
मानव के पास नही मानव का आज हृदय !
चर्वित उसका विज्ञान, ज्ञान वह नही पच्चित
भौतिक मद से मानव-आत्मा हो गयी विजित !
. . . .
चाहिये विश्व को आज भाव का नवोन्मेष,
मानव-उर मे फिर मानवता का हो प्रवेश !

('ग्राम्या')

'विज्ञान-ज्ञान' के सामूहिक सदुपयोग के लिए कवि मार्क्सवाद के साथ है और उसे 'भौतिक मद' से उबारने के लिए, उसमे मानवता का 'भावोन्मेष' करने के लिए गान्धीवाद के साथ है।

'ग्राम्या' के 'महात्मा जी के प्रति' शीर्षक कविता मे कवि ने दिखलाया है कि गान्धी जी भाव-सत्य को लेकर चले थे। कवि कहता है—

> वस्तु-सत्य का करते भी तुम जग मे यदि आवाहन,
> सबसे पहिले विमुख तुम्हारा होता निर्धन भारत,
> मध्ययुगो की नैतिकता मे पोषित-शोषित जनगण
> बिना भाव-स्वप्नो को परखे कब हो सकते जाग्रत ?

किन्तु गान्धी जी वस्तु-सत्य को ही लेकर चले थे, वस्तु के लिए वे भाव को छोड सकते थे। उनका दृष्टिकोण उपयोगितावादी था, इसीलिए उन्होने बगीचो को खेती पर, फूलो को अन्न पर न्यौछावर कर दिया। फिर भी उनका वस्तु-सत्य भावोत्पादक था,वह प्राकृतिक दिशा मे था। अलसी, तीसी और मटर के फूलो को देख कर मनुष्य की भाव-चेतना खिल उठती, उसके हृदय से उद्यानो की स्मृति नि शेष नही हो जाती, अनुकूल समय पाकर शोभा का ससार (उद्यान) वह पुन रच लेता।

गान्धी जी का वस्तु-सत्य अध्यात्म और काव्य की ओर था, मार्क्स का वस्तु-सत्य इतिहास और विज्ञान की ओर। पन्त जी 'महात्मा जी के प्रति' कहते है—

> किये प्रयोग नीति-सत्यो के तुमने जन-जीवन पर,
> भावादर्श न सिद्ध कर सके सामूहिक जीवन हित।

इसका कारण यह कि गान्धी जी का उद्योग (ग्रामोद्योग) तो सगुण (भावादर्श) की दिशा मे था, किन्तु उनका कर्म्मयोग (अनासक्त योग) निर्गुण की दिशा मे। उनके कर्म्मयोग मे नैतिकता की पराकाष्ठा है, आसक्ति के लिए अति-निषेध है। 'युगवाणी' के शब्दो मे गान्धीवाद के लिए भी यही कहा जा सकता है—'बॉध दिया मानव ने पीडित पशु-तन।'

नैतिक बन्धनो का विरोध निर्बन्ध (उच्छृंखल) होकर भी किया जा

सकता है और जीवन से छन्दोवद्ध (सुश्रृखल) होकर भी। एक मे दायित्व-शून्यता है, दूसरे में रचनात्मक शक्ति ।

नैतिक बन्धनो का विरोध छायावाद (सगुणवाद) ने भी रचनात्मक दृष्टि से किया। यहाँ कविगुर रवीन्द्रनाथ की याद आती है, जिन्होने कहा है—"वैराग्य-साधन से जो मुक्ति होती है वह मुझे नही चाहिये। मै तो असख्य (सासारिक) बन्धनो के बीच मे पडा हुआ महानन्दमय (सच्चिदानन्दमय) मुक्ति का स्वाद पाऊगा। दृश्य, गन्ध, गान में जो कुछ भी आनन्द है उनके बीच मुझे तुम्हारा ही आनन्द उपलब्ध होगा, तब मेरा मोह ही मुक्तिरूप मे खिल उठेगा, मेरा प्रेम ही भक्तिरूप मे सफल हो जायगा।"

'गुञ्जन' मे 'तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन' का सन्देश देनेवाले पन्त जी भी दृश्य, गन्ध और गान के कवि हैं।

पन्त जी का भावादर्श कृष्ण के युग का है, यह 'ज्योत्स्ना' के इस गीत से सुस्पष्ट है—

हास-हास, लास-लास,
साँस-साँस मे सुवास।
दल-दल मे रग-रग,
पल-पल मे नव उमग!
कलि-कलि मे नव-विकास
जग चिर जीवन-निवास।
हिल हँस ले सग-सग,
जीवन चल-जल-तरग!

कृष्ण के युग मे भी—
'जग जीवन नित नव-नव,
प्रतिदिन, प्रतिक्षण उत्सव!'—था।

कृष्ण-युग का भावादर्श भी 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की सामाजिक क्रान्ति (नैतिक अथवा सास्कृतिक क्रान्ति) की ओर था। पन्त जी ने उस युग को बडी मुग्धता से देखा है। वे लिखते है—"मर्य्यादा-पुरुषोत्तम के स्वरूप मे कृषि-जीवन के आचार-विचार, रीति-नीति-सम्बन्धी सात्विक चाँदी के तारो से बुने हुए भारतीय सस्कृति के बहुमूल्य पट मे विभवमूर्त्ति कृष्ण ने सोने का सुन्दर काम कर उसे रत्नजटित गजसी बेलबूटो से अलकृत कर दिया। कृष्ण-युग की नारी भी हमारी विभव-युग की नारी है। वह 'मनसा-वाचा-कर्मणा जो मेरे मन राम' वाली एकनिष्ठ पत्नी नही, लाख प्रयत्न करने पर भी उसका मन वशीध्वनि पर मुग्ध हो उठता है, वह विह्वल है, उच्छ्वसित है। सामन्त-युग की नैतिकता के तग अहाते के भीतर श्रीकृष्ण ने विभव-युग के नर-नारियो के सदाचार मे भी क्राति उपस्थित की है। श्रीकृष्ण की गोपियाँ अभ्युदय के युग मे फिर से गोप-सस्कृति का लिबास पहनती हुई दिखाई देती है।"

पन्त जी भी भावी भारत के अभ्युदय-काल के कवि है। वे नवीन इन्द्रियो मे सगुण को नव-जीवन दे रहे ह। वर्त्तमान तो एक 'मरणासन्न वास्तविकता' है, इसीलिए उनका सास्कृतिक हृदय भविष्य के 'सुदूर मनो-नभ मे' विहार करता है। उनके जैसे युग-द्रष्टा कलाकार के लिए भी यही कहा जा सकता है—'देख रहे मानव-भविष्य तुम मनश्चक्षु बन अपलक।'

पन्त जी का भावादर्श तो कृषि-युग (कृष्ण-युग) का है, किन्तु उसे वे यन्त्र-युग मे रोपना चाहते है। पन्त जी गान्धी जी के राम-युग मे नही है, यन्त्र-युग मे आकर वे अपने को कृष्ण-युग से भी अलग कर लेते है। कहते है—"जिस प्रकार कृषि-युग ने पशुजीवी-युग* के मनुष्य की अन्त-

* पन्त जी ने इतिहास का मौलिक ढग से विवेचन किया है, जिसे 'ग्राम्या' के 'ग्राम देवता' मे देखा जा सकता है।

बाह्य चेतना मे प्रकारान्तर उपस्थित कर दिया उसी प्रकार यन्त्र का आगमन सामन्त-युग की परिस्थितियो मे आमूल परिवर्त्तन लाने की सूचना देता है। सामन्त-युग मे भी समय-समय पर छोटी-बडी विश्लिष्ट युग की गण-सस्कृतियो का समन्वय हुआ है तथा सामाजिक, राजनैतिक, सास्कृतिक और धार्मिक क्रान्तियाँ हुई है, किन्तु उन सबके नैतिक मानो और आदर्शो को सामन्त-युग की परिस्थितियो ही ने प्रभावित किया है। भविष्य मे इस प्रकार के सभी प्रयत्नो से सम्बन्ध रखने वाले मौलिक सिद्धान्तो और मानो को यन्त्र-युग की आर्थिक एव सामाजिक परिस्थितियाँ निर्धारित करेगी।"

कृषि-युग 'ग्राम्या' के किसानो का युग था, यन्त्र-युग 'युगवाणी' के 'श्रमजीवी' का है। कृषि-युग मे भावादर्श हलधर (बलराम) के सहयोग से सम्भव हो सका था, अब वह यन्त्र-युग के यन्त्रधरो (मजदूरो) से सुलभ होगा ?

भाव-सृष्टि

'युगवाणी' मे मार्क्सवाद के सद्य अध्ययन की उष्णता थी, 'ग्राम्या' मे सुस्थिर मनन-चिन्तन की गम्भीरता और शीतलता है। इसमे 'युगवाणी' की तीव्रता और वक्तृता नही, रस-विदग्धता है। विचार-चित्र भाव-चित्र बन गये है। 'सौन्दर्य्य-कला', 'स्वीट पी', 'कला के प्रति', 'पतझर', 'उद-बोधन', 'नव-इन्द्रिय', 'कवि-किसान, 'वाणी', 'गगा' शीर्षक कविताओ मे सिद्धान्तो को स्वरूप मिल सका है। 'स्वीट पी' 'युगवाणी' के 'बन्द तुम्हारे द्वार' की याद दिलाती है। दोनो मे नारी-जागृति का सन्देश दिया गया है। 'बन्द तुम्हारे द्वार' मे सुन्दर भाव-दृष्टान्त है, 'स्वीट पी' मे मनोहर रूपक।

पन्त जी कहते है—"अगर 'युगवाणी' मे मेरे चिन्तन का दर्शन-पक्ष है तो 'ग्राम्या' मे उसी का भाव-पक्ष है। कला की दृष्टि से 'युगवाणी' की भाषा अधिक सूक्ष्म (एब्स्ट्रेक्ट) है जो कि बुद्धि-प्रधान काव्य का एक सस्कार एव अलकार भी है। उसमे विश्लेषण का बारीक सौन्दर्य्य मिलता

है। 'ग्राम्या' मे वही शैली जैसे अधिक भावात्मक होकर खेतो की हरियाली मे लहलहा उठी है।"

'ग्राम्या' की रचना दस वर्षों के कालाकाँकर-प्रवास मे की गयी। वह कवि का वनवास-काल है। गाँवो का सामाजिक जीवन 'बिन्दाल' की तरह भले ही सूख गया हो किन्तु वहाँ के वन्य वातावरण ने प्रकृति के इस कवि के काव्य-स्रोत को सूखने नही दिया।

पन्त जी के लिए ग्राम्य जीवन नवीन नही है। अपनी कविता के आरम्भ-काल मे ही अपनी जन्म-भूमि हिमाञ्चल के अञ्चल मे उन्होने उस जीवन की एक झलक पा ली थी—

उस सीधे जीवन का श्रम
हेम-हास से शोभित है नव
पके धान की डाली मे,—
कटनी के घूँघुरु रुन-झुन
(बज-बज कर मृदु गाते गुन,)
केवल श्रान्ता के साथी हैं
इस ऊषा की लाली मे।

सास-ननद-भय, भूख अजय,
श्रान्ति, अलस औ' श्रम-अतिशय,
तथा काँस के नव गहनो से
अर्चन करता है सादर—
आश्विन सुषमाशाली मे!

('वीणा')

'ग्राम्या' की नवीनता उसकी भाषा, शैली और स्वाभाविकता मे है।

छायावाद के प्रतिनिधि-कवि की ऐसी सरल, सुस्पष्ट, प्रासादिक रचना देख कर विस्मय होता है—पन्त जी की प्रतिभा समीर की तरह कितनी व्यापक और सञ्चरणशील है । उसमे जीवन के सभी पुलिनो, कला की सभी अभिव्यक्तियो और काल की सभी दिशाओ को स्पर्श करने की शक्ति है ।

'ग्राम्या' सचमुच जन-साहित्य है । पन्त ने जिस सजीवता, स्वाभाविकता और विशदता से ग्राम-जीवन और वहाँ की प्रकृति का चित्रण किया, उस सम्पूर्णता से द्विवेदी-युग के कवि भी (जो मूलत ग्रामीण थे) नही कर सके। ग्राम-जगत् का प्रतिनिधित्त्व प्रेमचन्द जी ने किया । यदि वे जीवित होते तो 'ग्राम्या' की सरसता, स्वाभाविकता और मार्म्मिकता उन्हे भी स्पृहणीय जान पडती ।

'ग्राम्या' हिन्दी के जन-साहित्य मे बेजोड है । उसकी स्वाभाविकता का प्रभाव छायावाद के अन्य प्रतिनिधि कवियो पर पडा ।

'गुञ्जन' मे पन्त जी ने कहा था—

सुन्दर विश्वासो से ही
बनता रे सुखमय जीवन,
ज्यो सहज-सहज साँसो से
चलता उर का मृदु स्पन्दन ।

'ग्राम्या' मे 'सहज सहज सासो' से उर का यही 'मृदु स्पन्दन' सञ्चालित है । पन्त जी के चिन्तन को उन्ही के बौद्धिक व्यक्तित्त्व की तरह तटस्थ छोड कर 'ग्राम्या' अपने आप मे अन्यतम सरलतम कृति है । 'वे आँखे', 'वह बुड्ढा' ,'ग्राम-श्री', 'सध्या के बाद', शीर्षक कविताओ को गाँवो की जनता भी समझ सकती है । इनमे जीवन के प्राकृत चित्र है । इस दृष्टि से 'युगवाणी' मे भी 'ग्राम्या' की सरलता स्वाभाविकता का अभाव नही है—देखिये 'दो लडके', 'दो मित्र' ।

'युगवाणी' मे पन्त जी दार्शनिक कलाकार थे, 'ग्राम्या' मे वे दर्शक और भावुक कलाकार है। उनका 'गीत-गद्य' इसमे गीत-काव्य बन गया है। 'युगवाणी' के बाद 'ग्राम्या' रूपवाणी है। 'ग्राम युवती' से लेकर ग्रामो के विविध नृत्यो मे 'ग्राम्या' सौन्दर्य्य, प्रेम और कला की रङ्गभूमि बन गयी है।

'ग्राम युवती' शीर्षक कविता ब्रजभाषा की शृगारिक कविताओ का स्मरण दिलाती है। वैसी ही सरस किन्तु नवीन लावण्यपूर्ण, मानो ब्रज की लचीली कोमलता खडीबोली की सुदृढ स्वस्थता पा गयी है—

उन्मद यौवन से उभर,
घटा-सी नव असाढ की सुन्दर,
अति श्याम वरण,
श्लथ, मन्द चरण,
इठलाती आती ग्राम युवति
वह गज गति
सर्प डगर पर।

'गजगति' और 'सर्प डगर' के अनुसार ही यह मुक्त छन्द भी अपनी गति-यति मे ऋजु-कुञ्चित है।

इस कविता मे ब्रजभाषा के पनघट को नूतन चित्रपट मिला है। रूप-रग, हाव-भाव, दृश्य और पात्र के अनुरूप ही शब्दो मे सहज-सजीवता है।

'ग्राम्या' के नृत्यो को पन्त जी ने एक कलाविद् की तरह सँजोया है। इन नृत्यो मे विविध जातियो (धोबियो, चमारो और कहारो) की बोलियो, नाट्यो, धुनो और वेश-भूषा का ज्यो का त्यो रूपाकन है। दृश्य, गति, लय और ताल के अनुसार छन्दो मे भी चढाव-उतार और बहाव है। यथा—'जटा घटा सिर पर योवन की श्मश्रु छटा आनन पर'—(कहारो

का रुद्रनृत्य') । कवि ने इन नृत्यो को बडी सूक्ष्मता और तन्मयता से देखा है, उनमे मानव के सतृष्ण जीवन का दर्शन किया है—

वह काम-शिखा-सी रही सिहर,
नट की कटि मे लालसा-भँवर,
कँप कँप नितम्ब उसके थर-थर
भर रहे घटियो मे रति-स्वर,
लो, छन छन, छन छन
छन छन, छन छन,
मत्त गुजरिया हरती मन ।

शृगार की पराकाष्ठा पर पहुँच कर जब पाठकों का मन उद्दीप्त हो उठता है तब कवि अपने परिहास से उन्हे सजग कर देता है—'स्त्री नही गुजरिया, वह है नर ।' इस पक्ति से श्लीलता (शीलता) की रक्षा हो जाती है, नर का मधुर नृत्य शकर का लास्य बन जाता है ।

जीव की जो आकाक्षाएँ जीवन मे अतृप्त रह जाती है, वे ही कला में अपनी परितृप्ति पाती है—

उर की अतृप्त वासना उभर
इस ढोल मँजीरे के स्वर पर
नाचती, गान के फैला पर ।
('धोबियो का नृत्य')

ये समाज के नीच अधम जन,
नाच कूद कर बहलाते मन,
वर्णो के पददलित चरण ये
मिटा रहे निज कसक औ' कुढन,
कर उच्छृखलता, उद्धतपन ।
('चमारो का नृत्य')

मनुष्य के कलात्मक क्षणो में ही कवि ने सस्कृति का भव्य भविष्य देखा है—

> वाद्यो के उन्मत्त घोप से, गायन स्वर मे कम्पित
> जन-इच्छा का गाढ चित्र कर हृदय-पटल पर अकित,
> खोल गये ससार नया तुम मेरे मन मे, क्षण भर
> जन-सस्कृति का तिग्म स्फीत सोन्दर्य-स्वप्न दिखला कर !
>
> ('कहारो का रुद्र नृत्य')

जहाँ-जहाँ मनुष्य का जीवन अपनी स्वाभाविक गति से ससरण कर रहा है वहाँ-वहाँ कवि का हृदय-सञ्चरण है। जहाँ काल ओर समाज के कृत्रिम व्यवधान से जीवन का सौन्दर्य्य म्रियमाण हो गया है वहाँ कवि की सहानुभूति द्रवीभूत हो उठी है—

> रे दो दिन का उसका योवन
> सपना छिन का
> रहता न स्मरण !
> दु खो से पिस,
> दुर्दिन मे घिस,
> जर्जर हो जाता उसका तन !
> ढह जाता असमय यौवन-धन !
> बह जाता तट का तिनका
> जो लहरो से हँस-खेला कुछ क्षण !!
>
> ('ग्राम युवती')

जहाँ मनुष्य का जीवन निर्म्माण-रहित है, अन्तर्बाह्य विकास (सुरुचि और स्वास्थ्य) से वञ्चित है, वहाँ कवि सामाजिक अव्यवस्था अथवा ऐतिहासिक शोषण की ओर सकेत करता है—

झाड-फूँस के विवर,-यही क्या जीवन-शिल्पी के घर ?
कीडो-से रेगते कौन ये ? बुद्धिप्राण नारी-नर ?
—('ग्रामचित्र')

कोई खण्डित, कोई कुण्ठित,
कृश बाहु, पसलियाँ रेखाकित,
टहनी-सी टाँगे, बढा पेट,
टेढे-मेढे, विकलाग घृणित !

इन कीडो का भी मनुज-बीज
यह सोच हृदय उठता पसीज !
('गाँव के लडके')

'ग्राम्या' मे प्रकृत चित्र भी है और रग-चित्र (भाव-चित्र) भी । 'युगवाणी' मे कवि ने 'पलाश के प्रति' कहा था—

प्राप्त नही मानव-जग को यह मर्म्मोज्जवल उल्लास
जो कि तुम्हारी डाल-डाल पर करता सहज विलास !

यह 'मर्मोज्ज्वल उल्लास' 'ग्राम्या' के दैनन्दिन जीवन मे भी नही है—

रोना गाना यहाँ चलन भर,
आता उसमे उभर न अन्तर ।

फिर भी कवि ने 'ग्राम्या' को अपनी कल्पना की 'रग-हीन रगभूमि' बनाया है । कवि की कल्पना लोक-चेतना के विकास के लिए उपादान के रूप में प्रयुक्त हुई है। 'युगवाणी' के 'पलाश' की तरह इस युग-स्रष्टा कवि के लिए भी यही कृतज्ञ उद्‌गार मुँह से बरबस निकल पडता है—

हृदय-रक्त ही अर्पित कर मधु को, अपर्ण-श्री शाल !
तुमने जग मे आज जला दी दिशि-दिशि जीवन-ज्वाल !

'युगवाणी' मे भी रग-चित्रो (भाव-चित्रो) का अभाव नही है, किन्तु सिद्धान्तो की सर्जरी से उसमे जहाँ जीवन सूना हो गया है वहाँ 'विरल टहनियो की'-सी 'रेखा-छवि' है, तरुओ के 'नग्न-गात'-सा ठूँठापन है। कवि ने कहा भी है—"युगवाणी मे आप टेढो-मेढी पतली ठूँठी टहनियो के वन का दूर तक फैला हुआ वासासि जीर्णानि यथा विहाय " सौन्दर्य्य देखेगे जिससे नवप्रभात की सुनहली किरणे बारीक रेशमी जाली की तरह लिपटी हुई है ।"

'ग्राम्या' मे विरल टहनियाँ घनी हो गयी है ओर तरुओ के नग्न गात पल्लवो से मासल हो गये है। कवि की कला मे रगो का भराव आ गया है।

'ग्राम्या' मे खेतो ओर बगीचो की शाद्वल शोभा है—

हँसमुख हरियाली, हिम-आतप,—
सुख से अलसाये-से सोये,—
भीगी अँधियाली मे निशि की—
तारक स्वप्नो मे-से खोये,—
मरकत डिब्बे-सा खुला ग्राम—
जिस पर नीलम नभ आच्छादन,—
निरुपम हिमान्त मे स्निग्ध शान्त—
निज शोभा से हरता जन-मन !

('ग्राम्या' 'ग्रामश्री')

गाँवो के जीवन मे पतझड है, किन्तु जहाँ 'लहलह पालक, महमह धनिया' है वहाँ सोन्दर्य्य और सौरभ से ग्राम-जगत् रग-जगत् (भाव-जगत्) भी बन गया है। 'ग्राम्या' का कवि भी वहाँ की जीवन्त प्रकृति से विमुख नही रह सका, उसका दार्शनिक आलोचक लोक-सग्राहक और भाव-सवाहक हो गया है। वह अपने वर्ग की 'ऊँची डाली' से नीचे 'जन-भू पर' उतर आया है।

ग्रामजीवन के अनुरूप 'ग्राम्या' मे कुछ राष्ट्रीय कविताएँ भी है, इनमे से 'भारतमाता' ('भारतमाता ग्रामवासिनी') लोकप्रिय हो चुकी है। 'राष्ट्रगान' शीर्षक कविता मे नवीन जन-युग की चेतना का सगीत है। 'युगवाणी' के श्रमजीवी का जीवन-सगीत 'घननाद' मे था, 'ग्राम्या' के कृषिजीवी का जीवन-सगीत 'चरखा गीत' में है। यह गीत इतना सरल-सुगम है कि आश्रमो मे गाया जा सकता है।

'ग्राम्या' मे कई कविताएँ रेखा-चित्र (शब्द-चित्र) है। यथा, 'वे आँखे', 'गाँव के लडके', 'वह बुड्ढा', 'ग्रामश्री', 'सन्ध्या के बाद' इत्यादि। इन रेखा-चित्रो मे पूरी स्वाभाविकता है, कवि ने रिटचिंग (शोभा-स्पर्श) नही किया है।

जहाँ कवि दर्शक ही नही, भाविक भी हो उठा है, वहाँ रेखा-चित्र कवि के अन्तरग से तरगित भी हो गये है। ऐसे चित्रो मे वास्तविकता और कल्पना (भाव-चेतना) का सम्मिश्रण है। 'दिवा-स्वप्न', 'रेखा-चित्र', 'खिडकी से' शीर्षक कविताओ मे सुललित वस्तु-कला है।

'युगवाणी' मे कवि ने छायावाद की काव्य-कला को नवीनता दी थी, 'ग्राम्या' की 'वे आँखें', 'वह बुड्ढा', 'सन्ध्या के बाद' और 'ग्राम श्री' शीर्षक कविताओ मे द्विवेदी-युग की पद्य-कला को नवीनता दी है। इन पक्तियो मे द्विवेदी-युग के छन्द और शैली का नव-कैशोर्य्य है—

खडा द्वार पर लाठी टेके,
वह जीवन का बूढा पञ्जर,
चिमटी उसकी सिकुडी चमडी
हिलते हड्डी के ढाँचे पर।
उभरी ढीली नसे जाल-सी
सूखी ठठरी से है लिपटी

पतझर मे ठूँठे तरु से ज्यो
सूनी अमर बेल हो चिपटी ।
('वह बुड्ढा')

शख घट बजते मन्दिर मे
लहरो मे होता लय-कम्पन,
दीप-शिखा-सा ज्वलित कलश
नभ मे उठ कर करता नीराजन ।
माली की मँडई से उठ
नभ-के-नीचे-नभ-सी धूमाली
मन्द पवन मे तिरती
नीली रेशम की-सी हलकी जाली ।
('सन्ध्या के बाद')

इन पक्तियो की जन-सुलभ भाषा भी ध्यान देने योग्य है— कितनी सरल, किन्तु कितनी सुगठित !

'ग्राम्या' की कविताओ के लिए पन्त जी ने 'निवेदन' मे लिखा है— "ग्राम-जीवन मे मिल कर, उसके भीतर से, ये अवश्य ही नही लिखी गयी है ।" किन्तु 'ग्राम्या' की सरलता-स्वाभाविकता देख कर ऐसा नही कहा जा सकता । कवि पूर्णत ग्राम-जीवन मे समाया हुआ है। उसके चिन्तन का मृणाल-तन्तु गाँवो की मिट्टी और जल मे मूलस्थ होकर सस्कृति और सौन्दय्य के ऊर्ध्वमुख शतदल से सुशोभित है।

कवि अपनी कॉटेज ('नक्षत्र') की तरह 'ग्राम्या' की धरती पर रह कर भी उससे ऊपर सूक्ष्म भाव-जगत् मे अवस्थित है । युग-प्रवास मे भी वह अपने आवास (भाव-लोक) मे है ।

'नक्षत्र' कालाकाँकर के वनवास-काल मे कवि का निवासगृह है।

'ग्राम्या' की परिधि मे उसका भी समावेश स्वाभाविक है, क्योकि लोक-गीतो की भाव-भूमि मे छायावाद के भावुक कवि का ही स्थान हो सकता है। ग्रामगीतो का वातावरण उसी तरह स्वप्निल है जिस तरह छायावाद का। ग्राम-साहित्य और छायावाद, दोनो का विकास प्रकृति के रम्य जगत मे हुआ है, यहा प्रकृति और मनुष्य का पार्थक्य मिट गया है। कवि ने बडी ममता से 'नक्षत्र' को सम्बोधित किया है—

मेरे निकुञ्ज, नक्षत्र वास!
इस छाया-मर्म्मर के वन में
तू स्वप्न-नीड-सा निर्जन में
है बना प्राण-पिक का विलास

•

आती जग की छवि स्वर्ण प्रात,
स्वप्नो की नभ-सी रजत रात,
भरती दश दिशि की चार वात,
तुझमे वन-वन की सुरभि-साँस!

'नक्षत्र' शीर्षक कविता की रचना पन्त जी ने सन् '३२ में की, इसके दो ही एक वर्ष पहिले 'गुञ्जन' प्रकाशित हुआ था। इस कविता की भाषा, शैली और सगीत मे भी 'गुञ्जन' का अभिव्यञ्जन है।

'ग्राम्या' की अन्य रचनाएँ देखने से ज्ञात होता है कि छायावाद से प्रगतिशील युग मे जाकर भी पन्त की काव्य-चेतना का ह्रास नही हुआ। 'ग्राम्या' की कई स्वगत कविताओ ('खिडकी से', 'रेखा चित्र', 'दिवा स्वप्न', 'आँगन से', 'याद', 'गुलदावदी') मे कवि के एकान्त क्षणो का अन्त स्पन्दन है। इन कविताओ में छन्द और भाषा द्विवेदी-युग की, शैली और भावानुभूति छायावाद की है। कही-कही भाषा भी छायावाद की चित्र-द्युति और प्राण-स्फूर्त्ति पा गयी, है, यथा, किरणोज्ज्वल चल-कल

ऊर्म्मि-निरत' तथा 'चपल पवन के पदाचार से अहरह स्पन्दित ।' यहाँ छन्द मे भी छायावाद का सगीत आ गया है ।

'ग्राम्या' मे कवि ने एक नया शब्द दिया है—'पी-खग ।' कोयल के लिए गीत-खग की तरह चातक के लिए यह 'पी-खग' भी सार्थक और सुन्दर है

भौतिकवाद से प्रभावित होते हुए भी कवि ने 'ग्राम्या' मे छायावाद के भाव-जगत् को प्रतिष्ठित किया है। 'ग्राम्या' के 'श्यामल भूतल पर' भाव-जगत् 'नभ के चिर निर्म्मल नील फलक' की भाँति झुका हुआ है। 'युगवाणी' मे कवि ने पृथ्वी को महत्त्व दिया था, 'ग्राम्या' मे उसने पृथ्वी पर, जल पर आकाश को प्रच्छायित किया है—

चाँदी की चौडी रेती,
फिर स्वर्णिम गगाधारा,
जिसके निश्चल उर पर विजडित
रत्नछाय नभ सारा ।

('रेखाचित्र')

भावानुभूति के लिए जीवन के ऊर्ध्वतल का सत्य चाहिये । अति यथार्थ-वादी दृष्टि से देखने पर वस्तुतत्त्व नि सत्त्व हो जाता है । 'दिवा स्वप्न' शीर्षक कविता मे कवि ने इसी तथ्य का उद्घाटन किया है—

दिन की इस विस्तृत आभा मे, खुली नाव पर,
आर-पार के दृश्य लग रहे साधारणतर ।
केवल नील फलक-सा नभ, सैकत रजतोज्वल,
और तरल बिल्लौर वेश्मतल-सा गगाजल—
चपल पवन के पदाचार से अहरह स्पन्दित—
शान्त हास्य से अन्तर को करते आह्लादित ।

छायावाद का भाव-सत्य भी उतना ही प्रत्यक्ष है जितना यथार्थ का वस्तु-सत्य। भाव-सत्य से ही वस्तु-सत्य सुशोभन हो सकता है, यह 'खिड़की से' शीर्षक कविता मे चॉदनी की तरह स्पष्ट है।

काव्य की कोमलता और भाव-जगत् के एकान्त के लिए कवि का मन फिर लालायित हो उठा है—

> प्रकृति-नीड मे व्योम खगो के गाने गाऊँ,
> अपने चिर स्नेहातुर उर की व्यथा भुलाऊँ।

'युगवाणी' मे कवि प्रकृति से उदासीन था, 'ग्राम्या' के निसर्ग-लोक मे फिर उसका प्राकृतिक अनुराग जग गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर प्रकृति भी मनुष्य की तरह वर्गो मे सीमित-सकुचित जान पडती है, किन्तु यह स्थिति शाश्वत नही है। कवि की अन्तर्दृष्टि (भविष्य-दृष्टि) मे वर्ग-मुक्त प्रकृति और वर्ग-रहित मनष्य का यह प्रफुल्ल चित्र शोभायमान है—

> नील गगन है हरित धरा
> नवयुग नव मानव जीवन।

काशी,
१६-७-५०

सत्यम्

[सांस्कृतिक युग]

उन्नयन

'युगवाणी' में पन्त जी ने पार्थिव अस्तित्व ग्रहण करने के लिए मनुष्य को पृथ्वी की ओर प्रेरित किया था। अब वे कहते हैं—

मिट्टी से ही सटे रहेंगे
क्या भारत भू के भी जन गण
क्या न चेतना-शस्य करेंगे
वे समस्त पृथ्वी पर रोपण ?

('युगवाणी')

मिट्टी या पृथ्वी का सम्पर्क अब भी उन्होंने नही छोड़ा है, किन्तु वही उनकी सीमा नही है। वे उसे आधार बना कर ध्येय की आराधना के लिए उससे ऊपर उठना चाहते हैं—

दीप-शिखा-सी जगे चेतना
मिट्टी के दीपक से उठ कर,
तैल-धारवत् मर्म्म-स्नेह पा
स्वर्ग-विभा से दे भूतल भर !

('स्वर्णकिरण')

आज का जड-युग जब कि मदान्ध होकर सतोगुण को तमोगुण से ढँक देना चाहता है, कवि उसकी इस कदर्थता से विचलित नही होता। वह दृढतापूर्वक उसे चुनौती देता है—

तुम वस्तु-तमस से ढँक दोगे
आदर्शों का अक्षय प्रकाश ?
यान्त्रिक पशु-बल से रोकोगे
मानव का देवोत्तर विकास ।
('उत्तरा')

आदर्श के लिए पन्त जी यथार्थ की उपेक्षा नही करते । 'युगवाणी' की तरह वे अब भी दोनो का समन्वय चाहते ह—

करे आत्म-निर्माण लोकगण
आत्मोज्ज्वल भू-मगल के हित,
बहिरन्तर जड -चेतन -वैभव
सस्कृति मे कर निखिल समन्वित ।
('स्वर्णकिरण')

यही समन्वय 'प्रभात का चाँद' मे मिलता है—

इसमे वह न निशा की आभा
दुग्ध-फेन-सा यह नव कोमल,
मानवीय लगता नयनो को
स्नेह-पक्व सकरुण मुखमण्डल ।

आभा इसकी हुई अन्तरित
यह शशि मानो भू का वासी,
यह आलोक-प्राण है, मुख पर
जीवन-श्रम की भरी उदासी ।
('स्वर्णकिरण')

बाहर से पार्थिव ('भू का वासी') और भीतर से अपार्थिव ('आलोक-प्राण') प्रभात का चाँद 'भू के श्रम से सिक्त, नम्र-मानव के शारद मुख-सा शोभन' लगता है। ऐसा ही बहिरन्तर जीवन के समन्वय का सौन्दर्य्य है।

समन्वय की आवश्यकता तभी तक है जब तक मनुष्य का जीवन जड-वाद और आत्मवाद में विभाजित है। आत्मा और शरीर से संयोजित व्यक्तित्त्व की तरह जब मनुष्य का मन भी सन्तुलन पा जायगा तब वह समन्वय के बाद जीवन के एकान्वय की ओर बढेगा।

पन्त जी की नई रचनाओं में समन्वय का सामयिक सन्देश भी है और एकान्वय का शाश्वत सन्देश भी। समन्वय में मनुष्य बहिर्जगत (प्रवृत्ति के जड जगत) से भी सम्बद्ध रहता है, एकान्वय में केवल अन्तर्जगत (चेतना के भाव-जगत) से ही तादात्म्य स्थापित करता है। तादात्म्य से उसे कैवल्य का बोध होता है। यथा——

प्रभु प्रभु-भक्त गये अभिन्न बन,
मात्र सच्चिदानन्द चिरन्तन !
('स्वर्णकिरण')

स्थूल और सूक्ष्म, जड और चेतन के समन्वय का सूत्रधार कौन है ? 'युगवाणी' में पन्त जी ने कहा था——

आत्मा औ' भूतों में स्थापित करता कौन समत्त्व ?
बहिरन्तर, आत्मा-भूतों से है अतीत वह तत्त्व
भौतिकता, आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,
व्यक्ति - विश्व से, स्थूल - सूक्ष्म से परे सत्य के मूल।

उसी 'अतीत तत्त्व' अथवा 'सत्य के मूल' तक पहुँचना ही समन्वय का साध्य (एकान्वय) है।

आध्यात्मिक स्तर पर सृष्टि के जिस एकत्त्व अथवा चेतन-तत्त्व को पन्त जी ईश्वर मे व्यक्त करते है उसीको सामाजिक धरातल पर विश्व-मानव मे । उनका मनुष्य देह अथवा देश-काल की क्षणिक सीमाओ मे विभक्त नही है, वह अपने मनोजगत मे एक ही स्पन्दनशील प्राणी है। बाह्य सकीर्णताओ मे मनुष्य का अन्तर्विकास (मनोविकास) अवरुद्ध न हो जाय, इसी दृष्टि से पन्त जी नर-नारी को 'कुत्सित लिग विभाजन' से मुक्त कर मानवता की विशद चेतना की ओर प्रेरित करते है । प्रणय मे जो प्रेम दो तन एक प्राण बन जाता है वही विश्व के हृदय-परिणय मे एकात्म भी हो सकता है ।

नर-नारी के देह-भेद की तरह पूर्व-पश्चिम का भौगोलिक विभेद भी वीभत्स और अशोभन है । पन्त जी कहते है—'वृथा पूर्व-पश्चिम का दिग्भ्रम, मानवता को करे न खण्डित ।'

युग के निर्म्माण और उसकी प्रगति को वे विश्व-रूप मे देख रहे है—'एक निखिल धरणी का जीवन, एक मनुजता का सघर्षण ।'

सकुचित स्वार्थो के द्वन्द्व से परिचालित और भेद-भाव पर आश्रित राष्ट्रीयता अथवा एकदेशीयता मानवता के लिए अवाञ्छनीय है—

नही छोड सकते रे यदि जन
देश राष्ट्र राज्यो के हित नित युद्ध कराना,
हरित जनाकुल धरती पर विनाश बरसाना—
तो अच्छा हो छोड दे अगर
हम अमरीकन रूसी औ' इग्लिश कहलाना !
देशो से आये धरा निखर,
पृथ्वी हो सब मनुजो की घर,
हम उसकी सन्तान बराबर !

('स्वर्णधूलि')

'ग्राम्या' की 'नारी' शीर्षक कविता मे पन्त जी ने कहा है—'नारी नर की निखिल क्षुद्रता, आदिम मानो पर स्थित।' इसी तरह आज के सभी द्वन्द्व आदिम युग की मान्यताओ को लेकर चल रहे है और अपनी निरर्थकता की चरम सीमा पर पहुँच कर समाप्त होने जा रहे हे।

पन्त जी जिस मानवीय एकता अथवा अखण्ड मानवता का आह्वान कर रहे है वह अकाल-जन्य विषम परिस्थितियो से विवश होकर, पहिले आर्थिक क्षेत्र मे अवतरित हो रही है, इसके बाद उस सामाजिक धरातल पर भी आ जायगी जिसे कविने 'ज्योत्स्ना' मे प्रस्तुत किया है। चेतना के विविध स्तरो (अन्न-प्राण-मन) को पार कर मानवता क्रमश 'स्वर्णकिरण' ओर 'उत्तरा' की लोकोत्तर अथवा देवोत्तर चेतना मे परिणत हो जायगी।

चेतना के विविध स्तरो ओर जीवन की विविध प्रवृत्तियो की तरह पन्त जी समय के विविध खण्डो (भूत-वर्त्तमान-भविष्य) का भी सूक्ष्म सामञ्जस्य करते है। पहिले वे भूतकाल की ओर आकृष्ट थे—

'कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन
वह सुवर्ण का काल ?'

'युगान्त' और 'युगवाणी' मे भूतकाल पीछे छूट गया, वर्त्तमान काल दुर्निवार ऐतिहासिक वास्तविकता के रूप मे सामने आ गया। वर्त्तमान को अपनी सास्कृतिक स्निग्धता से मनोरम बना कर पन्त जी ने उसका मुख भविष्य की ओर मोड दिया। कवि कल्पक ही वना रह गया।

'स्वर्णकिरण', 'उत्तरा', और 'युगपथ' मे पन्त जी फिर भूतकाल की ओर अभिमुख हो गये। सास्कृतिक दृष्टि से भूतकाल को ही उन्होंने भविष्य मे परिणत कर दिया।

छायावाद के कवि या तो काल-मुक्त थे, या आप्त युग (भूतकाल) मे थे। वर्त्तमान से वे उदासीन थे, क्योकि उसकी वास्तविकता का सामना नही कर सकते थे, उनके भावुक हृदय को उससे ठेस लगती थी। 'ज्योत्स्ना' मे स्वप्न ने ठीक कहा है—"मनुष्य जाति को सदैव से सौन्दर्य्य-विभ्रम, प्रेम का स्वर्ग, भावनाओ का इन्द्रजाल और दारुण दुर्गम वास्तविकता का विस्मरण अथवा भुलावा पसन्द रहा है।"

छायावाद के कवियो की तरह द्विवेदी-युग के कवि भी भूतकाल के भाविक थे, अतीत के अनुरागी थे। राष्ट्रीय युग मे जिन्होने वर्त्तमान काल का भी उद्बोधन दिया, उनमे गुप्त जी अन्यतम है। उस दिन* प्रयाग मे प्रसाद-जयन्ती के अवसर पर राष्ट्रकवि ने कहा था—"मैने तो अपना कार्य्य वर्त्तमान को लेकर आरम्भ किया था और वह शायद मेरे जीवन के साथ ही समाप्त भी हो जायगा, किन्तु वह तो § भविष्यद्रष्टा थे। उनका साहित्य आज भी जीवित है और आगे भी भविष्य मे जीवित रहेगा। . "

प्रसाद जी ने वर्त्तमान को अन्तर्भुक्त कर मुख्यत भूतकाल का साहित्य दिया। क्या अतीत का अनुरागी ही भविष्य का भी द्रष्टा होता है ? इस दृष्टि से गुप्त जी भी भविष्य-द्रष्टा कवि है, उनका कार्य्य उनके जीवन के साथ ही समाप्त नही हो जाता।

काल-क्रम से जिस भविष्य का उदय होगा, छायावाद के कवियो मे उस भविष्य का प्रतिनिधित्त्व पन्त जी ने किया है। प्रसाद जी और गुप्त जी गान्धी-युग के सक्रमण-काल को स्पर्श करते हुए भूतकाल की ओर गये, पन्त जी मार्क्सवादी युग के सघर्ष को पार करते हुए भविष्य की ओर। काल के उत्तर-छोर को उन्होने समय के पूर्व-छोर से (अतीत के अञ्चल से) बाँध दिया।

---

* १८ फरवरी, सन्' ५१

§ 'प्रसाद' जी।

सच तो यह है कि कवि किसी काल-विशेष का ही प्रतिनिधित्व नही करता। समय सीमा-रहित है। भवभूति ने ठीक कहा है, 'कालो ह्यय निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।' भूत, वर्त्तमान, भविष्य, हमारे सीमित अस्तित्त्व के विभाजन हैं। कालान्तर मे भविष्य वत्तमान बन जाता है ओर वर्त्तमान अतीत हो जाता है। अतएव, कवि एक युग मे आकर, वर्त्तमान मे सदेह होकर, उन चिरन्तन भावो को अभिव्यक्ति दे जाता हे जिनमे सभी युगो का अन्त करण रहता है।

काशी,
१।३।५१

रचनात्मक निर्देशन

मुझे असत् से ले जाओ हे सत्य ओर
मुझे तमस से उठा, दिखाओ ज्योति-छोर,
मुझे मृत्यु से बचा, बनाओ अमृत-भोर!
बार बार आकर अन्तर मे हे चिर परिचित,
दक्षिण मुख से, रुद्र, करो मेरी रक्षा नित!

('स्वर्णधूलि')

'युगवाणी'-काल मे पन्त जी ऐतिहासिक युग मे थे, अब वे उपनिषद्-युग मे भी है। 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'उत्तरा' और 'युगपथ' मे उसी ओर उन्मुख है। ऐतिहासिक युग मे उन्होने दृश्य-जगत को प्रधानता दी थी, उपनिषद्-युग मे वे अन्तर्जगत (भाव-जगत) को प्रधानता दे रहे है। जिस तरह स्थूल (इतिहास) के लिए उन्होने सूक्ष्म (अभ्यन्तर) की अवज्ञा नही की, उसी तरह सूक्ष्म के लिए स्थूल की भी उपेक्षा नही करते। अब भी दोनो का समन्वय चाहते है।

पन्त जी लिखते है—"बाहरी दृष्टि से 'युगवाणी' तथा 'स्वर्ण-किरण'-काल की रचनाओ मे शायद परस्पर विरोधी विचारधाराओ का समावेश मिले, पर वास्तव मे ऐसा नही है।

'ज्योत्स्ना' मे मैने जीवन की जिन बहिरन्तर मान्यताओ का समन्वय करने का प्रयत्न किया है तथा नवीन सामाजिकता (मानवता) मे उनके रूपान्तरित होने की ओर इगित किया है, 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में

उन्ही के बहिर्मुखी (समतल) सञ्चरण को (जो मार्क्सवाद का क्षेत्र है) अधिक प्रधानता दी है, किन्तु समन्वय तथा सश्लेषण का दृष्टिकोण एव तज्जनित मान्यताएँ दोनो में समान रूप से वर्त्तमान है।

'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' मे यदि ऊर्ध्व मानो का सम धरातल पर समन्वय हुआ है तो 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि' मे समतल मानो का ऊर्ध्व धरातल पर, जो तत्त्वत एक ही लक्ष्य की ओर निदश करते है। किन्तु किसी लेखक की कृतियो मे विचार-साम्य के बदले उसके मानसिक विकास की दिशा को ही अधिक महत्त्व देना चाहिये, क्योकि लेखक एक सजीव अस्तित्त्व या चेतना है और वह भिन्न-भिन्न समय पर अपने युग के स्पर्शो तथा सवेदनो से किस प्रकार आन्दोलित होता है, उन्हे किस रूप मे ग्रहण तथा प्रदान करता है, इसका निर्णय ही उसके व्यक्तित्त्व पर प्रकाश डालने मे अधिक उपयोगी सिद्ध होना चाहिये।"

पन्त जी प्रयोगशील कवि है, इसीलिए उनके विचारो मे परिवर्त्तन-परिवर्द्धन होता रहता है। 'पर्य्यालोचन' मे उन्होने कहा था—"यदि हम बाह्य परिस्थितियो मे परिवर्त्तन ला सके तो हमारी आन्तरिक धारणाएँ भी उसी के अनुरूप बदल जायँगी।" अब 'उत्तरा' की प्रस्तावना मे वे लिखते है—"ऐसा नही समझना चाहिये कि स्थूल के सगठन से सूक्ष्म अपने आप सगठित हो जायगा जैसा कि आज का भौतिक दर्शन या मार्क्सवादी कहता है, अथवा सूक्ष्म मे सामञ्जस्य स्थापित कर लेने से स्थूल मे अपने आप सन्तुलन आ जायगा, जैसा कि मध्ययुगीन विचारक कहता आया है। ये दोनो दृष्टिकोण अति-वैयक्तिकता तथा अति-सामाजिकता के दुराग्रह मात्र है।"

पहिले पन्त जी ने ऐतिहासिक दर्शन पर इसलिए जोर दिया था कि मनुष्य सब कुछ भाग्य और ईश्वर पर न छोड कर अपना भी दायित्त्व समझे। अब ऐतिहासिक दर्शन का इतना एकाधिपत्य हो गया है कि उसकी

एकागिता को दूर कर दृष्टिकोण को व्यापक बनाने का समय आ गया है। पन्त जी लिखते है—"स्वर्णकिरण मे मैने अन्तर्जीवन , अन्तश्चेतना आदि को इतना अधिक महत्त्व इसलिए भी दिया है कि इस युग मे भौतिक दर्शन के प्रभाव से उन्हे हम बिलकुल ही भूल गये है ।"

पन्त जी अन्तश्चैतन्य प्राणी है, इसीलिए छायावाद-युग मे सौन्दर्य्य के साथ आध्यात्मिक चेतना भी लेकर चले थे। 'युगवाणी'-काल में भी उनकी यह चेतना जाग्रत थी। आज इस अनात्म-युग मे जब कि पार्थिव प्रलोभन तीव्र हो गये है, मनुष्य का मन तिमिराच्छन्न हो गया है, पन्त के जागरूक हृदय का चिरसञ्चित सस्कार अन्त स्वर मे बोल उठता है—

ना, तुमको भी क्या ढँक लेगी
धरती की वेणी अँधियाली ?
तुम भू के जीवन के तम मे
दो गूँथ उषा-मुख की लाली।
('उत्तरा')

छायावाद-युग मे जिस अन्तर्ज्योति का आभास कवि ने पाया था वह युग के झझावात मे प्रकम्पित होकर बुझ नही गयी । बल्कि योगी अरविन्द के व्यक्तित्त्व का आश्रय पाकर सुस्थिर हो गयी । पहिले पन्त जी की युग-दृष्टि खण्ड-खण्ड होकर समन्वय की साधना करती थी, अब अखण्ड और एक होकर समग्र का सामञ्जस्य करती है । निषिद्ध को भी लक्ष्य-सिद्धि के लिए तूलिका के रँग की तरह स्वीकार कर पन्त निर्म्माणोन्मुख है। उनके चित्रपट मे जनता के राग-द्वेष, घृणा-कलह, रूढि-रीति, सबको स्थान मिल गया है। 'युगवाणी' के 'मानवपन' मे उन्होने कहा था—

"पीले, पत्ते, टूटी टहनी,
छिलके, ककर, पत्थर

कूड़ा, करकट सब कुछ भू पर
लगता सार्थक, सुन्दर।"

इस कूडे-करकट से ही नई खाद बन सकती है, नया निर्म्माण हो सकता है, मृण्मय ही चिन्मय बन सकता है। कवि ने इसी में से जीवन की सुन्दर निधियां चुन ली हैं।

'आधुनिक कवि' के पर्य्यालोचन के बाद 'उत्तरा' की प्रस्तावना मे पन्त जी का वैचारिक क्षेत्र विस्तृत हो गया है।

प्रगतिवाद की गति-विधि

पन्त जी प्रगतिवाद के प्रोत्साहक रहे है, अब भी वे उसके गुणग्राहक है, किन्तु उसमे पूर्णत सहमत नही है। प्रगतिवादियो की वर्त्तमान गति-विधि (अतिवादिता, निरकुशता, सकीर्णता) से उन्हे असन्तोष है। पन्त जी सजग करते हैं—"मार्क्सवाद का आकर्षण उसके खोखले दर्शन-पक्ष मे नही, उसके वैज्ञानिक (लोकतन्त्र के रूप मे मूर्त्त) आदर्शवाद मे है, जो जनहित अथवा सर्वहारा का पक्ष है, किन्तु उसे वर्गक्रान्ति का रूप देना अनिवार्य्य नही है। वर्ग-युद्ध का पहलू फासिज्म की तरह ही निकट भविष्य मे पूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी युग की दूसरी प्रतिक्रिया के रूप मे विकृत एव विकीर्ण हो जायगा।"

ज्यो-ज्यो मानवता का भाग्य-निर्णय (भविष्य) निकट आता जा रहा है त्यो-त्यो राजनीति के प्रतिध्वनि-स्वरूप साहित्य मे भी सैद्धान्तिक वाद-विवाद बढता जा रहा है।

वाद-विवाद का उत्साह प्रगतिवादियो मे अधिक है, यहाँ तक कि उनमे भी परस्पर इतना मतभेद आ गया है कि अति-मुखर प्रगतिवादी अपने प्रभुत्व के लिए शेष साथियो को छोडते जा रहे है। जो कलाकार जीवन और साहित्य के स्थायी निर्म्माण मे लगे हुए है उनकी गणना प्रगति-

वादियो मे नही की जाती। प्रगतिवाद का अभिप्राय केवल दल-विशेष का राजनीतिक प्रचार मात्र रह गया है।

साहित्यिक प्रगतिवादियो मे यशपाल रचना के स्थायित्त्व के लिए कला को भी विशेष स्थान देते आये है, पन्त जी कला के साथ भारतीय सस्कृति को भी। प्रगति और सस्कृति के विवाद मे सुसम्वादिता लाने के लिए पन्त जी कहते है—"साहित्य के क्षेत्र मे मान्यताओ की दृष्टि से हम मार्क्सवाद या अध्यात्मवाद की दुहाई देकर आज जिन हास्यप्रद तर्को में उलझ रहे है उससे अच्छा यह होगा कि हम एक दूसरे के दृष्टिकोणो का आदर करते हुए दोनो की सच्चाई स्वीकार कर ले।"

इसी दृष्टि से 'युगपथ' की 'त्रिवेणी' मे कवि ने प्रगति और सस्कृति का सम्मिलन कराया है। यमुना है प्रगति, गगा है सस्कृति। गगा की मनोभूमि मे सञ्चरित होकर जो सरस्वती (अन्त सज्ञा) उसे सस्कृति की स्रोतस्विनी बनाये हुए है, वही यमुना को सन्देश देती है—

मै कहने आई, रुको, रुको,
    गति ही मे मत बह जाओ,
ओ इच्छा से पागल सरिते,
    सोचो, मन को समझाओ!

...   ..

तुम क्रुद्ध रुद्ध नित उफनाती
    टकराती, रँग रँग जाती,
मुझको भय है, तुम अतल गर्त्त मे
    कही नही गिर जाओ!

भीतर देखो, भीतर है मति
    बाहर गति, अन्धी गति है,

तुम शान्त धीर गगा मे मिल
गति को गम्भीर बनाओ !

हमारे साहित्य मे पन्त जी प्रगति और सस्कृति के समन्वयकार सरस्वती-पुत्र है। प्रगति और सस्कृति, विज्ञान और दर्शन, इन दोनो का समन्वय जीवन की गगा-यमुनी धारा की तरह हो जाय, यही उनका निर्देशन है।

'आधुनिक कवि' के पर्य्यालोचन मे पन्त जी मार्क्सवाद (ऐतिहासिक भौतिकवाद) का पक्ष प्रमुखता से उपस्थित कर चुके है। अब 'उत्तरा' की प्रस्तावना मे उन्होने प्रगतिवाद के एक शुभचिन्तक परामर्शदाता के नाते उसके सामने भारतीय सस्कृति का भी कल्याण-पक्ष उपस्थित किया है।

भारतीय सस्कृति चिरउदार है, यह इतिहास से भी सिद्ध है। पन्त जी सास्कृतिक उदारता के कारण ही साहित्य मे प्रगतिवाद को भी अपनाते आये है, किन्तु उच्छल प्रगतिवादी सस्कृति की साधना को स्वीकार नही करते। पन्त जी ने 'युगवाणी' मे कहा था—

हाड-माँस का आज बनाओगे तुम मनुज समाज ?
हाथ-पाँव सगठित चलावेगे जग-जीवन-काज !

'उत्तरा' की प्रस्तावना मे भी वे लिखते है—"सभ्यता के विकास-क्रम मे जब मनुष्य का मन एव चेतना इतनी अधिक विकसित हो चुकी है और भिन्न युगो मे अन्तर्मन की मान्यताएँ भी (धर्म्म, अध्यात्म, ईश्वर-सम्बन्धी) स्वीकृत होकर लोक-कल्याण के लिए उपयोगी प्रमाणित हो चुकी है, तब आज उन सबका बहिष्कार कर केवल माँस-पेशियो के सगठित बल पर मानव-जीवन के रथ या महायान को आगे बढाने का दुस्साहस मेरी दृष्टि मे केवल इस युग के दुर्द्दान्त विक्षोभ का अन्ध विद्रोह ही है।"

शारीरिक उद्वेगो की तरह ही प्रगतिवाद मे वर्ग-सघर्ष की भी प्रवृत्ति पन्त जी को अभीष्ट नही है। 'आधुनिक कवि' के पर्य्यालोचन और 'स्वर्ण-

धूलि' की 'आशंका' शीर्षक कविता में उनका दृष्टिकोण देखा जा सकता है। इस संघर्ष-युग में संस्कृति और कला के विकास के लिए वे भारत को पथ-प्रदर्शक के रूप में देखना चाहते हैं, इसीलिए कहते हैं—"पश्चिम के देश अपने राष्ट्रीय स्वार्थों तथा आर्थिक स्पर्द्धाओं के कारण जिस प्रकार अभी तक विश्व-संहार के यन्त्रालय बने हुए हैं, भारत एक नवीन मनुष्यत्त्व के आदर्श में बँध कर तथा अपने बहिरन्तर जीवन को नवीन चेतना के सौन्दर्य्य में संगठित कर महासृजन एवं विश्व-निर्म्माण का एक विराट् कार्य्यालय बन जाय।"—पन्त जी अपनी रचनाओं में इसी ओर प्रयत्नशील हैं।

अन्तर्मानव का संघर्ष

आज जो युग-संघर्ष हो रहा है, वह केवल बाहरी सतह पर है। उसमें मन नहीं, तन संघर्ष कर रहा है। पन्त जी कहते हैं—"यह मात्र बाहर का रोटी का युद्ध शीघ्र ही मन के रणक्षेत्र में नवीन मान्यताओं के देवासुर-संघर्ष का रूप धारण कर, एवं मानव-चेतना तथा अस्तित्त्व के अन्तरतम स्तरों को आन्दोलित कर, मानव-हृदय को स्वर्ग-शोणित से स्नान-पूत तथा नवीन चेतना के सौन्दर्य्य और मानवता की गरिमा से मण्डित कर देगा।"

'ग्राम्या' में कवि ने सन्' ४० का स्वागत करते हुए कहा था—

आओ हे दुर्द्धर्ष वर्ष ! लाओ विनाश के साथ नव सृजन,
विंश शताब्दी का महान विज्ञान ज्ञान ले, उत्तर यौवन।

युग-संघर्ष के भीतर से भविष्य के उसी 'उत्तर यौवन' का उदय होगा। मनुष्य केवल संघर्ष-मुख नहीं, उत्कर्षशील अन्तर्मुख प्राणी भी है; इसी दृष्टि से पन्त जी कहते हैं—"मैं वर्ग-हीन सामाजिक विधान के साथ ही मानव-अहन्ता के विधान की भी नवीन चेतना के रूप में परिणति सम्भव समझता हूँ और युग-संघर्ष में जन-संघर्ष के अतिरिक्त अन्तर्मानव का संघर्ष भी देखता हूँ।"

आज जो युग-सघर्ष हो रहा है उसमे विगत युगो की 'सीमित रुद्ध चेतना' विम्वित हो रही है—

"शोषक है इस ओर, उधर है शोषित,
बाह्य चेतना के प्रतीक जो निश्चित !
धनिको श्रमिको का स्वरूप धर बाहर
ह्रास शक्तियाँ आत्मनाश-हित तत्पर,
क्षोभ भरे युग-शिखर उभडते दुर्धर
टकराता भू ज्वार क्षुब्ध भव-सागर !
नृत्य कर रही क्रान्ति रक्त लहरो पर
घृणा-द्वेष की उठी आँधियाँ दुस्तर !
कौन रोक सकता उद्वेग प्रलयकर
मर्त्यो की परवशता, मिटते कट-मर !
('उत्तरा')

इस सघर्ष मे तन का विसर्जन और मन का नवसृजन हो रहा है—

सो सौ बाँहे लडती है, तुम नही लड रहे,
सौ सौ देहे कटती है, तुम नही कट रहे,
हे चिर मृत, चिर जीवित भू-जन !

जाने से पहिले ही तुम आ गये यहाँ
इस स्वर्ण धरा पर,
मरने से पहिले तुमने नव जन्म ले लिया,
धन्य तुम्हे हे भावी के नारी-नर !
काट रहे तुम अन्धकार को,
छाँट रहे मृत आदर्शों को,

नव्य चेतना मे डुबा रहे,
युग-मानव के सघर्षो को।
('स्वर्णधूलि')

पन्त जी जनवाद को राजनीतिक सस्था या तन्त्र के बाह्य रूप मे ही न देख कर, भीतरी प्रजात्मक मानव-चेतना (सृजनशील चेतना) के रूप मे भी देखते है। जन-सघर्ष मे भीतरी चेतना का ही प्रजनन अथवा नवजन्म हो रहा है। एक नया मन बन रहा है जिसे नवजात मन कह सकते है।

बाह्य सघर्षो मे जिनका मन जाग्रत है, जो देहजीवी नही, मनोजीवी है, उन्ही की चेतना से अनुप्राणित होकर 'राजनीतिक आन्दोलन सास्कृतिक आन्दोलनो मे बदल जायँगे।' गान्धी और अरविन्द के पद-चिह्न उनके ज्योति-चिह्न बनेंगे।

सस्कृति की सीमाएँ

सस्कृति को पन्त जी व्यापक अर्थ मे लेते है। वे लिखते है—"सस्कृति को मै मानवीय पदार्थ मानता हूँ। उसके भीतर अध्यात्म, धर्म्म, नीति से लेकर सामाजिक रूढि, रीति तथा व्यहारो का सौन्दर्य्य भी एक अन्तर-सामञ्जस्य प्राप्त कर लेता है। वह न धर्म्म तथा अध्यात्म की तरह ऊर्ध्व सञ्चरण है, न राजनीति की तरह समतल, वह इन दोनो का मध्यवर्त्ती पथ है जिसमे दोनो के पोषक तथा प्राणप्रद तत्त्वो के बहिरन्तर का वैभव मानवीय व्यक्तित्त्व की गरिमा धारण कर लेता है।"—इस सामञ्जस्य में राजनीति और सस्कृति दोनो एकरस हो जाती है। दोनो की अपनी-अपनी उपयोगिता है—"राजनीतिक लोकतन्त्र जहाँ हमारे भोग के सञ्चरण की व्यवस्था तथा रक्षा करता है, सास्कृतिक विश्वद्वार हमारे मनुष्यत्त्व (आत्मा) का पोषण करेगा।"

सामञ्जस्य की दृष्टि से पन्त जी जीवन के सभी निर्म्माणात्मक तत्त्वो को स्वीकार कर के चले है। वे कहते है—"मै युग की प्रगति की धाराओ का

क्षेत्र, वर्ग-युद्ध मे भी मानते हुए (यद्यपि अपने देश के लिए उसे अनावश्यक तथा हानिकर समझता हूँ), उससे कही अधिक विस्तृत तथा ऊर्ध्व मानता हूँ और सुधार-जागरण के प्रयत्नो को भी अपने-अपने स्थान पर आवश्यक समझता हूँ, क्योकि जिस सञ्चरण का बाहरी रूप क्रान्ति है उसी का भीतरी रूप विकास। अतएव, युगपुरुष को पूर्णत सचेष्ट करने के लिए यदि लोक-सगठन के साथ गान्धीवाद को पीठिका बना कर मन सगठन (सस्कार) का भी अनुष्ठान उठाया जाय और मनुष्य की सामाजिक चेतना (सस्कृति) का विकास विश्व-परिस्थितियो (वाष्प विद्युत् आदि) के अनुरूप नवीन रूप से सक्रिय-समन्वय में किया जाय तो वर्त्तमान के विक्षोभ के आर्त्तनाद तथा क्रान्ति की क्रुद्ध ललकार को लोक-जीवन के सगीत तथा मनुष्यता की पुकार में बदला जा सकता है।"

लोक-जीवन की चित्र-कला मे पन्त जी मनुष्य के मनोविकारो (राग-द्वेष) को भी सयोजित करते है। कहते है—"मै जनता के राग-द्वेष, क्रोध तथा असन्तोष को भी आदर की दृष्टि से देखता हूँ, क्योकि उसके पीछे मनुष्य का हृदय है।"

'स्वर्णकिरण' के 'अशोक वन' मे हनुमान जी सीता जी से कहते है—

सद् विकास का, देवि, असद् भी
इस जग मे परोक्ष है कारण।

इसी दृष्टि से मनोविकारो की भी अपनी एक सार्थकता है। ये राग-द्वेष-पूर्ण प्राणी भी कभी देवात्म थे—

"ये मर्त्यो के पद कभी रहे
देवो के चरण, नही सशय
नव स्वप्नो के ज्वाला-पग धर
जन कभी चलेगे हो निर्भय।"

('उत्तरा')

विकृत चेतन को कवि सुकृत की ओर प्रेरित करना चाहता है। प्राणी तो वही अमृत-पुत्र है, केवल उसका गत्यन्तर चाहिये। जो दुष्प्रवृत्तियो मे इतना तीव्र है वह अपने 'राग-तत्त्व' के परिष्कार से सद्‌वृत्तियो मे भी वेगवान हो सकता है। इसीलिए कवि मनुष्य को लाञ्छित नही करता, सस्कृति के लिए उसे उत्साहित करता है—

फिर मृत्यु-भीत जन हो निर्भय,
मन प्राण ले सके नव निर्णय,
उर करे नही तुम पर सशय,
तुम घट घट वासी परिचित हे,
चिर जन्म मरण मे।
फिर प्रेम, बनो तुम न्याय क्षमा मन मन मे,
जन-मगल हित हे!
('उत्तरा')

इस तरह कवि के लिए मनुष्य का मनोजगत आत्मसञ्चरण (नव-निर्म्माण) का क्षेत्र है, वर्ग-सञ्चरण (श्रेणिसघर्ष) का नही।

शब्द-सङ्केत

भावो की तरह अपने विचारो को भी पन्त जी साकेतिक (प्रतीक) शब्दो मे व्यक्त करते है। अन्तश्चेतना से विच्छिन्न बाह्य जीवन को असगठन या माया कहते है, बहिरन्तर के सम्मिलित जीवन को सगठन, प्रकाश या सत्य कहते है। इसी तरह समतल और ऊर्ध्वतल भी उनके अर्थगर्भित शब्द है, जिन्हे कही 'धरा-शिखर' और कही भू-जीवन (बहिर्जीवन) और अन्तर्जीवन मे प्रयुक्त करते है। इन दोनो का सगठन अथवा सयोजन 'सस्कृति' से होता है।

पन्त जी इसका स्पष्टीकरण यो करते है—"जिस विकासकामी चेतना को हम सघर्ष के समतल-धरातल पर प्रजातन्त्रवाद के नाम से पुकारते है उसी को ऊर्ध्व सास्कृतिक धरातल पर मे अन्तर्चेतना या अन्त-र्जीवन कहता हूँ। इस युग के जड (परिस्थितियाँ, यन्त्र तथा तत्सम्बन्धी राजनीतिक आर्थिक आन्दोलन) और चेतन (नवीन आदर्श, नैतिक दृष्टिकोण तथा तत्सम्बन्धी मान्यताएँ आदि) का सघर्ष इसी अन्तर्चेतना या भावी मनुष्यत्त्व के पदार्थ के रूपमे सामञ्जस्य ग्रहण कर उन्नयन को प्राप्त हो सकेगा।"

सस्कृति को पन्त जी ने सगुण, सूक्ष्म सगठन या मन सगठन तथा लोकोत्तर, देवोत्तर मनुष्यत्त्व इत्यादि शब्दो मे व्यञ्जित किया है। पन्त जी कहते है—"सस्कृति, सौन्दर्य्य-वोध, आदि हमारे अन्तर्मन के सगठन है। सस्कृति को मात्र वर्गवाद की दृष्टि से देखना एव बाह्य परिस्थितियो पर अवलम्बित अति विधान मानना केवल दुराग्रह है। क्योकि उसके मूल, मन से कही गहरे, बाहरी परिस्थितियो के अतिरिक्त, भीतरी सूक्ष्म परिस्थितियो मे भी है।"

ऐतिहासिक प्रवृत्तियो की तरह ही समतल (पार्थिव तल) के सभी प्रयत्नो को पन्त जी सास्कृतिक उपकरण बना लेना चाहते है। इसी दृष्टि से चेतन के साथ जड, प्राण के साथ अन्न, सूक्ष्म के साथ स्थूल, व्यक्ति के साथ समाज, मनुष्य के साथ यन्त्र, ज्ञान के साथ विज्ञान, आदर्श के साथ वस्तु पूर्व के साथ पश्चिम को सम्बद्ध करते है।

ये परस्पर-पूरक होकर अविभक्त है। ये प्रचलित शब्द भी पन्त जी के लिए केवल अर्थ-वाहक (प्रतीक) है, इनका लाक्षणिक तात्पर्य्य विद्या-अविद्या का द्योतक है। यह 'स्वर्णकिरण' की इन पक्तियो से स्पष्ट हो जाता है—

ब्रह्मज्ञा न रे विद्या, भूतो का एकत्त्व, समन्वय,
भौतिक ज्ञान अविद्या, बहुमुख एक सत्य का परिचय।

ईशावास्योपनिषद् के इन शब्दो मे पन्त जी को बहिरन्तर निम्मर्ाण का सकेत-सूत्र मिला है—

"अन्धतम प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया रता ॥
विद्याचाविद्या च यस्तद्वेदोभय सह ।
अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥

विद्या ओर अविद्या अथवा आत्मिक और ऐहिक शोभा से निर्म्मित जीवन के इन्द्रधनुष मे कवि धरा-शिखर को सयुक्त देखना चाहता है। इन्द्रधनुष कला का प्रतीक है। उसमे ऋषि कवि है, कलाकार है।

विद्या के लिए कवि अविद्या की उपेक्षा नही करता, क्योकि चिन्मय के लिए मृण्मय ही माध्यम है—

"तन से ही कर नव तन धारण
अमर चेतना करती सर्जन,
चेतन की भव-मुक्ति के लिए
वाहन जड तन, मात्र न बन्धन।"
('स्वर्णकिरण')

इसी तरह कवि निर्गुण (जीवन्मुक्त) के लिए जीवन की सगुण साधना की ओर है। वह लोक-गृहस्थो का कवि है।

एकता और विविधता

समतल अविद्याका धरातल है। उसमे जीवन की अनेकता अथवा सामाजिक विविधता है, एकोन्मुख सत्य की बहुमुखी अभिव्यक्ति है। समतल

पर ही व्यक्ति का अपनी रुचि के अनुकूल मौलिक व्यक्तित्त्व बनता है—

"सर्व शक्तिमत्ता आत्मा की
जीव-सृष्टि में बहुमुख विकसित,
रुचि अनुकूल विकास व्यक्ति का
श्रेयस्कर मानव-समाजहित ।
ज्ञानी, कर्मी, शिल्पी, सैनिक
एक सत्य के अवयव निश्चित,
अन्तर्पथ से निखिल चराचर
आत्मा के बल से सपोषित ।"

('स्वर्णकिरण')

इसी दृष्टि से पन्त जी कहते है—"सौन्दर्य्य-स्रष्टा एव जीवन-द्रष्टा चाहे वाल्मीकि हो या गोर्की, वह सेनानायक या सैन्यवाहक नही होता, वह सन्देश या युग-सकेत-वाहक ही होता है । वह भावात्मक चेतना का ही सृजन-गम्भीर शख-घोष करता है ।"

'ग्राम्या' मे पन्त जी ने कवि को 'जग-गृहिणी' और 'जीवन-किसान' कहा है, अर्थात्, एक ओर वह मनुष्य के अन्त पुर (अन्तर्जगत) की व्यवस्था करता है, दूसरी ओर जीवन को किसान की तरह वहिर्तल पर उर्व्वर बनाता है । वह सास्कृतिक कर्म्मयोगी है, गोस्वामी जी ने भी किसान के साथ साधक को रख कर यही सकेत किया है—

कृषी निरावहि चतुर किसाना ।
जिमि बुध तजहि मोह, मद, माना ॥

कृषि-युग मे हमारे यहाँ व्यक्तियो की क्षमता के अनुसार वर्ण-व्यवस्था द्वारा पात्रानुकूल श्रम-विभाजन किया गया था । यह यन्त्र-युग है । इस युग

मे पात्रापात्र का विवेक नही रह गया है। पन्त जी कहते है—"यदि पुरानी दुनिया (मध्ययुग) अतिवैयक्तिता के पक्षपात से पीडित थी तो नई दुनिया अति-सामाजिकता के दल दल मे फँसने जा रही है, जिसका दुष्परिणाम यह होगा कि कालान्तर मे मनुष्य की सुख-शान्ति एक किमाकार यान्त्रिक तन्त्र के दु सह बहिर्भूत भार से दब जायगी और वैयक्तिक अन्त सच्चरण का दम घुटने लगेगा। हमे व्यावहारिक दृष्टि से भी व्यक्ति तथा समाज को दो स्वतन्त्र अन्योन्याश्रित सिद्धान्तो की तरह स्वीकार करना ही होगा तथा मनुष्य की बहिरन्तर्मुखी प्रवृत्तियो के विकास और सामञ्जस्य के आधार पर ही विश्वतन्त्र को प्रतिष्ठित करना होगा।"

व्यक्ति और समाज का सामञ्जस्य ऊर्ध्वतल पर होता है। ऊर्ध्वतल विद्या का अन्तस्तल है, वह मनुष्य के मनोविकास का सूक्ष्म आध्यात्मिक शिखर है। ऊर्ध्वतल पर ही विविधता को एकता मिलती है, मानो गौरी-शकर शृग मे सम-विषम पृथ्वी ही एकाग्र हो जाती है। असत् से सत् की ओर, तम से प्रकाश की ओर ले जाने के लिए उसकी आवश्यकता है। वर्गवादी प्रवृत्तियाँ केवल अविद्या के तम मे ही प्रगति कर रही है। कवि कहता है—

> अन्तर्जीवन के वैभव से आज अपरिचित भू-जन,
> मध्यम अधम वृत्तियो से कल्पित उनका भव-जीवन,
>
> निज आत्मिक ऐश्वर्य उसे श्रमतप से करना जागृत,
> दैन्यो मे विदीर्ण मानव को बनना फिर महिमान्वित।"
>
> ('स्वर्णकिरण')

पन्त जी कहते है—"हम आज विश्व-तन्त्र, विश्व-जीवन, विश्व-मन के रूप मे सोचते है। पर इसका यह अभिप्राय नही कि विश्व-योजना मे विभिन्न देशो का अपना मौलिक व्यक्तित्व नही रहेगा। एकता का सिद्धान्त

अन्तर्मन का सिद्धान्त है, विविधता का सिद्धान्त बहिर्मन तथा जीवन के स्तर का, दूसरे शब्दो मे एकता का दृष्टिकोण ऊर्ध्व दृष्टिकोण है और विभिन्नता का समदिक्। विविध तथा अविभक्त होना जीवन-सत्य का सहज अन्तर्जात गुण है, इस दृष्टि से भी ऐसे किसी विश्व-जीवन की कल्पना नही की जा सकती जिसमे ऐक्य और वैचित्र्य सयोजित न हो। इसलिए देश-प्रेम अन्तर्राष्ट्रीयता या विश्वप्रेम का विरोधी न होकर उसका पूरक ही है।"

व्यक्ति और समाज की स्थिति भी देश-प्रेम और विश्व-प्रेम की तरह ही है। कवि के शब्दो मे—

ऊर्ध्व सचरण मे रे व्यक्ति, निखिल समाज का नायक,
समदिक् गति मे सामाजिकता जनगण-भाग्य-विधायक,
ऊर्ध्व चेतना को चलना भूपर धर जीवन के पग,
समदिक् मन को पख खोल चिद् नभ मे उठना व्यापक!

('स्वर्णकिरण')

कवि चाहता है कि सामाजिक सतह पर व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का भी शुभविकास हो—

अन्तर्बाह्य प्रकृति उपकरणो को सञ्चित कर प्रतिक्षण
आओ, हम जन-लोक रचे, देवो को दे आमन्त्रण!
महाप्राण रे विश्वचेतना हमे चाहिये केवल,
भू-मगल के साथ आज परिणीत व्यक्ति का मगल।"

('स्वर्णकिरण')

हम कहे, कवि व्यक्तिवादी नही, व्यक्तित्त्ववादी है।

विद्या और अविद्या (ऊर्ध्वतल और समतल) जीवन मे उभयालकार की तरह जुडे हुए है, एक के लिए दूसरे को छोडा नही जा सकता, उन्ही

के सयोजन से जीवन सगुण है। प्राणी 'क्रोटन की टहनी' की तरह केवल 'प्रकाश' से ही नही जी सकता, उसे प्रकाश के साथ 'रज का तम' भी चाहिये। किन्तु—

"धरती के ही कर्दम मे सन
नही फूलता फलता जीवन,

अतएव—

उसे चाहिये मुक्त समीरण
उसे स्वर्ग-किरणो के चुम्बन।"

('युगपथ')

पृथ्वी और आकाश की तरह ही समतल और ऊर्ध्वतल हमारे जीवन के आधार और आधेय है।

स्थूल और सूक्ष्म

समतल और ऊर्ध्वतल चेतना के विकास-क्रम की अथवा मनुष्य के जीवन-दर्शन की सीमाएँ मात्र हैं, इनमे केवल नाम-रूप का अन्तर है, दोनो का अभ्यन्तर एक है। समतल मे जिस प्राणित्त्व या पुरुषार्थ का खाद्य है, ऊर्ध्वतल में उसी की स्वस्थता (आत्मस्थता)। प्रचलित भाषा मे इसी को वस्तु और आदर्श कहा जाता है। पन्त जी कहते है—

"आदर्श और वस्तुवादी दृष्टिकोणो मे केवल धरातल का भेद है, और ये धरातल आपस मे अविच्छिन्न रूप से जुडे हुए है। सत्य, शिव, सुन्दर सस्कृति और कला का धरातल है, क्षुधा-काम प्राकृतिक आवश्यकताओ का। जिस सत्य को हम स्थूल धरातल पर क्षुधा-काम कहते है, उसी को सूक्ष्म धरातल पर सत्य शिव सुन्दर। एक हमारी सत्ता की बाहरी भूख प्यास है, दूसरी भीतरी। यदि सस्कृति और कला हमारी आवश्यकताओ के सत्य से बिलकुल ही भिन्न तथा विच्छिन्न होती तो उनकी हमारे लिए उपयोगिता ही क्या होती ? ये केवल स्वप्न या अतिकल्पना मात्र होती। साथ ही

यदि हमारी क्षुधा-काम की वृत्तियाँ सस्कृत होकर सत्य शिव सुन्दर के धरातल पर न उठ जाती, तो वे मानवीय नही बन सकती। हमारी सामाजिक मान्यताएँ इसी मानवीकरण अथवा ऊर्ध्वविकास के सिद्धान्त पर अवलम्बित हैं और मानव-सभ्यता का लक्ष्य अन्ध-प्रवृत्तियो के पशु-जीवन मे मानवीय सन्तुलन स्थापित करना ही रहा है।" 'युगवाणी' के मानव मे भी कवि का यही सकेत है—

पशु जीवन के तम मे
जीवन-रूप मरण मे
जाग्रत मानव !
सत्य बनाओ स्वप्नो को
रच मानवता नव,
हो नवयुग का भोर !"

वस्तुसत्य प्रगतिवाद या मार्क्सवाद का दृष्टिकोण है, उसके अनुसार 'पदार्थ का सञ्चरण परिस्थितियो के सत्य या गुणो मे अभिव्यक्त होता है।' स्वप्न-सत्य आत्मवाद या गान्धीवाद का दृष्टिकोण है, उसके अनुसार चेतना का सञ्चरण मन के गुणो मे' होता है। पन्त जी सस्कृति मे दोनो का सामञ्जस्य करते आये हैं। पन्त जी पीठस्थविर हैं। पहिले वे गान्धीवाद के लिए प्रगतिवाद को पीठिका बनाते थे, अब प्रगतिवाद को गान्धीवाद की पीठिका देते हैं।

समन्वय या सामञ्जस्य पन्त जी का सामयिक युग-प्रयास है। अयुत युगो की दृष्टि से वे कहते हैं—"पदार्थ, जीवन, मन तथा आत्मा की मान्यताए हमारी बुद्धि के विभाजन भर हैं, सम्पूर्ण सत्य इनसे परे और इनमें भी व्याप्त होने के कारण एक तथा अखण्डनीय है।" इस तरह पन्त ज़ी का जीवन-दर्शन सर्ववाद की ओर भी है और उससे ऊपर भी, सर्वोपरि।

युग-निर्म्माण के लिए पन्त जी 'अन्न, प्राण, मन' के त्रिदलो को समन्वित कर नवीन सास्कृतिक रूप दे देते है। अन्त करण के केन्द्रीकरण के लिए इनसे ऊपर 'परम व्योम' (चिदानन्द-लोक) मे मानवी चेतना को सुस्थित देखना चाहते है। जीवन के इसी बहिरन्तर-विकास का निर्देश 'युगपथ' की इन पक्तियो मे है—

मानवता निर्म्माण करे जन
चरण मात्र हो जिसके भू पर,
हृदय स्वर्ग मे लय हो जिसका
मन हो स्वर्ग क्षितिज से ऊपर।

अध्यात्म और मनोविज्ञान

अपनी दार्शनिक दृष्टि के लिए पन्त जी ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि को ओझल नही कर दिया है। 'युगवाणी' मे जो कवि ऐतिहासिक भूमि पर था वह अवैज्ञानिक कैसे हो सकता है! उसकी दार्शनिक दृष्टि का महत्त्व इसलिए बढ जाता है कि वह वैज्ञानिक दृष्टि को आत्मसात् करके ही आत्मवाद का प्रतिष्ठाता है। वह मनोविज्ञान को अन्त स्पर्श और सूक्ष्म ज्ञान को मनोवैज्ञानिक समाधान देता है।

एक ओर, सूक्ष्म दृष्टि से पन्त जी कहते है—"आधुनिक मनोविज्ञान मनुष्य के विचारो के मन को नही छू सका है। उसने केवल हमारे भावनाओ के मन में हलचल भर पैदा कर दी है।" दूसरी ओर, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कहते है—"भारतीय दर्शन भी आधुनिकतम भौतिक दर्शन (मार्क्सवाद) की तरह सत्य के प्रति एक उपनयन (एप्रोच) मात्र है, किन्तु अधिक परिपूर्ण, क्योकि वह पदार्थ, प्राण (जीवन), मन तथा चेतना (स्पिरिट) रूपी मानव-सत्य के समस्त धरातलो का विश्लेषण तथा सश्लेषण कर सकने के कारण उपनिषत् (पूर्ण एप्रोच) बन गया है। दुर्भाग्यवश

हमारे तरुण बुद्धिजीवी अध्यात्मवाद को बादलो के ऊपर का कोई सत्याभास मानते है और उसे हमारे प्रतिदिन के जीवन के एक सूक्ष्म किन्तु सक्रिय सत्य के रूप मे नही देखते। जिस प्रकार पदार्थ का एक भौतिक तथा मानसिक स्तर है उसी प्रकार उसका एक आध्यात्मिक स्तर भी।"

आज हमारा साहित्य जिन मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियो मे उलझ रहा है पन्त जी ने उसे भी सुलझाने का प्रयत्न किया है। प्रगतिवाद मे जिन अन्ध प्रवृत्तियो को प्रश्रय मिल रहा है, उनसे उन्हे सन्तोष नही है। कहते है—"उपचेतन अवचेतन के निम्न स्तरो को इतनी प्रधानता मिल गयी है कि अव्यक्त या प्रच्छन्न (सबलिमिनल) मन के उच्च स्तरो के ज्ञान से हमारा तरुण बुद्धिजीवी अपरिचित ही रह गया है, भारतीय मनोविश्लेषक इड, लिबिडो तथा प्राण-चेतना-सत्ता (फ्रायडियन साइकी) के चित्र-आवरण को चीर कर गहन शुभ्र जिज्ञासा करता है—'केनैषित पतति प्रेषित मन केन प्राण प्रथम प्रैति युक्त ?"

'युगवाणी'-काल मे पन्त जी ने अवचेतन मन को प्रधानता दी थी, अब भारतीय दर्शन का सुदृढ आधार पाकर 'स्वर्णकिरण' मे कहते है—

गूढ रहस्यो के अभेद्य स्तर
जिन पर जीवन की गति निर्भर
अवचेतन-प्रच्छन्न-मनस् का
निस्तल अविच्छिन्न रे सागर।

मन्वन्तर

वादो मे विभक्त दृष्टिकोण इस द्वन्द्व-युग का विद्रूप मात्र है। पन्त जी कहते है—"वास्तव मे आदर्शवाद, वस्तुवाद, जड-चेतन, पूर्व-पश्चिम आदि शब्द उस युग-चेतना के प्रतीक अथवा उस सभ्यता के विरोधाभास है जिसका सञ्चरण-वृत्त अब समाप्त होने को है।" पन्त जी देख रहे है

कि बाहर की क्राति केवल मनोरागो की अराजकता न रह कर मनुष्य के मनोजगत का भी मन्वन्तर कर देगी। द्वन्द्व का द्वित्त्व मिट कर अन्तर्निर्म्माण मे एकाग्र हो जायगा। इसीलिए पन्त जी कहते है—"सभ्यता के विकास-क्रम मे हमारा मनुष्यत्त्व निखर उठेगा एव जठर का सघर्ष उत्पादन-वितरण के सन्तुलन मे नि शेष या समाप्तप्राय हो जायगा, मनुष्य का बहिर्जीवन उसके अन्तर्जीवन के अधीन हो जायगा, क्योकि मनुष्य के अन्तर्जीवन और बहिर्जीवन के सौन्दर्य्य मे इतना प्रकारान्तर है जितना सुन्दर माँस की देह तथा मिट्टी की निर्जीव प्रतिमा मे।" देह की सजीवता (अन्तश्चेतना) पाकर जब धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, हमारे जीवन के सचेतन व्यापार बन जायँगे तब उन्नयन, सयम, सौन्दर्य्य और आदर्श का अभिप्राय आज की अपेक्षा सुस्पष्ट हो जायगा। आदर्शवाद अभी पलायन इसलिए जान पडता है कि मिट्टी की निर्जीव प्रतिमाओ में आत्मनिरीक्षण नही, अन्त स्पन्दन नही, केवल प्रदर्शन है। 'युगपथ' के 'मिट्टी के खिलौने' मे कवि ने कहा है—

> हम मात्र मूर्त्तियाँ है बाहर
> चेतन प्रकाश-कण भीतर हैं।

भविष्य मे समन्वय की आवश्यकता नही पडेगी, युग का एकान्वय हो जायगा। सम्प्रति, विरूपाक्ष युग को सम्यक् दृष्टि देने के लिए पन्त जी समन्वय की ओर है। इसी दृष्टि से वे कहते हैं—

> प्राणिशास्त्र को मानवीय बनना पीकर आत्माऽमृत,
> मन शास्त्र को ऊर्ध्व तथा नव भौतिक दिशि मे विस्तृत,
> आदर्शों को रूढि-रीति-पाशो से होना विरहित,
> सदाचार नैतिकता को नवयुग-आकृति मे विकसित।

पन्त जी एक ओर ऊर्ध्व आलोक (आदर्श) को वस्तुतल का आधार देना चाहते हैं —

दीपशिखा-सी जगे चेतना
मिट्टी के दीपक से उठ कर

दूसरी ओर भूतल को ऊर्ध्वलोक के सौन्दर्य्य से सुशोभित देखना चाहते है—

बाँधो हे, इस इन्द्रधनुष को धरती की वेणी पर
जीवन के तम की कवरी हो स्वर्ग-विभा से भास्वर।
किरणो की सतरग स्मिति से भू के रजकण हो रञ्जित,
अन्धकार हो पुन दिशाओ का प्रकाश मे कुसुमित!
('स्वर्णकिरण')

कवि भविष्य के सृजनशील युग मे देख रहा है—

आकाश झुक रहा धरती पर
बरसा प्रकाश के उर्व्वर कण,
धरती उसके उर मे बुनती
छाया का सतरँग सम्मोहन।
('उत्तरा')

कवि की नयी रचनाओ मे इसी धरा-शिखर के अन्त प्रत्यक्ष चित्र-गीत है। इन्हे हम कवि की स्वप्निल सृष्टि कह सकते है, किन्तु कवि को अपनी इस स्वर्गीय सृष्टि पर विश्वास है—

"सूक्ष्म शरीरी स्वप्न आज के
होगे कल के सम्बल!"

भावी युग कला की सृष्टि और सौन्दर्य्य की दृष्टि मे ही जीवन की परिभाषा पा जायगा।

अमृतत्त्व

'आधुनिक कवि' के पर्य्यालोचन मे पन्त जी ने भारतीय सस्कृति की ऐतिहासिक दृष्टि से समीक्षा की थी। अब उसे ऐतिहासिक विकारो से हटा कर देखते हैं। कहते है—"बाहर की इस काई को हटा लेने के बाद भारत के अन्तश्चेतन मानस मे जो कुछ शेष रहता है उसके जोड का आज के ससार मे कुछ भी देखने को नही मिलता।"

पन्त जी नवयुवको को भारतीय दर्शन के अध्ययन के लिए प्रेरित करते है। उनकी अनुकरणशीलता से खिन्न होकर कहते है—"हम पश्चिम की विचारधारा से इतने अधिक प्रभावित है कि अपनी ओर मुड कर अपने देश का प्रशान्त गम्भीर, प्रसन्न मुख देखना ही नही चाहते। हममे अपनी भूमि के विशिष्ट मानवीय पदार्थ को समझने की क्षमता ही नही रह गयी है। हम इस सदियो के खडहर का बाहरी दयनीय रूप देख कर क्षुब्ध तथा विरक्त हो जाते है और दूसरो का बाहर से सँवारा हुआ मुख देख कर उनका अनुकरण करने लगते है। हम जानते है कि यह हमारी दीर्घ पराधीनता का दुष्परिणाम है, किन्तु एक बार सयुक्त प्रयत्न कर हमे इससे ऊपर उठना होगा और अपने देश की युग-युग के अनुभव से गम्भीर परिपक्व आत्मा को, उसके अन्त सौन्दर्य्य से तपोज्ज्वल शान्त सुन्दर मुख को पहचान कर अपने अन्त करण को उसकी गरिमा का उपयुक्त दर्पण बनाना होगा।"

आज के बुद्धिजीवी और साहित्यिक के मन मे जो सघर्ष और विरोध है, उसका कारण, पन्त जी के शब्दो मे यह है कि, "वह व्यक्ति और विश्व—अथवा समाज—के ही रूप मे सोचता है, और व्यक्तिगत तथा सामूहिक क्रिया-प्रतिक्रियाओ के भीतर ही युग-समस्याओ (राजनीतिक अर्थ मे) तथा मानव-जीवन की समस्याओ (सास्कृतिक अर्थ मे) का समाधान खोजता है, और कभी व्यक्ति से असन्तुष्ट होकर समाज की ओर झुकता है, कभी समाज की ओर से खिन्न होकर व्यक्ति की ओर। मेरी समझ में इन दोनो किनारो

पर उसे अपनी समस्याओ का समाधान नही मिलेगा। जो जीवन-मन-चेतना का तथा सूक्ष्म-स्थूल सत्य का प्रवाह व्यक्ति और समाज के तटो मे टकराता है, उसे आप समग्र रूप से इस प्रकार नही समझ सकेगे। आपको व्यक्ति और विश्व के साथ ही ईश्वर को भी मानना चाहिये, तब आप उसके व्यक्ति और विश्वरूपी सञ्चरणो को ठीक-ठीक ग्रहण कर सकेंगे, और जीवन-सौन्दर्य्य के स्रष्टा की तरह उन्हे प्रभावित कर सकेगे।"

'परिवर्त्तन' का आध्यात्मिक कवि 'युगवाणी' मे भी आस्तिक था और अब अपने काव्य-जीवन के उत्तर-काल मे भी आस्तिक है। मृग-मरीचिका के इस ऐतिहासिक युग को वह यही अमृत सन्देश दे रहा है —

"फिर श्रद्धा विश्वास प्रेम से
मानव-अन्तर हो अन्त स्मित,
सयम तप की सुन्दरता से
जगजीवन शतदल दिक् प्रहसित!"

काशी,
११-४-५०

कवि की श्रद्धाञ्जलि

श्री अरविन्द, सभक्ति प्रणाम !
स्वर्मानस के ज्योतित सरसिज,
दिव्य जगत जीवन के वर द्विज,
चिदानन्द के स्वर्णिम मनसिज,
ज्योति धाम,
सज्ञान प्रणाम !

विश्वात्मा के नव विकास तुम,
परम चेतना के प्रकाश तुम,
ज्ञान भक्ति श्री के विलास तुम,
पूर्ण प्रकाम,
सकर्म प्रणाम !

दिव्य तुम्हारा परम तपोबल,
अमृत ज्योति से भर दे भूतल,
सफल मनोरथ सृष्टि हो सकल,
श्री ललाम,
निष्काम प्रणाम !

('स्वर्णधूलि')

यह है योगीश्वर अरविन्द के प्रति हमारे साहित्य के देवकुमार कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त की आत्म-प्रणति ।

पन्त जी छायावाद के सौन्दर्य्य-शिल्पी और प्रगतिवाद के सास्कृतिक कवि है । कला और सस्कृति के कारण वे राजनीतिक सकीर्णताओ से मुक्त हैं और मानव-जीवन के साधको के प्रति श्रद्धालु । हिन्दी-पाठक रवीन्द्र-गान्धी और मार्क्स के प्रति उनकी श्रद्धा से परिचित है, अब वे अरविन्द के अनुगामी हैं ।

सन् '४४ मे पन्त जी साघातिक रूप से अस्वस्थ हो गये थे । उनकी अस्वस्थता का कारण सन् '४२ का आन्दोलन और दूसरे महायुद्ध की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उथल-पुथल था । बाह्य क्रान्तियो मे आन्तरिक शान्ति (सास्कृतिक सुषमा) न मिलने से उनका सुकोमल मन परिश्रान्त हो गया । उनकी 'मन क्लान्ति' का प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पडा, दो वर्ष तक वे शय्याग्रस्त रहे ।

'ग्राम्या' की रचना के बाद पन्त जी ने अपने अन्तर्जगत को मूर्त्त रूप देने के लिए'लोकायतन'की सस्थापना का सकल्प किया था। किन्तु राजनीतिक और आर्थिक अव्यवस्था के कारण कवि के जीवन की तरह ही उसके निम्मर्ाण-कार्य्य के लिए भी अनुकूल वातावरण और उपयुक्त क्षेत्र नही मिल सका । अतएव, सन् '४३ मे सार्वजनिक अनुभव और सामाजिक भ्रमण के लिए कवि को उदयशकर के कला-केन्द्र से सम्बद्ध हो जाना पडा । विजनवासी कवि के स्वास्थ्य पर नगरो की जनसकुलता और भ्रमण की अस्त-व्यस्तता का भी प्रभाव पडा ।

चिकित्सा और एकान्त-विश्राम से सन् '४६ मे शरीर से अपेक्षाकृत स्वस्थ हो जाने पर भी पन्त जी का मन उन्मन था, उन्हे नवजीवन का निर्देशन नही मिल रहा था । 'ग्राम्या' मे वे गान्धीवाद की पराजय दिखला चुके थे, 'युगवाणी' मे मार्क्सवाद की ओर बढ गये थे। यह ध्यान देने की बात है कि मार्क्सवाद को अपना कर भी पन्त जी ने किसी राजनीतिक पार्टी मे भाग नही लिया, क्योकि उनका कलाप्राण मन सास्कृतिक आधार चाहता

था। 'ग्राम्या' और 'युगवाणी' मे भी वास्तविकता की पृष्ठभूमि पर सस्कृति का ही सस्थापन है। बाहरी हलचलो के बजाय पन्त जी भीतर की आत्म-स्थता (सास्कृतिक सुस्थिरता) को महत्त्व देते आये है। 'गुञ्जन' मे उन्होने कहा है—

> कँप-कँप हिलोर रह जाती
> रे मिलता नही किनारा!
> बुद्‌बुद्‌ विलीन हो चुपके
> पा जाता आशय सारा।

देश-काल के कूलो मे पन्त जी इसी अन्तर्लीनता की साधना का सन्धान करते आये है। अस्वस्थता के बाद अकस्मात् उन्हे योगी अरविन्द की साधना से नवजीवन मिला! 'उत्तरा' की प्रस्तावना मे पन्त जी लिखते है—

"अपनी अनुभूतियो के लिए, जिन्हे मै अपनी सृजन-चेतना का स्वप्न-सञ्चरण या काल्पनिक आरोहण समझता था, मुझे किसी प्रकार के बौद्धिक तथा आध्यात्मिक अवलम्ब की आवश्यकता थी। इन्ही दिनो मेरा परिचय श्री अरविन्द के 'भागवत जीवन' (दि लाइफ डिवाइन) से हो गया। उसके प्रथम खण्ड को पढते समय मुझे ऐसा लगा, जैसे मेरे अस्पष्ट स्वप्न-चिन्तन को अत्यन्त सुस्पष्ट, सुगठित एव पूर्ण दर्शन के रूप मे रख दिया गया है। अपनी अस्वस्थता के बाद मुझे 'कल्पना' चित्रपट के सम्बन्ध मे मद्रास जाना पडा और पाडिचेरी मे श्री अरविन्द के दर्शन करने तथा श्री अरविन्द आश्रम के निकट सम्पर्क मे आने का सौभाग्य भी प्राप्त हो सका।

"मै अपने युग, विशेषत देश की प्राय सभी महान विभूतियों से किसी न किसी रूपमे प्रभावित हुआ हूँ। 'वीणा-पल्लव'-काल मे मुझ पर कवीन्द्र रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रहा है, 'युगान्त' और बाद की रचनाओ मे महात्मा जी के व्यक्तित्त्व तथा मार्क्स के दर्शन का। किन्तु इन सब मे जो एक परिपूर्ण एव सन्तुलित अन्तर्दृष्टि का अभाव खटकता

था, उसकी पूर्त्ति मुझे श्री अरविन्द के जीवन-दर्शन मे मिली, और इस अन्त-र्दृष्टि को मै इस विश्व-सक्रान्ति-काल के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा अमूल्य समझता हूँ ।

विश्व-कल्याण के लिए मै श्री अरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बडी देन मानता हूँ । उसके सामने इस युग के वैज्ञानिको की अणुशक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है । उनके दान के बिना शायद भूत-विज्ञान का बडा से बडा दान भी जीवन्मृत मानव जाति के भविष्य के लिए आत्मपराजय तथा अशान्ति ही का वाहक बन जाता । मै नही कह सकता, ससार के मनीषी तथा लोकनायक, श्री अरविन्द की इस विशाल आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि का उपयोग किस प्रकार करेगे अथवा भगवान् उसके लिए कब क्षेत्र बनायेगे ।"

अपने देशकी ज्ञान-गरिमा से अपरिचित युवको को पन्त जी श्री अरविन्द के जीवन-दर्शन के अध्ययन के लिए आमन्त्रित करते है । प्रगतिवादी तरुणो मे गुरुजनो के प्रति जो अवज्ञा और राजनीतिक सकीर्णता आ गयी है, उसकी ओर लक्ष्य कर पन्त जी लिखते है—

"आज हम छोटी-छोटी बातो के लिए पश्चिम के विचारको का मुँह जोहते है, उनके वाक्य हमारे लिए ब्रह्मवाक्य बन जाते है और हम अपनी इतनी महान् विभूति (अरविन्द) को पहिचान भी नही सके है, जिनके हिमालय-तुल्य मन शिखर के सामने इस युग के अन्य विचारक विन्ध्य की चोटियो के बराबर भी नही ठहरते । इसका कारण यही हो सकता है कि हमारी राजनीतिक पराधीनता की बेडियाँ तो किसी प्रकार कट गई, किन्तु मानसिक दासता की शृखलाएँ अभी नही टूटी है ।*

---

* मानसिक दासता से मुक्त चेतना को ही पन्त जी 'स्वाधीन चेतना' कहते है ।—लेखक

जिस मार्क्स तथा ऐंगिल्स के उद्धरणो को दुहराते हुए हमारा तरुण बुद्धिजीवी नही थकता, उसे अन्य दर्शनो के साथ अपने देश के दर्शन का भी साङ्गोपाङ्ग तुलनात्मक अध्ययन अवश्य करना चाहिये और देखना चाहिये कि ऊँट तथा हिमालय के शिखर मे कितना अन्तर और क्या भेद है।"

'युगवाणी' मे मार्क्सवाद से प्रभावित पन्त जी आज प्रगतिवाद के परिशोधक कवि है। छायावाद-युग मे वे जिस आध्यात्मिक आस्था को लेकर चले थे वह इस अनात्म (आधिभौतिक) युग के झंझावात मे दीप-शिखा की तरह प्रकम्पित होकर भी अरविन्द की अखण्ड ज्योति से अक्षुण्ण हो गई है। उनकी नयी रचनाओ मे पूजा के प्रसून है, अर्चना के उद्गीत है। अरविन्द-आश्रम के 'योग-युक्त (अन्त सगठित) वातावरण' मे प्रभु-सत्ता के साथ जिस मातृ-सत्ता का सञ्चरण है, 'स्वर्णधूलि' मे कवि ने उसे भी स्मरण किया है—

"तुम सृजन-शक्ति, जो ज्योति-चरण धर
रजत बनाती रज-कण को,
जड मे जीवन, जीवन मे मन,
मन में सँवारती स्वर्मन को।"

इन पक्तियो मे पन्त की वर्त्तमान काव्य-चेतना का समस्त रचना-सूत्र है।

प्रभु-सत्ता (अरविन्द) का दिव्य परिचय कवि ने इन शब्दो मे दिया है—

स्तर पर स्तर कर पार चेतना के, योगेश्वर,
स्वर्णारुण से नव्योदित तुम चिदाकाश पर !
मानव से ईश्वर, ईश्वर से मानव बन कर
आये लौट धरा पर, ले नवजीवन का वर !

स्वर्ग और वसुधा का करने स्वर्णिम परिणय
इन्द्रचाप का सेतु रच रहे तुम ज्योतिर्म्मय,
नृत्यशील चिरहरित यौवना भूपर छविमय
चिर अनन्त की अमर वृत्तियाँ बोकर अक्षय !

नील शकुनि, तुम गाते देवो स्वर्दूतो हित,
चिदानन्द के अग्निबीज भूपर झरते स्मित !
देश-काल से परे कौन वह व्योम दुख-रहित
शाश्वत सुख का हर्ष जहाँ से लाते तुम नित !
('स्वर्णकिरण')

कवि इस निश्चेतन युग के असगठित जन-समुदाय के बीच योगी के योग (सगठन) का आह्वान कर रहा है—

आज जब कि मन-प्राण इन्द्रियो के क्षत विक्षत अँग-अँग,
पुन चाहती वे गति-लय मे बँधना देवो के सँग,
ध्वस भ्रश हो गये विगत आदर्शो के जब खँडहर,
कुचल रहा मानव आत्मा को जड भौतिक आडम्बर !—

आज जब कि बुझ गई चेतना, अन्धकार से उर भर,
चूर्ण हो गया हृदय सभ्यता का, नीरव सस्कृति स्वर।
तुम्हे पुकार रहा तब अन्तर, भावी मानव-ईश्वर,
नव्य चेतना, नव मन, नव जीवन का भू को दो वर !

स्वर्मानस से उठ, उतरो प्रभु, जन-मन के शिखरो पर,
सूक्ष्म चेतना वाष्प कणो मे लिपटा मानव-अन्तर,
नव जीवन-सौन्दर्य्य मे बरस, करो धरा-मुख सस्मित,
अमृत चेतना के प्लावन, मर्त्य शोक कर मज्जित !

हे अतिचेतन, नव मानव वसनो मे हो नव भूषित
नव आदर्श बनो तुम जिसमे नवजीवन हो विम्बित।
जीवन मन से ऊपर तुम नव जीवन मे नव मन मे
मानवता को बाँधो अभिनव ऐक्य मुक्ति वन्धन में।"

काशी,
अप्रैल, १९५०

स्वर्ण किरण

पन्त जी की कविता-पुस्तको मे उनकी काव्य-कला का क्रम-वद्ध विकास मिलता है। जीवन के साथ-साथ उनके भाव, भाषा, छन्द और शैली मे भी परिवर्त्तन होता गया है। 'पल्लव' मे सजल मधुरता थी, 'गुञ्जन' मे सरस गम्भीरता, 'युगान्त' और 'युगवाणी' मे खडीबोली की सुदृढ स्वस्थता, 'ग्राम्या' मे जीवन की स्वाभाविक सरलता। और अब इधर की रचनाओ मे रहस्यमय दुर्भेद्यता है। एक ही कवि की काव्य-प्रगति नदी की धारा की तरह कितनी तोड-मोड ले चुकी है !

कला मे नवीनता

जीवन की तरह पन्त की कला मे भी प्रयोग की विविधता है। 'स्वर्ण-किरण' मे उनके सभी प्रयोगो का समुच्चय है।

पहिले की रचनाओ मे पन्त जी ने शब्दो ओर छन्दो की कलाकारिता दी थी, अब उन्होने अन्त्यानुप्रासो मे भी बारीक कारीगरी की है। शब्दो की शक्ति और छन्दो की गति उनके लघुमात्रिक तुको मे आ गयी है। पन्त जी लिखते है—"ह्रस्वमात्रिक तुक (यथा कोमल, लोचन, सुरभित) अधिक सूक्ष्म होने से एक प्रकार से छन्द-प्रवाह मे घुल-मिल कर खो जाते है। गीतो को छोड कर निवन्ध एव इतर काव्य मे मैने इस प्रकार के सूक्ष्म या नम्र अन्त्यप्रास से ही अधिक काम लिया है,—गीतो मे ह्रस्व-दीर्घ दोनो प्रकार के तुको से।"

हाँ, 'नम्र अन्त्यप्रास' (लघु अनुप्रास) शब्दो और छन्दो मे प्राय-

रजकणो की तरह घुल-मिल गये है, किन्तु कही-कही वे तिनके की तरह उतरा भी रहे है । जहाँ भाषा के भार और छन्द के प्रवाह के साथ लघु तुक समरस नही हो पाते वहाँ वे स्वभावत हलके पड जाते है ।

'पल्लव'-काल की तरह शब्दो का व्यक्तित्त्व-बोध पन्त जी की नयी रच-नाओ मे भी सजग है। शब्दो से भावो की तरह ही छन्दो मे भी कैसी विशेषता आ जाती है, यह पन्त जी के इस मन्तव्य से स्पष्ट है—'सुवर्ण किरणो का झरता निर्झर' मे 'सुवर्ण' के स्थान पर 'स्वर्णिम' कर देने से गति मे सगति तो आ जाती, पर सुवर्ण किरणो का प्रकाश मन्द पड जाता । इसी प्रकार 'जल से भी अधिक कठोर धरती मे' कठोर के स्थान पर 'निष्ठुर' हो सकता था, 'मेरे ही असख्य लोचन' के बदले अगणित लोचन, 'मानव भविष्य हो शासित' के बदले भावी हो शासित, 'दैन्यो मे विदीर्ण मानव' के स्थान पर विक्षत अथवा खण्डित मानव' हो सकता था,—और ऐसे ही अनेक उदाहरण दुहराये जा सकते है, किन्तु मैंने सम-विषम गति से शब्द-शक्ति को ही अधिक महत्त्व देना उचित समझा है । इस युग मे जब कि हम ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक के पाश से मुक्त होकर अक्षर-मात्रिक तथा गद्य-वत् मुक्त छन्द लिखने मे अधिक सौकर्य्य अनुभव करते है, मेरी दृष्टि मे, ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक मे यति को मानते हुए सम-विषम की गति मे इधर-उधर परिवर्त्तन कर देना कविता पर किसी प्रकार का अत्याचार नही होगा, बल्कि उससे ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक मे स्वर-पात का सौन्दर्य्य आ जाता है ।"

'पल्लव'-काल मे पन्त जी का ध्यान शब्दो के माधुर्य्य की ओर था, ऊपर के अवतरणो से ज्ञात होता है कि अब वे शब्दो के ओज को परखने लगे है । ओज के लिए पन्त जी के छन्दो मे भी परिवर्त्तन हो चुका है ।

पन्त जी की भाषा यद्यपि सस्कृत-प्रधान है, तथापि उनका अभिव्यक्ति-कुशल मन भावाभिव्यञ्जन के लिए अर्थ-व्यञ्जक ठेठ शब्दो (जन-सुलभ शब्दो) का भी चयन करता आया है । 'पल्लव' मे धोरे, 'गुञ्जन' मे बूड-

बूँड, 'युगवाणी' मे सरो-सरो देशकारी शब्द है। प्रच्छन्न रूप से पन्त जी की नागरिक रुचि मे जो एकदेशीय स्वाभाविकता छिपी हुई थी वह 'ग्राम्या' मे प्रत्यक्ष ही नही हुई बल्कि पुञ्जीभूत भी हो गयी। 'स्वर्णधूलि' की 'ग्रामीण' शीर्षक कविता मे श्रीधर मनोहर से कहता है—

भारतीय ही नही, बल्कि मै
हूँ ग्रामीण हृदय के भीतर

धोती कुरते चादर मे भी
नई रोशनी के तुम नागर
मै बाहर की तडक-भडक मे
चमकीली गगाजल गागर!

इन शब्दो मे पन्त जी ने मानो अपना ही आन्तरिक परिचय दिया है।

यद्यपि उनकी इधर की रचनाओ मे देशकारी शब्दो का अभाव हो गया है तथापि उनका सचेष्ट मस्तिष्क शीशमोग्रॉफ की तरह वायुमण्डल के प्रभावो को ग्रहण करता रहता है। 'स्वर्णकिरण' मे एक नया देशज शब्द आया है—

हाउ हाउ, वह स्वर्ण पुरुष,
वह ज्योति-पुरुष मै हूँ अजर-अमर!
('सविता')

'हाउ हाउ' का अर्थ है हॉ-हॉ, इसमे 'हॉ' से अधिक हार्दिकता है, कथन की स्वीकृति ही नही, उसका स्वागत भी है। पन्त जी ने यह शब्द अपने बम्बई-प्रवास मे वहॉ की बोल-चाल से लिया है। अपने सामाजिक व्यवहार मे वे जिस तरह विविध व्यक्तियो का सामञ्जस्य करते है उसी तरह साहित्य मे शब्दो का।

सांस्कृतिक वातावरण

'स्वर्णकिरण' की भाषा किसी-किसी कविता मे अपेक्षाकृत सरल है, जैसे 'भू-लता' मे, किन्तु अधिकाश कविताओ की भाषा गहन वन की तरह सस्कृत से सघन है। सास्कृतिक वातावरण के कारण यह स्वाभाविक है।

'ग्राम्या' के 'सन्ध्या के बाद' मे कवि ने लिखा था—

शङ्ख घण्ट बजते मन्दिर मे
लहरो मे होता लय-कम्पन,
दीप-शिखा-सा ज्वलित कलश
नभ मे उठ कर करता नीराञ्जन।

'स्वर्णकिरण' मे यही सास्कृतिक वातावरण घनीभूत हो गया है। मन्दिर, कलश, दीपशिखा, यज्ञधूम, हवि, नीराञ्जन, अभिषेक, कर्पूर, चन्दन, गगाजल, अमृत,—ये शब्द हृदय को स्वर्गीय भावनाओ से भर देते है, मन को चिन्मय-लोक मे उठा ले जाते है।

द्युतिमती चेतना

'गुञ्जन' में पन्त जी ने काव्य की जिस प्रतीक कला का प्रारम्भ किया था, उसका परिपाक 'स्वर्णकिरण' में हुआ है। सबसे पहिले पुस्तक के नामकरण में ही प्रतीक है। प्रगतिवादी आलोचको ने 'स्वर्ण' को स्थूल अर्थ मे ही ग्रहण किया। किसी ने व्यग्य किया था कि 'पन्त जी की कविता मे सोने का बडा खर्च है।' किन्तु यह स्वर्ण रामनाम की तरह ही अक्षुण्ण है, कभी घटने वाला नही है।

'पल्लव' मे 'स्वर्ण' विशेषण था, यथा—

तुहिन-वन मे छाई सुकुमारि !
तुम्हारी स्वर्णज्वाल-सी तान

• • • •

मुझे लौटा दो विहग-कुमारि !
सजल मेरा सोने का गान ।

'स्वर्णकिरण' मे स्वर्ण भाववाचक सज्ञा है, वह मनुष्य की द्युतिमती चेतना का द्योतक है । 'गुञ्जन' मे कवि ने कहा था—'सोने-सा उज्ज्वल बनने तपता नित प्राणो का धन ।'—वही प्राणो का धन तप कर चेतना का स्वर्ण बन गया है ।

रहस्यवाद

'स्वर्णकिरण' के शब्दो मे ही नही, आलम्बनो (यथा, इन्द्रधनुष, हिमाद्रि, हिमाद्रि और समुद्र, इत्यादि) मे भी प्रतीक-व्यञ्जना है । 'गुञ्जन' मे कवि ने अनुभव किया था—

'गूढ सकेतो मे हिल पात
कह रहे अस्फुट बात'—इसी तरह 'स्वर्णकिरण'

के प्रत्येक शब्द और आलम्बन 'गूढ सकेतो' से किसी 'अस्फुट बात' को प्रस्फुटित कर रहे है । प्रतीक-व्यञ्जना के कारण 'स्वर्णकिरण' की भाषा, शैली और भावो मे एक प्रकार का रहस्यवाद आ गया है ।

छायावाद सुन्दरम् को लेकर चला था, प्रगतिवाद शिवम् को, रहस्यवाद सत्यम् को ।

सुन्दरम् भाव-प्रधान है, शिवम् और सत्यम् ज्ञान-प्रधान । पन्त जी के सस्कार भावात्मक है । उन्होने प्रगतिवाद को जिस प्रकार भाव-सौन्दर्य्य से सजाया, उसी प्रकार रहस्यवाद को भी । फिर भी सर्वथा अपरिचित होने के कारण अपने रूपको, प्रतीको और शब्दावलियो मे 'स्वर्णकिरण'

दुरूह है। आशा है, 'युगवाणी' के बाद जैसे 'ग्राम्या' मे प्रगतिवाद सरल हो गया वैसे ही 'स्वर्णकिरण' के बाद पन्त की किसी अन्य रचना मे रहस्यवाद भी सुगम हो जायगा। 'स्वर्णधूलि' से 'स्वर्णकिरण' को समझने मे कुछ सहायता मिल सकती है।

रहस्यवाद की साधना 'परम चेतना' की उपलब्धि के लिए है। वह परम चेतना क्या है ?—

विश्व चेतना मे प्रकाश, तम,
परम चेतना मे न द्वन्द्व भ्रम
('स्वर्णकिरण' 'अशोक वन')

यद्यपि सभी रहस्यवादियो का साध्य एक है तथापि उनके साधनो मे भेद है। साधन-भेद से रहस्यवाद की अभिव्यक्ति मे अनेकरूपता आ गयी है। कबीर के रहस्यवाद से साहित्य-जगत सुपरिचित है, वे हठयोग को लेकर चले थे। आधुनिक कवियो मे 'प्रसाद' जी भी 'कामायनी' द्वारा एक रहस्यवाद दे गये है, वे शैव-दर्शन से प्रभावित थे।

'कामायनी' मे प्रसाद जी ने आध्यात्मिक चेतना दी, किन्तु विश्व-चेतना के साथ उसका सामञ्जस्य नही कर सके। मनु और श्रद्धा वीतराग होकर विश्वचेतना के सञ्चालन का दायित्त्व नयी पीढी के कुमार को दे गये। 'स्वर्ण किरण' मे पन्त जी मनुष्य की विविध चेतनाओ का समन्वय लेकर आये। उन्होने सप्त चेतना को एक ही 'परम चेतना' के विविध स्तरो के रूप मे सयुक्त किया। 'स्वर्णकिरण' की 'इन्द्रधनुष' शीर्षक कविता मे उनका समन्वय देखा जा सकता है—

"रजत अनिल मे रश्मि-तूलि से सतजल चित्रित
जीवन-ऐश्वर्य्यो के सम्मोहन से रञ्जित
देखो, इन्द्रधनुष से स्वर्ग-धरा आलिंगित
विजय-ध्वजा मानव-भावी की, तम पर अकित।"

'रजत अनिल' आत्मा की निर्गुण चेतना (परम चेतना) का प्रतीक है। 'सत जल' इन्द्रधनुष के सप्त रगो के लिए प्रयुक्त हुआ है, वह सप्त लोको की सप्त चेतनाओ को सूचित करता है। परस्पर सम्बद्ध ये सभी चेतनाएँ 'रजत अनिल' मे ही प्रतिफलित है। 'परम चेतना' ही विविध चेतनाओ मे विकीर्ण है, वह विभेदो मे अभेद है।

'स्वर्णकिरण' की 'ऊषा' उसी 'परम चेतना' का प्रतीक है—

"लो, वह आई विश्वोदय पर
स्वर्णकलश वक्षोजो पर धर।
अर्ध विवृत कर ज्योति-द्वार-पट,
ज्वलित रश्मियो की अञ्जलि भर।"

वह विश्व मे अवतरित होकर किस प्रकार जीवन की विविध दिशाओ, मनुष्य की विविध चेतनाओ को प्रभावित करती है, इसी का भावात्मक रूपक इस कविता मे है।

पन्त जी ने सत्यम् के लिए सुन्दरम्-शिवम् को छोड नही दिया, परम चेतना से सयुक्त होकर वे उसी के अशजात अथवा अगीभृत हो गये है।

परम चेतना के साथ अन्य चेतनाओ की सगति का सूत्र पन्त जी को अरविन्द के जीवन-दर्शन से मिला। रवि बाबू ने जैसे 'कबीर-वाणी' को अपनाया वैसे ही पन्त जी ने अरविन्द-दर्शन को। 'स्वर्णकिरण' को समझने के लिए अरविन्द-दर्शन का अनुशीलन आवश्यक है।

जिस प्राकृतिक वातावरण मे ऋषि-मन्त्रो की रचना हुई थी, उसी वातावरण मे, 'स्वर्ण किरण' की भी रचना हुई है। इसके चिन्तन मे मन्त्रो की पवित्रता है, इसके चित्रण मे उपनिषदो की पृष्ठभूमि है। रोरिक के सात्त्विक चित्रो से जो शान्ति मिलती है वही स्वर्णकिरण' से।

प्रकृति की परमात्म सत्ता

छायावद-युग मे कवि जिस प्रकृति का उपासक था, अब 'स्वर्णकिरण' के रहस्यवाद मे भी उसी प्रकृति का पुजारी है। सृष्टि की व्यक्त सुषमा से विस्मित होकर कवि किसी अन्त प्रेरक अव्यक्त शक्ति का चिन्तन करने लगा है—

लौट मुग्ध विस्मित लोचन मन
अन्तर्मुख करते अवलोकन,
निभृत स्पर्श पाकर निसर्ग का
आत्मा गोपन करती चिन्तन ।

('स्वर्णकिरण' 'रजतातप')

प्रकृति का कवि फिर प्रकृति के क्षेत्र मे आ गया। वह लोकदृष्टि को प्रकृति की विभूति देखने के लिए प्रेरित करने लगा है—

देखो हे ऐश्वर्य्य प्रकृति का, उसका प्रति अणु जीवित,
उसका श्री सौन्दर्य अमित, वह सृजन-हर्ष-आन्दोलित !

('स्वर्णकिरण' 'इन्द्रधनुष')

'पल्लव' के 'मौन निमन्त्रण' मे जिस रहस्यमयी शक्ति ने कवि को आकर्षित किया था, वही 'स्वर्णकिरण' मे प्रकृतिरूपा है। कवि ने 'मौन-निमन्त्रण' में जिज्ञासा की थी—

उठा तब लहरो से कर कौन।
न जाने मुझे बुलाता मौन !

'स्वर्णकिरण' मे इस जिज्ञासा का समाधान है—

ज्योति-चूड लहरे उठ उठ करती नित गोपन इगित,
निखिल प्रकृति कहती रे उसमे अमृत-सत्य अन्तर्हित ।

('इन्द्रधनुष')

कवि इसी पीयूषिणी प्रकृति से मानव को सयुक्त देखना चाहता है—

मानव हो सयुक्त प्रकृति से स्वर्ग बने भू पावन,
बहिरन्तर ऐश्वर्यों से चरितार्थ निखिल भव-जीवन !
('इन्द्रधनुष')

बहिरन्तर ऐश्वर्य का अभिप्राय प्रकृति के द्वारा प्रदत्त मनुष्य का भौतिक और आत्मिक उत्कर्ष है ।

छायावाद-युग मे कवि ने नारी-हृदय को प्रधानता दी थी। उसे 'देवि, मा, सहचरि, प्राण' कह कर सम्बोधित किया था। 'स्वर्णकिरण' मे उसी नारी की मातृमूर्त्ति की स्थापना है । जिसे हम परमात्मा (परम चेतना) कहते है वही प्रकृति मे माता है ।

कवि ने 'मानव-ईश्वर' कह कर यह स्पष्ट कर दिया है कि परमात्मा मनुष्य से कोई पृथक् अस्तित्व नही है। मनुष्य का अन्तर्य्यामी (अन्तर्व्याप्त चेतन) ही उसका परमात्मा है । इस दृष्टि से निखिल प्रकृति मे उसी की सत्ता है । प्रकृति की विविध अभिव्यक्ति मे उसे आत्मरूप का ही दर्शन मिलता है। कवि कहता है—

मेरे प्राणो की हरीतिमा
तृण-तरु-दल मे पुलकित,
मेरी प्रणय-भावना से ही
कली-कुसुम नित रञ्जित !
मै इस जग मे नही अकेला
मुझको तनिक न सशय,
वही चाह है कण कण मे
जो मेरे उर मे निश्चय !
('व्यक्ति और विश्व')

इसी अन्तरैक्य अथवा आत्मयोग की उपलब्धि कवि को सामाजिक जीवन मे भी होती है—

"कब से हो जग से वियुक्त
मेरा अन्तर था पीडित,
आज खडा भाई-बहिनो के
सँग मे चिर आनन्दित ।"

'युगवाणी' मे कवि जिस अन्तर्मुख अद्वैत को जग मे प्रतिष्ठित देखना चाहता था उसे ही प्रकृति मे, मनुष्य मे जीवन्त कर दिया है।

प्रकृति के कवि ने स्वभावत प्रकृति के दिव्य जगत से ही अपनी कविता के प्रतीक लिये है, यथा—रजतातप, हिमाद्रि, इन्द्रधनुष, समुद्र, पूषण, ऊषा, इत्यादि। ये प्रतीक वैदिक युग की याद दिलाते है। इन सभी प्रतीको मे कवि की अन्तर्वृत्तियो के दृश्य-चित्र है। बाह्य रूप-रगो मे उसी की आत्माभिव्यक्ति है। कवि कहता है—

यह नीला आकाश न केवल,
केवल अनिल न चञ्चल
इनमे चिर आनन्द भरा
मेरी आत्मा का उज्ज्वल !

('व्यक्ति और विश्व')

चित्र-गरिमा

'स्वर्णकिरण' के प्राकृतिक चित्रो मे कल्पना के पख सिद्धान्त-विशेष से बँध गये है, उनमे छायावाद-युग की फडक नही है। चित्र मानो 'सुप्त स्वर्ण चक्रागो-से सुकुमार उरोजो पर स्थित' सौन्दर्य्य की तरह ही चित्रपट पर विजडित हो गये है।

चित्रो मे चञ्चलता की अपेक्षा गुरु-गम्भीरता और दृष्टि-सूक्ष्मता है। यहाँ भू के रज कण 'तृणो के पुलक-पख' खोल कर उडने का उपक्रम कर रहे है, 'शुभ्र सुधा के मेघो की जाली' यवनिका की तरह उठ गिर रही है। वन के भीतर चित्रमयी तितलियो का 'फूलो का-सा वन' उड रहा है। सभी दृश्यो से ऊपर उठ कर कवि का चिन्तनशील मन 'हिमाद्रि' की भाँति 'शुभ्र शान्ति मे समाधिस्थ' हो जाना चाहता है।

जहाँ कवि का सौन्दर्य-सस्कार रागमय हो उठा है वहाँ चित्रो मे सरस प्रवाह आ गया है। यथा—

ज्योति-नीड के विहग जगे, गाते नवजीवन मगल,
रजत घटियाँ बजी अनिल मे ताली देते तरुदल!
चूम विकच नलिनी-उर, गूँजे गीत-पख मधुकर-दल,
नृत्य तरगित बहे स्रोत ज्यो मुखरित भू-पग-पायल!
('स्वर्णकिरण', 'ऊषा')

गीत-निवन्ध

'युगवाणी' के मुक्तको को कवि ने 'गीत-गद्य' कहा था। 'स्वर्णकिरण' की कविताओ को गीत-निवन्ध कहा जा सकता है। कुछ छोटे-छोटे प्रगीत भी है।

'स्वर्णकिरण' के काव्य-निवन्धो मे 'रजतातप', 'हिमाद्रि', 'इन्द्र-धनुष', 'स्वर्ण निर्झर', 'ऊषा', 'स्वर्णोदय' और 'अशोकवन' उल्लेखनीय है।

रजतातप

'रजतातप' का वातावरण कितना सात्त्विक है—

"चन्द्रातप-सी स्निग्ध नीलिमा
यज्ञ-धूम-सी छाई ऊपर

किरणो के स्पर्श से गुफित
ज्योति-वृत्त-सा खिचा दिगन्तर ।"

इन पक्तियो से पुराकाल के यज्ञ-मण्डप का भावपूर्ण नैसर्गिक चित्र खिच जाता है ।

'रजत' परमात्मा और 'आतप' आत्मा का सकेतवाचक है। 'रजतातप' मे दोनो की सयुक्त चेतना 'ऊषा-सन्ध्या के स्वप्नो के स्वर्णिम पुलिनो' को प्लावित कर प्रवाहित हो रही है। ऐसा जान पडता है कि कवि इस कविता में सन्ध्योपासना से प्रभावित हुआ है। वह भूतल को ऊर्ध्वतल पर उठाने के लिए आत्मनिमग्नता और आभ्यन्तरिक प्राणायाम की प्रेरणा दे रहा है—

"देव-वृत्तियो के सगम मे
डूबें चिर विरोध, सघर्षण,
जीवन के सगीत मे अमित
परिणत हो धरती का क्रन्दन ।
ऊर्ध्वग श्रृगो के समीर को
आओ, साँसो से उर मे भर
चिर पवित्रता से हम तन का
मन का पोषण करे निरन्तर ।'

हिमाद्रि

'हिमाद्रि' जीवन का वह ऊर्ध्वतल ('ऊर्ध्वग श्रृग') है जो मानव-मन का उन्नयन करता है। कवि ने उसे इन शब्दो मे सम्बोधित किया है—

"मानदण्ड भू के अखण्ड हे,
पुण्य धरा के स्वर्गारोहण"

इस कविता मे कवि ने हिमालय की गोद मे पले अपने अतीत कालीन भाव-स्वप्नो को चित्रित किया है । एक सास्कृतिक स्नातक की भाँति उसके चरणो मे आभार अर्पित किया है—

"प्रिय हिमाद्रि, तुमको हिमकण-से
घेरे मेरे जीवन के क्षण ।

मुझ अञ्चलवासी को तुमने
शैशव मे आशी दी पावन,
नभ मे नयनो को खो, तब से
स्वप्नो का अभिलाषी जीवन ।"

'पल्लव' के आँसू' तथा अन्य कविताओ मे पर्वत-प्रदेश के जो प्राकृतिक चित्र बिखरे हुए है वे 'हिमाद्रि' मे सुपुष्ट और सुसगठित होकर 'घनीभूत अध्यात्म तत्त्व' का गौरव-मण्डित व्यक्तित्त्व व्यञ्जित कर रहे है। आलम्बन के अनुरूप ही इस अमृत काव्य की भाषा और पद-योजना मे गुरु-गाम्भीर्य है ।

पन्त जी प्राय जीवन के जिस समतल और ऊर्ध्वतल का ध्यान दिलाते है उसका स्वरूप 'हिमाद्रि और समुद्र' मे देखा जा सकता है। ऊर्ध्वलोक मे चिन्मयी चेतना है, समतल मे मृण्मयी चेतना । कवि कहता है—

हिमगिरि की गहराई ऊँची
सागर की ऊँचाई गहरी
छाया-प्रकाश की ससृति के
जीवन-रहस्य मे हे छहरी ।

अभिप्राय यह कि ऊर्ध्वतल का मूल समतल मे है, समतल का विकास ऊर्ध्वतल मे । एक के बिना दूसरे का अस्तित्त्व ही नही रह सकता। 'युगान्त' की 'छाया' शीर्षक कविता मे कवि ने कहा है—

मैं हूँ या तुम ? यह कैसा छल !
या हम दोनों, दोनों के बल ?

यही बात ऊर्ध्वतल और समतल के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

इन्द्रधनुष

'इन्द्रधनुष' में चित्र के रंगों की तरह जीवन की विविध प्रवृत्तियों का संगठन है। इस कविता में व्याख्यान की शैली और यत्किञ्चित नाट्य-भंगी है। कवि कहता है—

आओ, लोक-समस्याओं पर मिल कर करें विवेचन,
विश्व-सभ्यता के मुख पर से हटा मृत्यु-अवगुण्ठन।

कविने रोटी, सेक्स, श्रम, शिक्षा, संस्कृति और अन्तर्चेतना पर रचनात्मक दृष्टिपात किया है। किसी प्रकाशमान आदर्श से अनुप्राणित होकर ही लौकिक समस्याएँ अपना समाधान पा सकती हैं। इस दृष्टि से कवि देखता है कि जब-जब अन्धकार की घटा घिरती है तब-तब उसी के भीतर से कोई सूक्ष्म चेतना अवतरित होकर इन्द्रधनुष की तरह युग को सम्यक् निर्म्माण दे जाती है—

"जब जब घिरते विश्व-क्षितिज पर युग-परिवर्त्तन के घन,
मेघों के क्षण-रन्ध्र-जाल से कोई शुभ्र किरण छन
ज्योति-सेतु-सी सर्जित हो द्रुत इन्द्रचाप में मोहन,
स्वर्गिक स्वप्नों में लिपटा लेती वसुधा के दिशि-क्षण।"

स्वर्ण निर्झर

'स्वर्ण निर्झर' में कवि ने सौन्दर्य्य की चेतना को दिव्य शरीर दिया है। 'युगवाणी' में कवि ने कामना की थी—'आत्मा ही बन जाय देह नव।' —वही नवदेही आत्मा 'स्वर्णकिरण' की 'चिन्मयी' में 'हिमाद्रि की मुक्ति

तापसी' है, कवि की 'मानसी सहचरी' है, 'स्वर्ण निर्झर' मे 'नीहार-लोक' की 'अप्सरी' है । वह 'दिव्य प्रेमदेही' है, 'सुन्दरता उसकी सतरग काया' है । 'स्वर्ण चन्द्रातप से' उसका तन निर्म्मित है, 'वाणी के उद्ग्रीव हस-सी' उसकी ग्रीवा की शुभ्र शोभा है ।

कल्पना के लोकोत्तर कवियो को साधारण सासारिक सौन्दर्य्य (क्षणभगुर सौन्दर्य्य) से तृप्ति नही होती । अतएव, उन्होने 'परम चेतना' को स्थापित करने के लिए सौन्दर्य्य को भी उसी के अनुरूप अपरिमेय बना दिया है । गोस्वामी जी ने राम के अलौकिक सौन्दर्य्य के लिए कहा है—'कन्दर्प अगणित अमित छवि नव नील नीरज सुन्दरम्' । सीता की सीमातीत शोभाका अनुमान उन्होने इन शब्दो मे कराया है—

सुन्दरता को सुन्दर करई ।
छवि-गृह दीपशिखा जनु जरई ।।

'स्वर्ण निर्झर' की सौन्दर्य्य-चेतना मे भी एक अनिर्वचनीय चारुता है—

'बहता स्निग्ध स्पर्श प्राणो मे अमर चेतना सा नव ।'

ऊषा

'ऊषा' शीर्षक कविता से 'ज्योत्स्ना' के रूपक का स्मरण आ जाता है । ज्योत्स्ना राजसी (राज्यश्री) थी, ऊषा तापसी (तप श्री) है । उसके व्यक्तित्त्व मे कैसी शोभा और स्फूर्ति है !—

"किया तापसी को खिल नव कलियो ने सज्जित,
मधुऋतु के रगो की चोली से कर वेष्टित ।
लिपटी लता पदो से चल अलियो से गुञ्जित
स्वर्ण मञ्जरित कटि काञ्ची झनकी पिक-कूजित ।"

'ज्योत्स्ना' और 'ऊषा' दोनो अपने अपने व्यक्तित्त्व से सात्विक वृत्तियो

का उद्रेक कर मनुष्य के अभ्यन्तर मे 'मन स्वर्ग' की सृष्टि करती है। सात्त्विक वृत्तियो ने अपना परिचय 'ज्योत्स्ना' के इस गीत मे दिया है—

हम मन स्वर्ग के अधिवासी,
जग जीवन के शुभ अभिलाषी।

•

हम भक्ति, शक्ति, हम क्षमा, त्याग,
हम सत्य, श्रेय, समताऽनुराग,

हम करुणा, ममता, स्नेह, प्रीति,
हम विद्या, प्रतिभा, कान्ति, कीर्त्ति।

हम है प्रकाश के अमर पुत्र
उर-उर-वासी, मगल आशी।

ऊषा के प्रभाव से इन्ही अन्तर्वासी सद्वृत्तियो का प्रादुर्भाव इस प्रतीक काव्य मे हुआ है। 'ज्योत्स्ना' और 'ऊषा' के साधनो मे अन्तर होते हुए भी दोनो की साधना का क्षेत्र एक है, क्योकि राजयोग ज्ञानयोग से परिचालित होता आया है।

'ज्योत्स्ना' मे कवि ने जिस तरह सूक्ष्म वृत्तियो को मूर्त्तिमान किया है उसी तरह 'ऊषा' मे भी। ये वृत्तियाँ एक-एक रस-चित्र बन गयी है।

प्रज्ञा को मनोज्ञ बनाने के लिए कबीर इत्यादि रहस्यवादी कवियो ने उसे शृगारिक रूपको से सरस कर दिया है, मानो निर्गुण के लिए सगुण अथवा सत्यम् के लिए सुन्दरम् का सहयोग लिया है।

'स्वर्णकिरण' के कवि ने भी सूक्ष्म अनुभूतियो को शृगारिक रूपको से

व्यक्त किया हैं। 'ऊषा' मे मुक्ति तरुण सत्य के 'अर्ध विवृत जघनो पर' शिर धर कर सोई हुई है। मुक्ति और सत्य मे दाम्पत्य भाव है—

"गगन-भग-से लहराये मृदु कच अगो पर
वक्षोजो के खुले घटो पर लसित सत्य कर।"

स्वर्णोदय

'स्वर्णोदय' शीर्षक कविता मे कवि ने अपनी सभी मानसिक प्रेरणाओ को विस्तृत सामाजिक चित्रपट पर प्रत्यक्ष कर दिया है।

'युगान्त' मे कवि ने कहा था—

मानव दिव्य स्फुलिग चिरन्तन
वह न देह का नश्वर रज-कण।

उसी 'चिरन्तन स्फुलिग' के अवतरण का सकेत कवि ने 'स्वर्णोदय' के शिशु-जन्म मे किया है—

जयति, प्रथम ॰ जीवन-स्वर्णोदय,
रक्त-स्फीत, लो, दिशा का हृदय।
काल-तमस व्यवधान चीर कर
किसने मारा यह स्वर्णिम शर ?
जय, अमर्त्य जीवन-यात्री, जय!

गुप्त जी के प्रवन्ध-काव्यो की तरह इस निवन्ध-काव्य का भी आरम्भ परमात्मा के स्तवन से किया गया है। किन्तु दोनो की आस्तिकता मे रूढि और चेतना का अन्तर है। गुप्त जी का ईश्वर कोई विशिष्ट अवतार है, पन्त का ईश्वर प्रत्येक नवजन्मा मनुष्य है—

"दिव्य अतिथि वह मनुज देह धर
आया फिर से मधुर मनोहर!

देखो, देखो आँखे भर,
कैसा रहस्यमय ईश्वर !
देखो हे आँखे भर
कैसा सुन्दर ईश्वर !"

शिशु मे जन्म लेकर यही अमर्त्य ईश्वर मर्त्य तन (मूर्त्त शरीर) धारण करता है—

"धन्य आज का पुण्य-दिवस-क्षण,
फिर अमर्त्य ने धरा मर्त्य तन।"

यद्यपि अमर्त्य का मर्त्य तन उसका अपना ही देह-गेह है तथापि देह उसकी सीमा या आयु नही है—

"यह अनन्त यात्रा का रे पथ,
शिशु अनन्त का यात्री शाश्वत,
वह अनादि से नित्य नवागत,
अपने ही घर का अभ्यागत !"

प्रत्येक शिशु अपने जन्म के साथ व्यापक अस्तित्त्व लेकर आता है और अपने मे सन्निहित सृष्टि की सम्पूर्ण सत्ता का प्रतिनिधित्त्व कर जाता है—

"सूर्य्य, चन्द्र उसके ही लोचन,
श्वसन उसी के उर का स्पन्दन,
उसका आत्मप्रसार दिशा-क्षण,
आदि सृष्टि का कारण,
शिशु अनन्त का पान्थ चिरन्तन।"

'अनन्त' के इसी चिरन्तन पथिक का जीवन-पर्य्यटन 'स्वर्णोदय' मे है। इसमे शैशव का सरलपन है, कैशोर्य्य का स्वप्निल मन है, यौवन का

उद्वेलन है, वार्द्धक्य का तटस्थ-दर्शन है । जीवन की सभी अवस्थाओ और सभी अनुभूतियो को पार कर मर्त्य फिर अमर्त्य हो जाता है, नूतन शरीर लेकर फिर लौट आता है ।

मृत्यु को पन्त जी पुनर्जन्म की नवीन भूमिका मानते है । गीता के 'वासासि जीर्णानि यथा विहाय ' का वे समर्थन करते है—

"मुक्त सृजन आनन्द को स्वत
रूपो का नव वन्धन स्वीकृत,
आत्मा जीर्ण वसन तज रज का
नव वसनो मे होती भूषित ।"

'स्वर्णोदय' मे शैशव-यौवन और वार्द्धक्य के अनुरूप ही सरलता, मधुरता और गूढता है । सर्ग-बद्ध काव्यो की तरह ही इसमे जीवन भी क्रम-बद्ध हो गया है ।

मुन्ना को सुलाने के लिए कवि नीद की परियो को कैसी स्वाभाविकता से बुला रहा है—

लोरी गाओ, लोरी गाओ,
फूल-दोल मे उसे झुलाओ,
निदिया की चल परियो आओ
मुन्ना का मुख चूम सुलाओ ।

यही मुन्ना जब तरुण हो जाता है तब समुद्र की भाँति विक्षुब्ध युग की तरगो मे आन्दोलित हो उठता है । वह सोचता है—

"अह, क्या करती रही पलित पीढियाँ आज तक,
रक्त पक जन-धरणी का इतिहास भयानक !

•

बदलेंगे हम चिर विषण्ण वसुधा का आनन

क्यो न मञ्जरित युवको का हो विश्व-सगठन।"

यही तरुण पारिवारिक जीवन मे परिपक्व होकर दार्शनिक चिन्तन करने लगता है। अब वह अन्तर्मुख वृद्ध है। उसे ऐसा जान पडता है—

"जन-समुद्र रे आज अचेतन
अन्ध प्रवेगो से आन्दोलित।"

जन-समुद्र सचेतन कैसे होगा ?—

"बहिर्जगत के वैभव का मद
अन्तर्मानव से हो चालित,
ऋत चित की आभा से चुम्बित
मनुष्यत्त्व हो पूर्ण प्रस्फुटित।"

यही पन्त के नवीन काव्यो का सारभूत निष्कर्ष है।

'स्वर्णोदय' मे कवि ने एक सम्पूर्ण जीवन का साङ्गोपाङ्ग निर्म्माण दिखलाया है। निवन्ध के सीमित कलेवर मे यह खडीबोली का महत्तर मानव-काव्य है, गागर मे सागर है। आज का प्रगतिशील तरुण-समाज इसे पढ कर प्रकृतिस्थ हो सकता है, सर्वहारा सर्वस्व पा सकता है।

रचना-कौशल की दृष्टि से 'स्वर्णोदय', 'स्वर्णकिरण' का सर्वोत्तम काव्य है। दृश्यकाव्यो की तरह इसमे जीवन के अनेक पट-परिवर्त्तन है। इसके नैवन्धिक गठन मे कविता, कहानी और नाटचकला का सूक्ष्म सयोजन है।

अशोक वन

'अशोक वन' मे कवि ने अपने दार्शनिक चिन्तन को पौराणिक रूपक द्वारा व्यक्त किया है।

'उपक्रम' मे कवि कहता है—

धरती मे सोया था जीवन
चिर निद्रा से जग, जड तम से
करना पडा उसे सघर्षण।

कवि का यह प्राक्कथन 'ज्योत्स्ना' के इस गीत का स्मरण दिला देता है—

लो, जग की डाली-डाली पर
जागी नव जीवन की कलियाँ।
मिट्टी ने जड निद्रा तज कर
खोली स्वप्निल पलकावलियाँ।

जड मे जीवन, जीवन मे मन, मन मे चेतना का किस प्रकार सञ्चरण हुआ, कवि ने इसका स्पष्टीकरण 'उपक्रम' मे और चरित्र-चित्रण 'अशोक-वन' मे किया है। इसके पात्रो और घटनाओ मे प्रतीक-व्यञ्जना है।

रावण अवचेतन है, सीता उपचेतन, राम अधिचेतन। रावण सीता और राम दोनो के महत्त्व को समझता है, सीता से वह कहता है—

देख रहा मै विस्मित लोचन,
घेरे राम तुम्हे, आभा-घन,
दीपक की निष्कम्प शिखा तुम
अमित ज्योति मण्डल से मण्डित।

किन्तु रावण का यह महत्वोध साम्राज्यवादियो की आस्तिकता की तरह है। वह कहता है—

'वही महीपति जो भुज-बल की बाँध सकेगा चार-दिवारी।'

रावण अवचेतन की सीमा पार किये बिना ही सीता को स्वायत्त करना चाहता था, इसीलिए असफल हो गया।

सीता रावण ओर राम की मध्यवर्त्तिनी चेतना हे—

"भू पर उसके पद, भव मे मन,
हृदय राम मे लीन निरन्तर।"

सीता का भौतिक मन ही माया-मृग पर मोहित हो गया था। वह स्वय कहती है—

"जगी चेतना थी केवल, मै
मन से राम न थी बन पाई!

भू-सस्कार पुराने घेरे
उपचेतन मन को थे मेरे,
भू के गत जीवन की छाया
मन मे थी प्रच्छन्न समाई!"

सीता की अग्नि-परीक्षा उसके उपचेतन मन की परीक्षा है। विभीषण पूछता है—'प्रभु, क्यो ली यह अग्नि-परीक्षा?' उत्तर मिलता है—

"नित सत् राम, शक्ति चित् सीता,
अखिल सृष्टि आनन्द-प्रणीता,
प्रकृति शिखा-सी उठे, शक्ति चित्
उतरे, निहित जगत मे शिक्षा!"

अग्नि ऊर्ध्वमुखी चेतना का प्रतीक है, उसकी लपट ज्योति-शिखा-सी जान पडती है। 'स्वर्णकिरण' के 'अरुण ज्वाल' शीर्षक कविता मे कवि ने उसी को 'अरुण ज्वाल चिरतरुण ज्वाल' कहा है। हनुमान ने आसुरी लका को इसी सात्त्विक ज्वाला से जलाया था।

सीता अपनी 'अग्नि-परीक्षा' मे स्वर्ण की तरह उत्तीर्ण हो गयी, क्योकि उसका उपचेतन अधिचेतन की ओर ही उन्मुख था।

कवि ने रामायण के चिरपरिचित कथानक को 'अशोकवन' मे आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपस्थित किया है। आध्यात्मिक होते हुए भी यह रूपक वास्तविक जान पडता है। रङ्गमञ्च पर इसका छायाभिनय प्रभावोत्पादक हो सकता है।

काशी,
२५।३।५१

स्वर्ण धूलि

"स्वर्ण बालुका किसने बरसा दी रे जगती के मरुथल मे,
सिकता पर स्वर्णाङ्कित कर स्वर्गिक आभा जीवन मृगजल मे।
स्वर्ण रेणु मिल गयी न जाने कब धरती की मर्त्य धूलि से,
चित्रित कर, भर दी रज मे नव जीवन ज्वाला अमर तूलि से।"

'स्वर्णकिरण' के बाद 'स्वर्णधूलि' मे स्वर्ग की चेतना ने पृथ्वी पर पदार्पण किया है। पन्त जी लिखते है— "स्वर्णधूलि का धरातल अधिकतर सामाजिक है, जैसे वही नवीन चेतना धरती की धूलि मे मिल कर एक नवीन सामाजिक जीवन के रूप मे अकुरित हो उठी है।" कवि का यही मन्तव्य उसकी इस शुभाकाक्षा मे भी व्यक्त हुआ है—

"चीर आवरण भू के तम का स्वर्णशस्य हो रश्मि अकुरित,
मानस के स्वर्णिम पराग से धरती के देशान्तर गर्भित।"

मनुष्य की जिस सृजनशील चेतना को (जीवन की रचनात्मक प्रवृत्ति को) कवि ने 'ज्योत्स्ना' के भावी युग मे जगाया था, उसे ही 'स्वर्णधूलि' के वर्त्तमान वातावरण मे देश-काल का समाधान दे दिया है। 'ज्योत्स्ना' से 'स्वर्णधूलि' के बीच मे समय कहाँ-से-कहाँ पहुँच गया है। इतिहास मे हम देखते है— दूसरे महायुद्ध का अन्त, भारत का विभाजन, स्वतन्त्रता का आगमन, विश्वव्यापी अकाल, अन्तर्मानव का सघर्ष, अन्तर्राष्ट्रीय जागरण। 'ज्योत्स्ना' के तीसरे अक मे भविष्य के जिन समुन्नत नवोदित प्राणियो का प्रादुर्भाव हुआ है मानो उन्ही के सामने चौथे अक के सक्रमण-

काल (चन्द्रग्रहण) की तरह यह आधुनिक इतिहास आ उपस्थित हुआ है। वे काल्पनिक मानव अब वस्तुस्थिति से सम्बद्ध होकर, वर्त्तमान मे ही भविष्य का प्रतिनिधित्व कर रहे है। कवि कहता है—

जाने से पहिले ही तुम आ गये यहाँ
इस स्वर्ण धरा पर,
मरने से पहिले तुमने नवजन्म ले लिया,
धन्य तुम्हे हे भावी के नारी नर!

('स्वर्णधूलि')

इन्ही भावी प्रजाओ की नवप्रबुद्ध चेतना जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे विकीर्ण हो रही है। कवि 'स्वर्णधूलि' मे इन्हो के कण्ठ से कण्ठ मिला कर गाता है—

पुष्प वृष्टि हो,
नव जीवन सौन्दर्य्य सृष्टि हो
जो प्रकाश-वर्षिणी दृष्टि हो!

'ज्योत्स्ना' का स्वर्गिक मनोजगत पन्त के साहित्य मे अहर्निश जाग्रत है। उसका नैश स्वप्न 'स्वर्णकिरण' मे दिवस की ज्वलन्त ज्योति और 'स्वर्णधूलि' मे पृथ्वी की आधारपीठिका पा गया है।

कला का सामञ्जस्य

'स्वर्णधूलि' के छन्द, भाषा, रस और आलम्बन मे सृष्टि की तरह ही कितनी विविधता है! कितनी सरलता और कितनी गहनता है! पन्त जी कितने स्वरो और कितनी मुद्राओ मे भावाभिव्यक्ति दे सकते है, यह 'स्वर्णधूलि' मे देखा जा सकता है।

'स्वर्णधूलि' की अधिकाश कविताएँ बहुत सीधी-सादी ह। सादगी की दृष्टि से 'ग्राम्या' मे ग्रामीणता है, स्वर्णधूलि मे नागरिकता। चित्र मे वर्ण-

सामञ्जस्य की तरह खडीबोली के विन्यास मे यथास्थान ठेठ शब्दो का भी समावेश हो गया है, जैसे, महतारी, झारे, बुहारे, उट्ठेगा। 'पल्लव' के 'प्रवेश' का सूक्ष्म शब्द-वोध अब भी कवि मे बना हुआ है, किन्तु जन-युग मे आकर वह लोकभाषा की स्वाभाविक शक्ति से भी परिचित हो चुका है।

पन्त जी की भाषा सस्कृतनिष्ठ है। फिर भी विषय और वातावरण के अनुसार वे शब्दो का उदार प्रयोग करते है। अपनी गुणग्राहकता से प्रेरित होकर उन्होने 'मधुज्वाल' मे खैय्याम का हिन्दी-अनुवाद किया, 'स्वर्णधूलि' के 'आजाद' और 'अन्तिम पैगम्बर' शीर्षक कविता मे इसलाम का जीवन-दर्शन दिया। हिन्दुस्तानी के पक्ष मे न होते हुए भी पन्त जी ने अपनी भाषा मे कुछ उसका भी रग ले लिया है, जैसे—

पैगम्बर के एक शिष्य ने
पूछा, 'हजरत, बदे को शक
है आजाद कहाँ तक इसाँ
दुनिया मे पाबन्द कहाँ तक?'

कहने की आवश्यकता नही कि पन्त जी का दृष्टिकोण साम्प्रदायिक नही, सामाजिक है। इसी दृष्टि से वे शब्दो के व्यक्तित्त्व को समाज के विभिन्न प्राणियो की तरह भाषा मे समरस करते है। साहित्य और समाज मे कलाकार ही तो सामञ्जस्य स्थापित कर सकता है।

छायावाद-युग मे पन्त जी एकान्त के कवि थे, 'गुञ्जन' से वे समाज के सम्पर्क मे आये, मानव को उन्होने 'रे' कह कर उसे अपना सामाजिक स्नेह दिया। 'स्वर्णधूलि' मे एक स्थल पर 'रे' 'एरे' हो गया है, मानो कवि के सामाजिक परिचय मे घनिष्ठता आ गयी है।

'स्वर्णधूलि' की कविताओ मे लोक-दर्शन, अन्तर-दर्शन और आध्यात्मिक प्रवचन है।

लोक-दर्शन म कवि ने अपने सामाजिक विचारो और जीवन के रचनात्मक तत्त्वो को बडी सुबोध शैली मे सुगम कर दिया है । काव्य कही दृष्टान्त बन गया है, जैसे, 'क्रोटन की टहनी' मे, कही रेखा-चित्र, जैसे 'तालकुल' मे ।

'युगवाणी' की रचनाओ को कवि ने 'गीत-गद्य' कहा था । उसके भावो मे गीत (काव्य) और भाषा मे गद्य का पुट था। 'स्वर्णधूलि' के लोक-दर्शन मे गद्य की प्रधानता है ।

कविता की भाषा और छन्द को गद्य का विन्यास देने का प्रयास द्विवेदी-युग मे किया जा रहा था। उस समय गद्य ही पद्य बन गया था। छायावाद ने भाषा और छन्द मे भाव की सरसता का सञ्चार कर काव्य को पद्य से पृथक् कर दिया। स्वय पन्त जी ने 'पल्लव' मे खडीबोली के गद्य-सस्कारो का परिमार्जन किया। 'युगवाणी' से उन्होने गद्य को फिर अपना लिया । उनका गीत-गद्य 'स्वर्णधूलि' मे द्विवेदी-युग का पद्य भी बन गया।

भाषा के साथ ही पन्त जी के छन्दो मे भी परिवर्त्तन हुआ है। 'स्वर्ण धूलि' मे छन्दो के विशेष प्रयोग है। 'पल्लव' के 'प्रवेश' मे उन्होने हिन्दी की दृष्टि से अक्षरमात्रिक और वर्णवृत्त का विरोध किया था। अब स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि मे अक्षरमात्रिक ने नया प्रयोग पा लिया है। कही-कही पन्त जी के नये छन्द बँगला का भ्रम उत्पन्न करते है, किन्तु उनके कथनानुसार, नये छन्दो का उद्गम हिन्दी के छन्द शास्त्र मे है।

अक्षरमात्रिक के अन्तर्गत, 'स्वर्णधूलि' मे मुक्तछन्द को भी स्थान मिला है। 'उच्छ्वास' और 'आँसू' के मुक्तछन्द मे काव्य का सगीत था, स्वर्णधूलि' की क्षणजीवी' और 'जातिमन' शीर्षक कविता मे गद्य का गठन है। जैसे—

सौ सौ बाँहे लडती है, तुम नही लड रहे,
सौ सौ देहे कटती है, तुम नही कट रहे,
हे चिरमृत, चिर जीवित भू जन !

वस्तुत यह सक्रमणशील युग ही गद्य-शुष्क है। जीवन के साथ-साथ कला में भी एक प्रतिवर्त्तन हो रहा है, इतिहास और साहित्य अपने को दुहरा रहा है। सस्कृति मे रूढि-रीतियो की तरह पन्त जी काव्य में पुराने टेकनिको का भी कला-सामञ्जस्य कर रहे है।

पद्य और गीत-गद्य

'स्वर्णधूलि' मे कविता के कई रूप है—पद्य, निबन्ध, गीत-गद्य, गीतकाव्य और गीतनाटच।

पद्य मे कवि ने प्राय अपना समाज-दर्शन दिया है। पतिता, परकीया, ग्रामीण, सामञ्जस्य, आजाद, लोकसत्य, स्वप्न-निर्बल, आशका, जाति-मन, क्षणजीवी, मनुष्यत्त्व, चौथी भूख, शीर्षक कविताओ मे युग की नव-चेतना का सजीव परिचय मिलता है।

पद्य मे कवि ने यथास्थल भाव-स्पर्श भी किया है। भाव रस बन गया है। 'तालकुल' का वातावरण और व्यक्तित्त्व देखिये—

सन्ध्या का गहराया झुट पुट,
भीलो का-सा धरे सिर मुकुट,
हरित चूड कुकडू कूँ कुक्कुट

चक्राकार दलो से सकुल
फैलाये तुम करतल बर्तुल,
मन्द पवन के सुख से कँप-कँप

देते करमुख ताली थप थप
धन्य तुम्हारा उच्च ताल कुल।

कवि परिहास-पूर्वक इस रेखा-चित्र मे हर्ष की एक लहर बहा जाता है—

अगर न ऊँचे होते दादा
कब का ऊँट तुम्हे खा जाता
—एक बात, पर, लगता प्यारा
दूर, तरगित क्षितिज तुम्हारा।

'सावन' शीर्षक पद्य मे भी ऐसा ही स्वाभाविक चित्रण और हार्दिक रस-द्रवण है—

झम झम मेघ बरसते है सावन के,
छम छम छम गिरती बूँदे तरुओ से छन के।
चम चम बिजली चमक रही रे उर मे घन के,
थम थम दिन के तम मे सपने जगते मन के।

पकड वारि की धार झूलता है मेरा मन,
आओ रे सब मुझे घेर कर गाओ सावन।
इन्द्रधनुष के झूले मे झूले मिल सब जन,
फिर फिर आये जीवन मे सावन मनभावन।

'स्वर्णधूलि' के पद्यो को साधारण पाठक भी समझ सकता है।

'स्वर्णधूलि' मे कई गीत-गद्य है जिनमे 'छायाभा', 'दिवा स्वप्न' और 'छाया दर्पण' कवित्त्वपूर्ण है। पद्य और गीत-गद्य मे क्या अन्तर है, यह 'सावन' के साथ 'दिवा स्वप्न' पढने से स्पष्ट हो जाता है—

"मेघो की गुरु गुहा-सा गगन,
वाष्प बिन्दु का सिन्धु समीरण।

विद्युत् नयनो को कर विस्मित
स्वर्ण रेख कर ली हँस अंकित
हलकी जल फुहार, तन पुलकित,
स्मृतियो से स्पन्दित मन,
हँसते रुद्र मरुत गण ।"

पद्य मे वस्तु-तत्त्व (मैटर ऑव फैक्ट) की प्रधानता रहती है, गीत-गद्य मे भाव की। वस्तु-तत्त्व के लुप्त हो जाने पर गीत-गद्य ही गीत (काव्य) बन जाता है ।

आचार्य्य शुक्ल जी ने काव्य-वस्तु और शैली की दृष्टि से छायावाद के दो वर्ग निश्चित किये है । ऐसा ही वर्गीकरण पद्य का भी किया जा सकता है । पन्त जी के पद्य प्राय शैली की दृष्टि से ही पद्य ह ।

'स्वर्णधूलि' के निवन्धो ('अन्तिम पैगम्बर', 'नरक मे स्वर्ग', '१५ अगस्त १९४७') मे पद्य की शैली का विकास हुआ है । अतिम पैगम्बर और १५ अगस्त वस्तुत गीत-गद्य है, किन्तु लघु मुक्तक से कुछ बडे होने के कारण निवन्ध बन गये है । इन दोनो रचनाओ मे ओज है । टसर के सिल्क की तरह गद्य के खुरदरेपन मे भाव की स्निग्धता भी है, यथा—

मन्द धीर ऊँटो की गति से प्रेरित प्रिय छन्दो पर
गीत गुनगुनाते थे जन, निर्जन को स्वप्नो से भर।
('अन्तिम पैगम्बर')

उन्नत लगता चन्द्रकला-स्मित आज हिमाचल,
चिर समाधि के जाग उठे हो शम्भु तपोज्ज्वल।
लहर-लहर पर इन्द्रधनुष-ध्वज फहरा चञ्चल
जय-निनाद करता, उठ सागर, सुख से विह्वल।
('१५ अगस्त १९४७')

कथा-काव्य

'नरक मे स्वर्ग' एक सक्षिप्त कथा-काव्य है । यह भारत के पराधीन काल मे पिछडे हुए देशी राज्यो के अत्याचार और वहाँ की जनता के राजनीतिक जागरण का स्मरण दिलाता है । इस निवन्ध से 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' की मानो व्याख्या हो जाती है ।—राजकुमारी सुधा मे 'स्वर्ण-किरण' की स्वर्गिक चेतना है, करुणाकुमारी क्षुधा मे 'स्वर्णधूलि' की पार्थिव चेतना—

"पकजिनी थी क्षुधा, पक मे खिली दैन्य के निश्चय,
स्वर्णकिरण थी सुधा धरा की रज पर उतरी सहृदय ।
दोनो के प्राणो का परिणय था जन के हित सुखमय
स्वर्ग धरा का मधुर मिलन हो ज्यो स्रष्टा का आशय ।"

पृथ्वी की पकजिनी चेतना स्वर्ग की स्वर्णकिरण से ही सञ्जीवनी शक्ति पा सकती है, इसीलिए सुधा प्रासाद से धरती पर उतर आती है । उसके त्याग और बलिदान से पृथ्वी का नरक स्वर्ग बन जाता है । पात्र-पात्रियो के नाम मे एक अर्थ-सकेत है जिससे यह निबन्ध-काव्य प्रतीक-रूपक जैसा जान पडता है । कथानक के उपसहार मे कवि कहता है—

कथा मात्र है यह कल्पित, उपचेतन से अतिरञ्जित
कही नही है राजकुमारी सुधा धरा पर जीवित ।

कवि की यह उक्ति उतनी ही मनोवैज्ञानिक है जितनी रामचरित-मानस की यह पक्ति—'नहि तहँ रमा न राजकुमारी ।'

कवि का अभिप्राय यह है कि स्वर्ग की चेतना अभी पृथ्वी पर नही आ सकी है, 'स्वर्णकिरण' 'स्वर्णधूलि' नही बन सकी है । भविष्य की कल्पना अभी कलाकार के 'उपचेतन' मे चल रही है । 'सुधा' के स्वर्गिक आदर्श,

'क्षुधा' की पार्थिव आकाक्षा और 'क्षुधा' के सहोदर 'श्रम' के सार्वजनिक पुरुषार्थ का जब सहयोग होगा तब कल्पना ही सत्य बन जायगी।

साधना और आराधना

'स्वर्णधूलि' के गीतो मे कवि का अन्तर-दर्शन है। सौन्दर्य्य, प्रेम और भक्ति मे उसका क्रमिक मनोविकास है। किस प्रकार यौवन रूप से भाव और भाव से ज्ञान मे परिणत हो जाता है, यह 'परिणति' शीर्षक कविता मे देखा जा सकता है। इस छोटे-से भाव-गीत मे कवि का सम्पूर्ण मनोवृत्त (आत्मवृत्त) है। कवि कहता है—

स्वप्न समान बह गया यौवन
पलको मे मँडरा क्षण!

जीवन के क्षणभगुर आकर्षणो को पार कर कवि का यौवन अब 'ज्ञान-तरुण' हो गया है।

'गुञ्जन' की 'भावी पत्नी' के बाद 'स्वर्णधूलि' मे 'नववधू के प्रति' और 'स्वप्न-वन्धन' शीर्षक दो शृगारिक कविताएँ ह। इन कविताओ की भाषा और शैली मे सहज निखार है।

शृगार को भी कवि जीवन की साधना मे सफल देखना चाहता है। 'नववधू' का स्वागत करते हुए कहता है—

आती हो तुम सौ-सौ स्वागत, दीपक बन घर की आओ,
श्री, शोभा, सुख, स्नेह शान्ति की मगल किरणे बरसाओ!
प्रभु का आशीर्वाद तुम्हे, सेंदुर-सुहाग शाश्वत पाओ,
सगच्छध्व के पुनीत स्वर जीवन मे प्रति पग गाओ!

नारी अब भी कवि की एक मानसी सौन्दर्य्य-सृष्टि अथवा रूपसी चेतना है। वह 'स्वप्नदेही' है, कवि कहता है—

स्वप्नदेही हो प्रिये, तुम
देह-तनिमा अश्रु धोई।
रूप की लौ-सी सुनहली
दीप के तन मे सँजोई।

देह मे मृदु देह-सी
उर मे मधुर उर-सी समा कर,
लिपट प्राणो से गयी तुम
चेतना-सी निपट सुन्दर।

ऐसी स्वप्नदेही सुषमा की आराधना मे प्रेम भी अतीन्द्रिय हो जाता है। कवि ने प्रेम को 'विदेह प्राणो का वन्धन' कहा है—

यह विदेह प्राणो का वन्धन
अन्तर्ज्वाला मे तपता तन।
मुग्ध हृदय, सौन्दर्य्य-ज्योति को
दग्ध कामना करता अर्पण।

नही चाहता जो कुछ भी आदान
प्राणो से।
बाँध दिये क्यो प्राण
प्राणो से।

'स्वर्णधूलि' के प्रेमगीतो मे यत्र-तत्र चिन्तन की शुष्कता होते हुए भी उद्गारो मे स्वाभाविक मार्म्मिकता है। ये गीत मध्ययुग के उस कृष्ण-काव्य का स्मरण दिलाते है जिसमे रूप की अरूप साधना है। 'स्वर्णधूलि' का कवि मानो वृन्दावन का प्रेमयोगी है। उसके उद्गार वही के वातावरण मे उच्छ्वसित हो उठे है। कवि कभी कहता है—'गोपन रह न सकेगी अब यह

मर्म्म कथा'। कभी लोक-लाज की परवाह न कर उसकी आत्मा समाज से ऊपर उठ जाती है—

लुटे घर द्वार मान,
छुटे तन मन प्राण,
कहता है बार बार
मानव-हृदय पुकार
रह सकूँगा निराधार
तुमसे!

कभी अन्तर्ज्वाला से सन्तप्त होकर कवि बोल उठता है—

हृदय दहन रे हृदय दहन
प्राणो की व्याकुल व्यथा गहन

कभी व्यथा से अधीर होकर वह प्रेम को कोसने लगता है—

मै कहता कुछ, रे बात और!
जग मे न प्रणय को कही ठौर!

क्यो वृथा प्रेम आया जग मे
सिर पर काँटो का धरे मौर!
मै कहता कुछ, रे बात और

यह गीत प्रसाद जी की इस पक्ति का स्मरण दिलाता है—'मुझको न मिला रे कही प्यार।'

प्रेम को कवि ने विरह मे ही प्राणवान् कर दिया है। प्रेम प्राप्य नही, आराध्य है, इसीलिए उसकी साधना करनी पडती है—

अलभ है इष्ट अत अनमोल
साधना ही जीवन का मोल

('परिवर्त्तन')

प्रेम को कवि एक अन्तर्व्यापी चेतना मानता है—

"प्राणो की सुरभि बसी प्राणो मे
बन मधुसिक्त व्यथा,
वह नीरव गोपन मर्म्म-मधुर
वह सह न सकेगी लोककथा।"

यदि 'प्राणो की सुरभि' प्राणो मे ही बसी हुई है तो फिर उसके लिए इतनी विरह-विकलता क्यो? कवि ने कहा है कि विरह मे कामना दग्ध होती है—'मुग्ध हृदय सौन्दर्य्य-ज्योति को दग्ध कामना करता अर्पण।'

कामना के दग्ध हो जाने पर प्रेम अद्वैत हो जाता है, महादेवी के शब्दो मे—'उपासक बन जाता आराध्य।'

एक समय ऐसा आता है जब मनुष्य को इन्द्रियो के सौन्दर्य्य से उपराम हो जाता है, वह शान्ति चाहता है। कवि उसके सन्तप्त हृदय को आश्वासन और आमन्त्रण देता है—

तुम्हे नही देता यदि अब सुख
चन्द्रमुखी का मधुर चन्द्रमुख,
रोग जरा औ' मृत्यु देह मे,—
जीवन-चिन्तन देता यदि दुख,
आओ प्रभु के द्वार!

सम्भव है, तुम मन के कुण्ठित,
सम्भव है, तुम जग से लुण्ठित,
तुम्हे लोह से स्वर्ण बना प्रभु
जग के प्रति कर देगे जीवित,
आओ प्रभु के द्वार!

सौन्दर्य्य मे जिसका साक्ष्य है, प्रेम मे जिसकी प्रतीति है, भक्ति में जिसकी अनुभूति है, वह प्रभु अभ्यन्तर मे अगोचर है। भक्त जब आत्मलीन होकर उससे अन्त साक्षात्कार करता है तब उसे ऐसा जान पडता है—

गगन मे इन्द्रधनुष
अवनि मे इन्द्रधनुष !
नयन मे दृष्टि किरण,
श्रवण मे शब्द गगन,
हृदय के स्तर स्तर मे
उदित वह दिव्य वपुष !

मनुष्य ज्यो ज्यो अन्तर्लीन होता जाता है त्यो त्यो ससार उसके भीतर सार-अश बनता जाता है, यहाँ तक कि नयन की 'दृष्टि किरण' और श्रवण का 'शब्द गगन' भी लुप्त हो जाता है। जीवन की इस आन्तरिक प्रक्रिया को 'गुञ्जन' की 'चाँदनी' मे कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

झकार विश्व जीवन की
हौले हौले होती लय
वह शेष, भले ही अविदित
वह शब्द-मुक्त शुचि आशय।

अन्तर की समाधि में मनुष्य को जिस ज्योति का दर्शन होता है वह चाँदनी की तरह ही अनिर्वचनीय है—

वह खडी दृगो के सन्मुख
सब रूप, रेख, रँग ओझल,
अनुभूति-मात्र-सी उर मे
आभास, शान्त, शुचि, उज्ज्वल !

वह है, वह नही, अनिर्वच,
जग उसमे वह जग में लय,
साकार चेतना-सी वह,
जिसमे अचेत जीवाशय!

('गुञ्जन')

कवि उसी अचेत जीवाशय को सचेत करना चाहता है। सचेत होकर वही 'दिव्य वपुष' बन जाता है।

अरविन्द के आध्यात्मिक सत्सग मे कवि को जो आत्मानुभूति हुई उसका परिचय 'स्वर्णधूलि' के कई गीतचित्रो मे मिलता है। अपनी अनुभूति को कवि ने 'स्वर्ग-अप्सरी' मे मनोहर कवित्त्व दे दिया है—

सजल मानस मे मेरे
अप्सरी कैसे एरे,
स्वर्ग से गयी उतर
कब जाने तिर भीतर ही भीतर!

• • •

चेतना मे कोमल
आलोक पिघल
ज्यो स्वत गया ढल!

जिस चेतना से अग-जग की अनुभूति होती है उसे कवि ने जीवन की 'चित्रकरी' कहा है, पृथ्वी पर स्वर्ग का सृजन करने के लिए उसका आह्वान किया है—

जीवन चित्रकरी हे
सृजन आनन्द परी हे

करो कुसुमित वसुधा पर
स्वर्ण की किरण-तूलि धर
नव्य जीवन सौन्दर्य्य अमर
जग की छवि रेखाओ मे
रूप रग भर।

'चित्रकरी' मे कवि मानो अपनी ही नवीन कला को जीवन के अन्तर्बाह्य निर्म्माण के लिए प्रेरित कर रहा है—

देह सौन्दर्य्य-गठित हो
प्राण आनन्द-सरित हो
दृष्टि नव स्वप्न-जडित हो,
स्वर्ण चेतना से जगजीवन आलोकित हो।

जीवन की बाह्य प्रेरणा को कवि ने 'युगवाणी' कहा था, अन्त प्रेरणा को 'नि स्वर वाणी' कहा है—

नि स्वर वाणी
नीरव मर्म्म-कहानी।
अन्तर्वाणी।

यह नि स्वर अन्तर्वाणी ही तो कबीर का 'अनहद नाद' है। अरविन्द के योग-दर्शन और कबीर के हठ्योग का निष्कर्ष एक ही है।

'युगवाणी' मे युगवाणी से कवि ने कहा था—

अन्तर जग ही बहिर्जगत
बन जावे, वीणापाणि इ।

'स्वर्णधूलि' मे 'नि स्वर वाणी' से भी कवि यही शुभकामना करता है—

नव जीवन सौन्दर्य्य मे ढलो,
सृजन व्यथा गाम्भीर्य्य से गलो,
चिर अकलुष बन विहँसो हे
जीवन कल्याणी,
नि स्वर वाणी !

नवजीवन के सौन्दर्य्य मे ढल कर निर्गुण की साधना ही तो फिर सगुण की आराधना बन जायगी ।

पन्त जी निर्गुण (रहस्यवाद) को छायावाद से सगुण का माधुर्य्य और सगुण (छायावाद) को प्रगतिवाद का नवीन सामाजिक आकार-प्रकार देना चाहते है । कहते है—

ज्योतित हो मानव मन,
निर्म्मित नव भव जीवन,
देश जाति वर्णों से
निखरे नव मानवपन !

इस तरह 'नि स्वर वाणी' ही 'युगवाणी' हो जायगी, काव्य मे फिर एक रोमान्टिसिज़्म (आत्मोन्मेष) आ जायगा । कवि उसी की प्रेरणा जगा रहा है—

फिर वीणा मधुर बजाओ !
वाणी, नव स्वर मे गाओ !
उर के कम्पित तारो मे
झकार अमर भर जाओ !
शोभा हो, श्री सुषमा
धरणि स्वर्ग की उपमा,

दिव्य चेतना की जग मे
स्वर्णिम किरणे बरसाओ !
फिर वीणा मधुर बजाओ !

—यह नवयुग के नवीन सगुण का प्रभात-सगीत है ।

कवि की साधना रस की साधना है, इसी लिए क्रान्ति से भी वह छूँछे बादल का गर्जन-तर्जन नही, बल्कि रस-वर्षण चाहता है—

गरज न घन,
रस बन, रस बन,
प्राणो मे !

पन्त जी की मूलरागिनी आध्यात्मिकी है, वह अन्तश्चेतना को उद्गीर्ण करती है । 'स्वर्णधूलि' की 'आर्ष वाणी' मे उनकी श्रद्धालु आत्मा की स्वर-लिपि है । इसमे कुछ वेदमन्त्रो तथा स्वामी विवेकानन्द के 'साग आवद सन्यासिन' का आप्त अनुवाद है । अनुभूति और अभिव्यक्ति मे सधी हुई पन्त की परिपक्व काव्य-प्रतिभा मूलकृतियो से एकात्म हो गयी है । आर्य्य जनता अपने दैनन्दिन जीवन मे जिन प्रतीको (मूर्त्तियो) से चैतन्य की पूजा करती है वे प्रतीक कितनी सरलता से महतत्त्व को मर्म्मांकित कर देते है, यह वैदिक मन्त्रो के अनुवाद मे देखा जा सकता है । इससे 'स्वर्णकिरण' के प्रतीको और रूपको को भी समझने मे सुगमता होगी ।

मन्त्रो के अनुवाद मे सुगठित पद्य है, गीत के अनुवाद मे सगीत का उद्वेलित प्रवाह । 'सन्यासी का गीत' मानो 'ओम् तत्सत् ओम्' के गुरु-गम्भीर शङ्ख-घोष से अन्तस की सुप्त स्नायुओ को उद्बुद्ध करता है—

"छेडो हे वह गान, अनन्तोद्भव अबन्ध वह गान,
विश्वताप से शून्य गह्वरो मे गिरि के अम्लान
निभृत अरण्य प्रदेशो मे जिसका शुचि जन्मस्थान।"

मानसी

अध्यात्म के द्वारा पन्त जी जिस दिव्य चेतना को मनुष्य की अन्तरात्मा में जगाते हैं उसी को सगुण के द्वारा सामाजिक जीवन मे प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं। 'युगवाणी' मे उन्होने कहा था—'आत्मा ही बन जाय देह नव।'—वह नवीन देह मनुष्य का नव-निर्म्मित समाज है।

'मानसी' के गीत-रूपक मे पन्त जी ने समाज का भावी स्वरूप नर-नारी के अन्तर्विकास मे दिखलाया है। नवयुग का दाम्पत्य कहता है—'तुम प्रथम मनुष्य हो, न युग्म मात्र, स्त्री नरो!'

कवि ने नारी के जागरण को विशेष महत्त्व दिया है। नेपथ्य मे वह देखता है कि उसकी अभीष्ट चेतना नारी के सुविकसित व्यक्तित्त्व मे अवतरित हो रही है—'नारी मे फिर साकार हो रही नव्य चेतना जीवन की।'

कवि की आदर्श नारी अभी उसके मनोजगत मे ओझल है, इसीलिए वह 'मानसी' है। राम, कृष्ण और बुद्ध के युग से लेकर अति आधुनिक युग तक की नारी रङ्गमञ्च पर आकर अपने जीवन को गीतो मे गुञ्जरित कर जाती है।

'मानसी' के गीतो मे सरलता, मधुरता और स्वाभाविकता है। पात्रो के अनुरूप ही गीतो मे उनका हृदय बोल रहा है। पिक का गीत सुनिये—

बौरी थी यौवन अमराई,
गन्ध मन्द शीतल पुरवाई,
वह मुग्धा जीवन मे आई,
नव ऊषा-सी सहज लजाई!
कूहू, कुहु कूहू!

पन्त की कविता मे वर्षो बाद ऐसी कल-कोमल काकली सुनायी पडी है ।

कवि ने वातावरण के अनुसार गीतो मे लोक-प्रचलित शब्दावली भी ले ली है, यथा, 'जीवन गैल प्रिये, कँकरीली' । अति-आधुनिका के गीत मे मानो रजतपट की कोई तारिका गा रही है—'हम गोरी भोरी परियाँ' 'हम नवयुग ज्योति उजागरियाँ ।'

'मानसी' ठीक अर्थ मे गीतनाट्य है । गीतो-गीतो मे ही यह रूपक भाव, दृश्य और अभिनय को सजीव कर जाता है । टेकनिक मे नवीनता है । रूपक बडा ही आकर्षक और उत्प्रेरक है ।

'ज्योत्स्ना' के अन्तिम अक मे (लहर और झकोर के गीत-सम्वाद मे)कवि ने जिस अभिन्न दाम्पत्य का भाव-दर्शन दिया है, 'मानसी' में उसी का समाज - दर्शन है । इसमे 'युग्म प्रीति का विश्व जागरण है' । यह रूपक पन्त-काव्य का आसव है । इसमे पन्त के नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण का ही नही, बल्कि उनके सम्पूर्ण जीवन-दर्शन का सहज और सरस समावेश है ।

प्रत्येक युग की नारी मे अपने-अपने समय की जो सामाजिक अपूर्णता है उसी की पूर्त्ति 'मानसी' मे हुई है । भारतीय देवियो की विविध विशेषताओ के समन्वय से उसका व्यक्तित्त्व व्यापक हो गया है ।

कवि के लिए नारी-जागरण का अभिप्राय यह है कि नारी की सुप्त सद्वृत्तियाँ जागृत हो । इस दृष्टि से आधुनिक भारतीय नारी अभी जगी नही है । वह पश्चिम का अन्ध अनुकरण कर 'रूपशिखा' और 'प्रीतिशिखा' बन गयी है । सुसस्कृत युवक कहता है—

"प्रिय सखि, तुम पूरब मे आई
पर तनिक नही जागृति लाई"

कवि की मानसी नारी 'आत्मशिखा' है । उसकी अन्तर्ज्योति मे लोक-मगलकारिणी सभी प्रवृत्तियाँ सगठित होकर दीपशिखा की तरह ऊर्ध्व-सञ्चरण करती है । वह 'भक्ति शक्ति सौन्दर्य्य माधुरी' की समष्टि है, उसमे मानो 'ग्राम्या' की 'ग्राम नारी' और 'मजदूरनी' ही अविद्या के तम से मुक्त होकर प्रकाशवती हो गयी है ।

काशी
१८।५।५१

उत्तरा

'युगान्त' मे जिस नयी काव्य-कला का आरम्भ हुआ, 'युगवाणी' मे जिसे तारुण्य और 'ग्राम्या' मे सारल्य मिला, 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्ण-धूलि' मे जिसका योवन अन्त प्रस्फुटित हुआ, उस काव्य-कला की गीत-मयी आत्मा 'उत्तरा' मे है ।

'ग्राम्या' मे सन्' ४० के युद्धाक्रान्त वर्ष को सम्बोधित कर कवि ने कहा था—

आओ हे दुर्द्धर्ष वर्ष, लाओ विनाश के साथ नव सृजन,
विंश शताब्दी का महान विज्ञान ज्ञान ले उत्तर यौवन ।

—'उत्तरा' मे विश शताब्दी के उसी 'उत्तर यौवन' का जीवन-सगीत है ।

यद्यपि छायावाद-युग के 'पल्लव' और 'ज्योत्स्ना' के गीतो की कोम-लता-मधुरता 'उत्तरा' के सगीत मे नही है, तथापि 'गुञ्जन' के चिन्तन मे पन्त जी युग के जिस नये गद्य को गढ रहे थे, 'युगान्त' से 'स्वर्णधूलि' तक जिसे शक्ति दे रहे थे, उस गद्य ने सुदृढ होकर गीतो का काव्य-सौष्ठव 'उत्तरा' मे पा लिया है, हम कहे, छायावाद का माधुर्य्य प्रगतिवाद के ओज मे परिणत हो गया है । भाषा, भाव और पद-प्रवाह मे उसे अभी और प्राञ्जल होना है ।

'युग और साहित्य' (सन् '४१) मे लेखक ने 'छायावाद और उसके बाद' शीर्षक लेख मे लिखा था—"मध्ययुग के भक्ति-काव्य के बाद जैसे

छायावाद रोमैन्टिक होकर आया, वैसे समाजवाद मे आज का छायावाद फिर नवीन रोमान्टिसिज्म ग्रहण करेगा।"—प्राय एक दशाब्दी बाद 'उत्तरा' मे वही नवीन रोमान्टिसिज्म जीवन्त हो उठा है।

क्रान्ति का स्वरूप

'उत्तरा' के गीतो का प्रादुर्भाव क्रान्ति के अवसादपूर्ण श्रान्त-क्लान्त वातावरण मे हुआ है—

"चुभते शूल, मर्त्य पग लोहित,
झरते फूल, मनोदृग मोहित,
यह बहिरन्तर क्रान्ति, श्रान्त श्लथ
चलता जन जीवन, भू लथपथ।"

कवि जिसे 'बहिरन्तर क्रान्ति' कहता है, वह बाहर राजनीतिक है, भीतर सास्कृतिक है। 'स्वर्णकिरण' के 'अशोक वन' मे यही बहिरन्तर क्रान्ति है। उस गीत-रूपक को समझ लेने पर 'उत्तरा' का गीत-काव्य स्पष्ट हो जाता है। बाह्य क्रान्ति का रूप स्थूल है, सास्कृतिक क्रान्ति का रूप सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक है वह अवचेतन-उपचेतन की सीमाओ को पार कर अधि-चेतन (अध्यात्म चेतना) की ओर बढ रही है।

अभी तो क्रान्ति अपने बाहरी स्तर पर है। जड शक्तियो से जब सस्कृति के देवदूतो का सघर्ष (जैसे गान्धी जी का सत्याग्रह) होगा तब क्रान्ति भीतरी स्तर पर आ जायगी। 'उत्तरा' मे कवि ने इसी ओर सकेत किया है—

नाचेगा जब शोणित चेतन,
बदलेगा तब युग-निरुद्ध मन,
कट मर जायँगे युग-दानव,
सुर नर होगे भाई।

कवि का मन जन-साधारण की तरह 'युग-निरुद्ध' अथवा आत्मविस्मृत नही है, इसीलिए वह भावी क्रान्ति (सास्कृतिक क्रान्ति) का भी द्रष्टा है । वह अपनी सुदूर-व्यापिनी दृष्टि से देख रहा है—

महा सृजन की तडित टूटती दुसह
अन्धकार भू का विदीर्ण कर दुर्वह ।
युग-युग की जडता कँप उठती थर थर
आज स्वप्न-प्रज्ज्वलित चकित रे अन्तर !

कवि इसी क्रान्ति के लिए नवीन भारत को उत्साहित कर रहा है—

ग्रहण करो फिर असि धारा व्रत
भारत के नवयौवन,
धरा चेतना मे अब फिर से
छिडा तुमुल आन्दोलन !

कवि ने इस आन्दोलन को मनुष्य के 'अन्तर्मन का आन्दोलन' कहा है ।

भावी क्रान्ति के लिए जो बलिदान देना होगा, कवि ने उसका आभास 'ग्राम्या' की 'बापू' शीर्षक कविता मे भी दिया था—

नही जानता युग-विवर्त्त मे होगा कितना जन-क्षय,
पर मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेगे निश्चय !

'उत्तरा' की प्रस्तावना मे पन्त जी लिखते है—"सत्य-अहिंसा के सिद्धान्तो को मै अन्त सगठन (सस्कृति) के दो अनिवार्य्य उपादान मानता हूँ । अहिंसा मानवीय सत्य का ही सक्रिय गुण है । अहिंसात्मक होना व्यापक अर्थ मे सस्कृत होना, मानव बनना है ।"

'उत्तरा' की क्रान्ति मे कवि के अभीष्ट सास्कृतिक मानव का ही युग जन्म ले रहा है—

"जन-युग के कटु हाहारव मे
मानव-युग का होता उद्भव ।"

'स्वर्णकिरण' के 'अशोक वन' मे राम ने सीता से कहा है—'विरह प्रलय, प्रेयसि, प्रभव मिलन ।'—राम और सीता के विरह मे जड-युग (जन-युग) का प्रलय है और उनके मिलन मे 'उत्तरा' के 'मानव-युग का उद्भव' ।

बाह्य क्रान्ति आन्तरिक क्रान्ति के लिए क्षेत्र प्रस्तुत करती है, वह कुरुक्षेत्र को धर्म्मक्षेत्र बनाती है, बाहर जो प्रलयकरी है, वही भीतर सृजनमुखी है । ऐतिहासिक रूपान्तर के साथ-साथ मनुष्य का सास्कृतिक उन्नयन अथवा मानसिक मन्वन्तर भी होगा, इसी आशा से कवि ने बाह्य क्रान्ति का भी स्वागत किया है—'आओ हे दुर्द्धर्ष वर्ष, लाओ विनाश के साथ नवसृजन ।'

बाह्य क्रान्ति तो अपनी पार्थिव सकीर्णता से स्वय अग्रसर हो रही है—'मर्त्यों की परवशता, मिटते, कट-मर ।' इस विनाश के पीछे नव-जीवन का जो सृजनशील युग आ रहा है, उसी की मुरली-ध्वनि की मधुरता का सञ्चार कवि क्रान्ति के पाञ्चजन्य में कर रहा है, वास्तविकता के भीतर यही तो उसका रोमान्टिसिज्म है—

"गीत-क्रान्त रे इस युग के कवि का मन,
नृत्य-मत्त उसके छन्दो का यौवन !
वह हँस-हँस कर चीर रहा तम के घन
मुरली का मधु रव कर भरता गर्जन ।"

चेतना का अवतरण

पन्त जी रङ्गमञ्च पर बाह्य क्रान्ति की कुछ झलक देकर नेपथ्य मे उज्ज्वल भविष्य का चित्र आँक रहे है, सस्कृति का सगीत सुना रहे है ।

बाहर की क्रान्ति तो दिखाई देती है, भीतर की क्रान्ति अभी ओझल है, कवि कहता है—

> गोपन-सा कुछ हो रहा आज
> जन-मन मे भीतर परिवर्त्तन
> अन्तर्चेतन तारुण्य फट
> गढता अब नव जग का जीवन !

भीतर के इसी अदृश्य सृजन के मर्म्मोद्घाटन के लिए 'उत्तरा' मे कवि ने प्राय नि स्वर, रहस्य, गोपन, मादन और शाश्वत का शब्द-प्रयोग किया है।

'उत्तरा' की प्रस्तावना मे अपने गीतो के सम्बन्ध मे पन्त जी लिखते हैं—"वे मनुष्य के अन्तर्जगत तथा भविष्य की अस्पष्ट झाँकियाँ भर है और नवीन मानव-चेतना के सिन्धु मे मेरी वाणी के स्वप्न-अवगाहन अथवा स्वप्न-निमज्जन मात्र।"

कवि का स्वप्न क्या स्वप्न ही रह जायगा ? 'उत्तरा' मे उसका स्वप्न सत्य हो गया है। वर्त्तमान अन्धकार के उस पार कवि देख रहा है—

> रक्तपूत अब धरा शान्त सघर्षण,
> धनिक श्रमिक मृत तर्कवाद निश्चेतन !
> सौम्य शिष्ट मानवता अन्तर्लोचन
> सृजन-मौन करती धरती पर विचरण !

• •

> विद्युत अणु उसके सन्मुख अब नत फन,
> वसुधा पर नव स्वर्ग-सृजन के साधन,
> आज चेतना का गत वृत्त समापन
> नूतन का अभिवादन करता कवि-मन !

कवि का भावी युग इतिहास के किस विकास-काल मे आयेगा, यह ऊपर की पक्तियो से सूचित होता है।

'उत्तरा' मे कई तरह की रचनाएँ है। पन्त जी के निर्देशानुसार, "उत्तरा मे मेरी इधर की कुछ प्रतीकात्मक, कुछ धरती तथा युगजीवन-सम्बन्धी, कुछ प्रकृति तथा वियोग-शृगार-विषयक कविताएँ तथा कुछ प्रार्थना-गीत सग्रहीत है।" रचनाओ की इस विविधता मे उद्गारो की एकता है, ये जडता मे चेतना को जगाती है। कवि की अभीष्ट चेतना कही पार्थिव जीवन से सम्बद्ध होकर सार्वजनिक बन गयी है, कही लोकातीत होकर एकान्त की अनुभूति।

मन की विविध सीमाओ की तरह पन्त जी चेतना की भी कई श्रेणियाँ निर्द्धारित करते है। 'स्वर्णकिरण' के 'श्री अरविन्द-दर्शन' मे उन्होने कहा था—

स्तर-पर-स्तर कर पार चेतना के, योगेश्वर,
स्वर्णारुण मे नव्योदित तुम चिदाकाश पर।
मानव से ईश्वर, ईश्वर से मानव बन कर
आये लौट धरा पर, ले नवजीवन का वर।

चेतना का यही आरोह-प्रत्यारोह 'उत्तरा' मे भी है। कवि ने पूछा था—

देश-काल से परे कौन वह व्योम दुख-रहित
शाश्वत सुख का हर्ष जहाँ से लाते तुम नित।

यही जिज्ञासा 'उत्तरा' मे भी है—

तुम किन आकाशो मे मन को
ले जाती हो नीलिमा तरल।
तह-तह मुझको नीहार रजत
ढँक लेता उर-सा कोमल।

जडता को कवि ने आसुरी कहा हे, लोक-चेतना को मानवीय, लोकोत्तर चेतना को दैवी, देवोत्तर चेतना को ईश्वरीय। ईश्वर मानव का ही चरम विकास है, कवि के शब्दो मे—

वह पूर्ण मानवो का मानव
जो जन मे धरता क्रमिक चरण,
वह मर्त्य भूमि को स्वर्ग बना
जन-भू को कर लेगा धारण।

ईश्वरीय चेतना (परम चेतना) मनुष्य मे अवतरित होकर, धरा पर शिखर की तरह सुशोभित होकर, किस तरह पृथ्वी को ही स्वर्ग बना देती है, यह 'भू-स्वर्ग' शीर्षक कविता मे देखा जा सकता है—

वह मिट्टी की शय्या मे जग
भरती प्रकाश मे अँगडाई,
मुकुलित अगो से फूट रही
उन्मत्त स्वर्ग की तरुणाई।

हो रहा स्वर्ग से धरणी का
जड से चेतन का रहस-मिलन
भू स्वर्ग एक हो रहे शनै
सुरगण नरतन करते धारण।

'भू-जीवन' शीर्षक कविता मे वही ईश्वरीय चेतना धरती का शृगारिक रूप धर कर मनुष्य की प्रतीक्षा कर रही है—

वह हरी मखमली चोली मे
बाँधे मुकुलो के स्वप्न-शिखर,

तुम उन पर निज चेतना-रश्मि
बरसाओ, वे नव उठे निखर!

फूलो की शय्या पर लेटा
मधु से गुञ्जित उसका यौवन,
तुम उसके कम्पित अधरो पर
धर दो प्रकाश का चिर चुम्बन!

वह चलती, ज्यो उडती नभ पर
जीवन के धर शत चरण मुखर,
लहरी-सी, गन्ध-समीरण - सी
पग-पग पर शोभा पडती झर!

वह प्रणत यौवना चरणो पर
बैठी, उर मे प्रिय स्मृति-दशन,
तुम आओ, उसके सँग बैठो,
सगीत बने भू का क्रन्दन!

बाह्य क्रान्ति (भौतिक क्रान्ति) के बाद मनुष्य इसी स्वर्गीय सुषमा का उपभोग करने के लिए अन्त सघर्ष (आत्ममन्थन) करेगा। उसके भीतर का प्रकाश अपनी ही तामसिक प्रवृत्तियो पर विद्युत्पात की भाँति टूट पडेगा, भूकम्प की भाँति फूट पडेगा। 'निर्म्माण-काल' शीर्षक कविता मे कवि ने भविष्य की उसी मन क्रान्ति का चित्रण किया है—

धू-धू कर जलता जीर्ण जगत
लिपटा ज्वाला मे जन-अन्तर,

तम के पर्वत पर टूट रही,
विद्युत् प्रपात-सी ज्योति प्रखर!

.. ..

ढह रहे अन्ध विश्वास शृंग
युग बदल रहा, यह ब्रह्म-अहन् !
फिर शिखर चिरन्तन रहे निखर
यह विश्व-सञ्चरण रे नूतन !

बज रहे घंटियों-से तरुदल
छवि-ज्वाल पल्लवित जग जीवन,
नव ज्योति चरण धर रहा सृजन
फिर पुष्प वृष्टि करते सुरगण !

प्रकृति का निरूपण

कवि ने प्रकृति के ध्वंस और निर्म्माण से ही अपने चित्रों के प्रतीक लिये हैं। उसका अन्तर्जगत प्रकृति के निर्म्माण-जगत में उन्मुक्त हो गया है, वह कहता है—

प्रिय निसर्ग ने अपने जग में
खोल दिया मेरा अन्तर।

.. ..

रंगप्राण रे प्रकृति-लोक यह
यहाँ नहीं दुख-दैन्य अमंगल,
यहाँ खुला चिर शोभा का उर,
यहाँ कामना का मुख उज्ज्वल !

('शरद श्री')

भविष्य के सृजनशील युग मे प्रकृति का नर्सगिक उल्लास ही जीवन की सामाजिक सुषमा बन गया है—

रगो मे गाता कुसुमाकर,
सौरभ मे मलयानिल नि स्वर,
नील मौन मे गाता अम्बर,
मधुर तुम्हारा स्पर्श पा अमर।

शोभा मे गाते लोचन लय,
प्राण प्रीति के मधु मे तन्मय,
रस के बस, उल्लास मे अभय
गाता उर भीतर ही भीतर
मौन आज क्या वीणा के स्वर ?
('मौन सृजन')

जो अभी नि स्वर और अगोचर है वही तो कभी सगीत से सस्वर और सौन्दर्य्य से सुगोचर हो जायगा।

धरती के नैसर्गिक विकास की तरह मनुष्य का मनोविकास भी उसी के भीतर से प्रस्फुटित होता है। कवि 'शरद चेतना' मे अपनी अन्तश्चेतना (ईश्वरीय चेतना) से कहता है—

तुम मुझे डुबा लो अपने मे
या मुझमे जाओ स्वय डूब,
तुम फूटो मेरा मोह चीर
ज्यो कढती भू को चीर दूब!

क्या प्रकृति मे भी मर्त्यो की-सी क्षणभगुरता नही है ? किन्तु कवि प्रकृति के क्षणिक रूपो मे उस सृजनशील उर्व्वर चेतना को महत्त्व देता है

जो मनुष्य के भीतर ईश्वर की तरह ही अविनश्वर है। 'अमर्त्य' शीर्षक गीत मे कवि कहता है—

समझा, क्यो हँस-हँस गये बिखर!
जब सौरभ के, रँग के दल भर,
कर गये रिक्त मधुमय अन्तर,
क्यो फूल, धूल मे गये बिखर!

तुम आये गये, जगत का छल,
तुम हो, तुम होगे, सत्य अटल,
रीता हो भरे धरा-अञ्चल
तुम परे अचिर चिर से,—सुन्दर!

कवि सौन्दर्य्य मे ओत-प्रोत होकर भी उसके क्षणिक रूप (आवरण) मे सीमित नही हो जाना चाहता—

मैं सुन्दरता मे
स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण
वह बने न बन्धन!

('अवगाहन')

कवि के सौन्दर्य्यानुराग मे उस योगीश्वर रतीश्वर का रसोल्लास है जो सीमाओ से मुक्त है, सगुण मे निर्गुण है। सौन्दर्य्य मे जो अमृत है, कवि उसी प्रेम का प्रार्थी है—

मत दो केवल
मधु स्वप्नो का सम्मोहन,
मैं अमर प्रीति मे
स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण!

'स्वर्णकिरण' से 'युगपथ' तक पन्त जी जिस ऊर्ध्वचेतना को साकार करते आ रहे है, उसका सम्पूर्ण प्राकृतिक रूपक 'उत्तरा' की 'प्रीति' शीर्षक कविता मे है, उससे उनके सभी आध्यात्मिक भाव-प्रतीको का चित्र-भाष्य हो जाता है।

प्रकृति के प्रतीको मे कवि की काव्य-चेतना कही रसानुभूति (भक्ति और शृगार) बन गयी है और कही रागात्मिका वृत्ति (अभिलाषा, सवेदना, स्मृति)। इन प्रतीक चित्रो मे प्रकृति केवल दृश्यमयी ही नही, बल्कि प्राणमयी भी हो उठी है। यथा—

ऊषा आज लजाई
ओसो के रेशमी जलद से
अधर-रेख मुसकाई।

जीवन की अपूर्ण 'अभिलाषा' को कवि ने एक कली के रूप मे उपस्थित किया है—

एक कली जो मेरे पास
तुम चाहो इसको अपना लो
कर दो इसका पूर्ण विकास!

कली का विकास उसका अन्तर्विकास है। विकसित होकर कली वीतरागियो की तरह विश्व से मुँह नही मोड लेना चाहती, वह यही के माया-ममतापूर्ण जीवन को उर्व्वर बना जाना चाहती है—

नयन रहे स्वप्नो से रञ्जित,
पलके विरह-अश्रु-हिम से स्मित,
उर असीम शोभा से विस्मित
छोडे जब यह अन्तिम साँस!

यह हँसते-हँसते झर जावे,
जग मे निज सौरभ भर जावे,
भू-रज को उर्व्वर कर जावे—
नव बीजो से हो न विनाश !
एक कली जो मेरे पास
वह अभिलाष !

इस एक रूपक मे पन्त का समग्र जीवन-दर्शन आ गया है, इसमे लोक-चेतना और ईश्वरीय चेतना का समावेश हो गया है ।

गीतकाव्य की नवीन प्रगति

'उत्तरा' गीत-काव्य के साहित्य मे एक नवीन अभियान है। यह मध्ययुग के निर्गुण, सगुण और आधुनिकयुग के छायावाद को व्यक्तिवाद की सीमा से निकाल कर भविष्य के समष्टिवाद की ओर ले जाती है, मानवता को विस्तृत धरातल प्रदान करती है। कवि कहता है—

तुम जीवन के सपने !
मन को लगते आज
विश्वमय, अपने !
('आभा-स्पर्श')

कवि की विशद मानवता मे अहम् का विसर्जन और सोऽहम् का सवेदन है । भविष्य के इतिहास मे वह देख रहा है—

अवचेतन मे लीन पुरातन,
स्वप्न-सृष्टि अब करता नूतन,
तन्मय हुआ अह युग-युग का
बाँहो मे बँध चेतन !
('शोभा क्षण')

कवि का समष्टिवाद केवल वर्ग-मुक्त जनवाद (जडवाद) नही है, बल्कि उसमे मनुष्य की लौकिक और अलौकिक सभी रचनात्मक प्रवृत्तियो का सर्वोदय है। इसे हम भौतिक रहस्यवाद अथवा आध्यात्मिक भौतिकवाद कह सकते है। इसमे न तो मध्यकालीन रहस्यवाद का 'निष्क्रिय शून्य जीवन-वर्जन' है और न आधुनिक भौतिकवाद की जलन या द्वेष—

वह रही राग मे नही जलन
कुछ बदल गया उर के भीतर,
खो गया कामना का घनत्त्व
रीते घट-सा अब जग बाहर!

('युगविराग')

काव्य मे यह नवीन रहस्यवाद कवि का पलायन नही है, वह तो 'युग-विषाद का भार वहन कर' ही मनुष्य की दिव्य चेतना का आह्वान कर रहा है।

काशी,
१२।६।५१

युगपथ

'युगपथ' के दो खण्ड है—'युगान्त' और 'युगान्तर'। 'युगान्त' आकार मे बहुत छोटा था। पन्त जी लिखते है—"युगान्त की कलेवर-वृद्धि की दृष्टि से भी उसके साथ कुछ नवीन कविताओ को सम्मिलित कर देना उचित समझा गया, जो अब प्रस्तुत सग्रह के रूप मे पाठको के पास पहुँच रहा है।"

कलेवर-वृद्धि के अतिरिक्त, ऐतिहासिक रूपान्तर की दृष्टि से 'युगान्त' के बाद 'युगान्तर' का क्रम स्वाभाविक है।

'कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति' शीर्षक कविता मे कवि स्वीकार करता है कि अभी 'युगान्त' नही हुआ है—

" . इन वर्षो मे
अधिक नही कुछ बदल सका धरती का जीवन"

युग तो नही बदला, किन्तु अन्धकार के बाद प्रकाश की भाँति युगान्तर' अवश्यम्भावी है। कवि ने उसी का पूर्वाभास दिया है।

अतीत का आविर्भाव

'युगान्त' का अन्त 'बापू' शीर्षक कविता से हुआ था। 'युगान्तर' का प्रारम्भ उनकी दिवगत आत्मा के स्मृति-चिन्तन से हुआ है। 'युगान्त' मे जिस तामसिक युग को प्रकाश देने के लिए बापू का अवतरण हुआ था उस विकृत युग को अपना देहोत्सर्ग देकर उनकी अमृत-चेतना 'युगान्तर' मे पुनर्जीवित हो गयी है। कवि भावी की आँखो से देख कर कहता है—

देख रहा हूँ शुभ्र चाँदनी का-सा निर्झर
गान्धी-युग अवतरित हो रहा इस धरती पर।
विगत युगो के तोरण, गुबद, मीनारो पर
नव प्रकाश की शोभा-रेखा का जादू भर ।

झुका तडित-अणु के अश्वो को, कर आरोहण
नव मानवता करती गान्धी का जय-घोषण।

'ग्राम्या' मे कवि ने महात्माजी को 'विजित नर वरेण्य' कहा था, उनके प्रतिपक्षियो को 'गणजन विजयी साधारण।' अन्य लोग जिसे अपनी विजय समझते है, वस्तुत वह उन्ही की पराजय है, महात्माजी की नही। वे तो विजित होकर भी अपने अडिग आदर्शो मे अपराजित थे। इसी दृष्टि से 'ग्राम्या' मे कवि ने कहा—

गत आदर्शो का अभिभव ही मानव-आत्मा की जय
अत पराजय आज तुम्हारी जय से चिर लोकोज्ज्वल।

'युगान्त' के बाद 'युगान्तर' मे 'गत आदर्शों का अभिभव' हुआ है। उज्ज्वल अतीत भविष्य मे ज्वलन्त हो गया है।

'युगान्त' से लेकर 'युगान्तर' तक के मध्य अनेक उलट-फेर हो चुके है। कवि के मानसिक निष्कर्षो मे भी परिवर्त्तन हुए है। वह अतीत के आदर्शो के प्रति पुन श्रद्धालु हो उठा है।

पन्त जी ने बापू को अपनी श्रद्धाञ्जलि 'युगान्तर' मे, आरम्भ के सोलह गीतो मे, दी है। ये गीत 'श्रद्धा के फूल' है। इन गीतो मे गान्धी-आत्मा का सूक्ष्म दर्शन और भाव-चित्रण है। 'स्वर्णकिरण' और 'उत्तरा' मे पन्तजी जिस धरा-शिखर (लोक-चेतना ओर अन्तश्चेतना)का सकेत करते आये है उसे उन्होने गाधी की कर्म्म-भूमि ओर मर्म्म-भूमि मे जीवन्त कर दिया

है। गान्धी-जीवन का दृष्टान्त पाकर पन्त की नवीन काव्य-प्रेरणाओ का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। यह श्रद्धाञ्जलि नवयुग की नव्य गीता है।

बारहवें गीत मे बापू के साथ गुरुदेव (रवीन्द्रनाथ) को स्मरण किया गया है। वे इस स्मृति-माला के पूरक मणि है। गान्धी और रवीन्द्र मे साधनो का मतभेद था, किन्तु साध्य दोनो का एक था। 'कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति' एक विस्तृत कविता मे कवि कहता है—

> रूप माँस थे आप, आत्मपञ्जर थे वे दृढ
> ऊर्ध्व रीढ ही, शान्ति निकेतन की पृथ्वी पर
> जिसे चाहते थे दोनो ही स्थापित करना
> स्वप्नो से, कर्म्मो से, जग के रण-प्रागण मे
> जन मगल के हित अह, दोनो चले गये तुम!

गान्धी और रवीन्द्र के अतिरिक्त, 'युगान्तर' मे अन्य युग-स्रष्टाओ पर लिखी गयी कविताओ के शीर्षक ये है—मर्य्यादा पुरुषोत्तम के प्रति, श्री अरविन्द के प्रति, डा० अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रति। 'स्वर्णकिरण' मे 'प० जवाहरलाल नेहरू के प्रति' भी एक ओजस्विनी कविता है।

अपने समय के सभी विशिष्ट व्यक्तियो के माध्यम से पन्त ने युग के आन्तरिक आन्दोलनो और सृजनशील चेतनाओ को आलम्बन दिया है।

राष्ट्रीय सङ्गीत

'युगान्तर' मे कुछ कविताएँ राष्ट्रीय है। 'ग्राम्या' से लेकर 'युगपथ' तक पन्त की सभी कविता-पुस्तको मे भारत-वन्दना के गीत है। देश-काल की भिन्न-भिन्न परिस्थितियो के अनुसार इन गीतो के सामयिक चित्रो मे भी भिन्नता है। 'ग्राम्या' मे ग्रामवासिनी 'भारतमाता' शस्य-शून्य थी, वह पराधीनता का अभिशाप झेल रही थी, उसकी दृष्टि मे दीनता थी।

'युगान्तर' मे स्वतन्त्र भारत 'जन गण तन्त्र विधाता' है, वह भविष्य का सुख-सौभाग्य शाली देश है—

"हरे खेत लहरे नद-निर्झर
जीवन-शोभा से भू उर्व्वर
विश्व कर्म्मरत कोटि बाहु-कर
अगणित पद ध्रुवपथ पर!"

गुप्तजी के बाद सब से सुपुष्ट राष्ट्रीय कविताएँ पन्तजी ने लिखी है। उनके राष्ट्रीय गीत बडे ही सुगठित और कवित्त्वपूर्ण है, साहित्य की स्थायी सम्पत्ति है। इन गीतो का स्वतन्त्र सचित्र सग्रह बन सकता है।

पन्त की राष्ट्रीय कविताओ मे भारत के तात्कालिक जीवन के अतिरिक्त उसका चिरन्तन सास्कृतिक हृदय बोल रहा है। 'युगान्तर' मे भारत का सास्कृतिक और कलात्मक वातावरण पुञ्जीभूत हो गया है। इसमे आप्त पुरुषो का स्तवन, होली और दीवाली का त्यौहार तथा त्रिवेणी का सगम है। किसी भी विषय को पन्त ने एकदेशीय सीमित परिधि मे न ले कर उसे विश्वजीवन और विश्वचेतना के प्रतीक-रूप मे उपस्थित किया है। भारत की 'स्वाधीन चेतना' को लक्ष्य कर कवि कहता है—

जागो हे स्वाधीन चेतने,
जन-मन-शौर्य्य जगाओ,
भारत की आलोक-शिखे,
नवयुग के चरण बढाओ।

कला के विविध प्रयोग

'युगान्तर' मे पन्त की विविध काव्य-कला का एकत्र परिचय मिल जाता है। बापू के स्मृति-गीतो मे 'युगवाणी' का गीत-गद्य है। विशिष्ट

पुरुषो की प्रशस्तियों मे अतुकान्त का प्रयोग है। कवि जब भावोन्मेष ही नही करना चाहता, बल्कि उद्‌गारो को नाटकीय वक्रता भी देना चाहता है, तब अतुकान्त का आश्रय लेता है। 'ग्रन्थि' की सक्षिप्त भूमिका मे पन्त जी ने लिखा था—"हिन्दी मे बडी ही मनोहर तथा परिपूर्ण प्रासहीन सृष्टि हो सकती है। 'ग्रन्थि' के प्रेमियो के सन्मुख मै भविष्य मे अतुकान्त-अगो की अधिक सुगठित प्रतिमा प्रस्तुत करने की आशा रखता हूँ।" 'स्वण-किरण' और 'युगान्तर' के अतुकान्त मे तथा रेडियो के लिए लिखे गये रूपको मे उन्होने अपने इसी आश्वासन को सार्थक किया है। रेडियो के मशीनी ढाँचे से भिन्न, रङ्गमञ्च की दृष्टि से यदि पन्तजी गीतनाटय लिखते तो उसका कुछ और ही रूप होता। उसका कुछ आभास 'स्वर्णधूलि' की 'मानसी' और 'युगपथ' की 'त्रिवेणी' मे मिलेगा।

'ग्रन्थि' के बाद पन्त जी का नया अतुकान्त 'रोला' मे है। उसमे उन्होने पद-प्रवाह के लिए यति और अन्तिम मात्राओ की स्वतन्त्रता ली है ११-१३ की मात्रा को १२-१२ कर दिया है, अन्त की दो दीर्घ मात्राओ को दो ह्रस्व भी बना दिया है। यति की स्वतन्त्रता से रोला मे गति-वैचित्र्य और अन्त की स्वतन्त्रता से पद-प्रवाह आ गया है।

छन्द के नियमो को मानते हुए पन्त जी उसमे आवश्यकतानुसार कुछ भीतरी स्वतन्त्रता ले लेते है। 'उच्छ्‌वास' और 'आँसू' मे उन्होने इसी तरह छन्दो को मुक्त किया था। इधर के छन्दो के सम्बन्ध मे उनका मन्तव्य 'उत्तरा' की प्रस्तावना मे देखा जा सकता है।

'युगान्तर' के 'भारतगीत' मे पन्त जी ने राष्ट्रीय सगीत को भी अपना प्रयोग दिया है। स्वतन्त्रता मिल जाने पर यह निश्चय किया जा रहा था कि भारत का राष्ट्रगीत क्या हो?—बकिम का 'वन्देमातरम्' या रवीन्द्र का 'जन मन गण अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता'?

कई कारणो से रवि बाबू का गीत असामयिक हो गया था, उसमे

परिमार्जन की आवश्यकता जान पडती थी। पन्त ने रवीन्द्र की लय पर उनके गीत का नवोत्कर्ष किया। बकिम के 'वन्देमातरम्' का भी उसमें आशिक समावेश कर दिया, यथा—

शक्ति स्वरूपिणि, बहु बल धारिणि, वन्दित भारतमाता
धर्म्मचक्र-रक्षित तिरग-ध्वज अपराजित फहराता
जय हे जय हे जय हे, शान्ति अधिष्ठाता।

पन्त के 'भारत गीत' मे रवि बाबू के गीत का सास्कृतिक गाम्भीर्य्य ओर ओज आ गया है, भाव अधिक व्यापक हो गया है। एक प्राञ्जल राष्ट्रीय सगीत के रूप मे पन्त का 'भारत गीत' अगीकृत हो सकता है।

रुचि-सौकर्य्य के लिए पन्त ने 'भारत गीत' को तीन तरह से लिखा है। इसका तीसरा रूप सरल, सक्षिप्त और सरस है। एक ही भाव, भाषा और छन्द-योजना किसी कुशल कवि की लेखनी से कैमी विविध अभिव्यक्ति पा सकती है, यह पन्त के 'भारत गीत' मे देखा जा सकता है।

चेतना का मानवीकरण

'युगान्तर' के अन्य गीत 'उत्तरा' की गीत-शैली मे है, ये उसी के परिशिष्ट है। इन गीतो मे दैवी ज्योति (दिव्य चेतना) का आह्वान और लोकचेतना का उद्बोधन है। कवि कहता है—

फिर हुई अहिल्या मनोभूमि,
चेतना शिला-सी जड निश्चल,
फिर मानवीय बन कर निखरे
भू शाप-मुक्त हो, छू पदतल।

दिव्य चेतना का स्पर्श पा कर ही मनुष्य भीतर से सजीव हो सकता है। उसके बिना वह सवेदन-शून्य पाषाण मात्र रह जाता है।

दिव्य अथवा परमात्म-चेतना अपने को लोकचेतना (मानवी चेतना) में मूर्त्त करती है। परमात्मा अन्तर मे ही ओझल नही रह सकता—

"तुम कैसे रह सकते केवल
अन्तर-प्रकाश मे ही सीमित
तुम मूर्त्तिमान बनते जन मे
क्षर-रूप धन्य होता निश्चित।"

इस प्रकार रहस्यवाद ही लोक-चेतना मे परिणत होकर मानववाद बन जाता है।

कवि का मानव अन्तश्चेतना से अनुप्राणित अन्तर्मानव है। यही मानव जब पृथ्वी को सुशोभित करता है, तब—

"भू-क्रन्दन बन जाता कूजन,
शान्त निखिल जीवन-सघर्षण,
क्षण-भगुरता के आसन पर
दिखता मौन चिरन्तन।"

कवि ने भावी मानव का स्वागत 'युगान्तर' के 'स्वप्न-गीत' मे किया है। वह 'गर्भस्थ के प्रति' कहता है—

आओ, प्यारे मुन्ना, आओ,
भू पर चन्दा से मुस्काओ,
नन्हे, आओ!

तुम स्वप्नो के पथ से आओ,
नव जीवन के रथ से आओ,
मुन्ना हो तो नयन जुडाओ,

मुनिया हो तो हृदय चुराओ !
नन्हे, आओ !

झिलमिल करते जुगनूँ वन मे,
बिजली छिपती दिपती घन मे,
जगते तुम आशा-से मन मे
मधुर रूप धर हमे रिझाओ !

खेल रही लहरे चल जल मे,
लोट रही मृदु रज भूतल मे,
स्वप्नो की छाया आँचल मे
कँपती, उसको सत्य बनाओ !

—जीवन के गूढ रहस्यो के कवि पन्त की ये कैसी सहज पक्तियाँ है ! भविष्य का गर्भस्थ शिशु केवल एक देह नही, बल्कि अपने आपमे विश्व-ब्रह्माण्ड है। उसके व्यक्तित्त्व मे व्यापकता है—

"शाश्वत-से, लघु तन में सीमित,
रवि-से, हिम कण मे प्रतिविम्बित,
जग-से नयन-कली मे अंकित,
पूनो से प्रतिपत् बन आओ !

'स्वर्णकिरण' के 'स्वर्णोदय' का प्रभविष्णु शिशु ही इस 'स्वप्न-गीत' मे शरीर धारण कर रहा है। वह गान्धी-युग की उदीयमान प्रजा है—

आओ तुम देखोगे गान्धी,
जिनसे हमे मिली आज़ादी,
स्यात् तुम्हे पहनावे खादी,
आओ अब न अधिक बिलमाओ !

गान्धी का निर्वाण हो चुका है। अब अजन्मा शिशु गान्धी को तो नही देख पायेगा, किन्तु उनके पदचिह्नो पर चल कर नवीन भारत का प्रतिनिधि हो सकेगा। 'श्रद्धा के फूल' मे कवि ने शुभकामना की है—

बापू की चेतना बने पिक का नव कूजन,
बापू की चेतना वसन्त बखेरे नूतन!

'स्वप्न-गीत' का शिशु कवि के इसी स्वप्न को सफल करेगा, उससे गान्धी-आत्मा को युग का तारुण्य मिलेगा।

त्रिवेणी

'युगपथ' का पथ-निर्देश 'युगान्तर' की 'त्रिवेणी' शीर्षक कविता मे है। यह एक छोटा-सा गीतनाट्य (सगीत-रूपक) है, विद्यालयो के वार्षिकोत्सवो मे खेलने के योग्य है। इसमे पन्त ने लोकवार्त्ता की स्वाभाविक शैली ली है, यथा—'गगा जी गम्भीर गिरा कहती यह सुन कर ।' —गगा के साथ 'जी' के आभिजात्य मे पन्त का कवि-हृदय किसी आस्तिक गृहस्थ का श्रद्धालु हृदय पा गया है।

'त्रिवेणी' के रूपक मे कवि ने अपने युग-सम्बन्धी गम्भीर विचारो को गगा, यमुना और सरस्वती के लोक-सुलभ माध्यम से सुगमतापूर्वक व्यक्त कर दिया है । गगा है देवी, यमुना है मानवी, सरस्वती है देवोत्तर और लोकोत्तर चेतना। जटाशकरी गगा शिवत्त्व का प्रतिनिधित्त्व करती है, श्याममुखी यमुना सुन्दरम् का, अन्तर्मुखी अदृश्य सरस्वती सत्यम् का। सत्यम् में शिवम्-सुन्दरम् का समावेश है।

यमुना अतृप्त यौवना है। उसमे जीवन की उद्दाम आकाक्षा का आवेग है। ब्रज-युग की यमुना वर्त्तमान युग की प्रगतिशील विचारधारा है। सस्कृति की गगा उसके प्रति सवेदनशील है, वह उसे सान्त्वना देती है—

सखि, धीर धरो, तुम शान्त करो अपना मन,
तुमसे मिल कर परिपूर्ण हुआ भू जीवन!

गगा यमुना को अपना लेना चाहती है, कहती है—

गगा-यमुनी जीवन-धारा
नित बहे अबाध चिरन्तन,
सयुक्त हृदय, सयुक्त कर्म्म हो
जन-मगल के साधन!

'युगवाणी' मे पन्त जी ने दर्शन-विज्ञान के जिस समन्वय का सकेत किया है उसे ही वे जीवन की गगा-यमुनी धारा मे सयोजित देखना चाहते है ।

गगा-यमुना का सम्मिलन भीतर (अभ्यन्तर) से ही हो सकता है। इसीलिए सरस्वती यमुना को परामर्श देती है—

भीतर देखो, भीतर है मति,
बाहर गति, अन्धी गति है,
तुम शान्त धीर गगा मे मिल
गति को गम्भीर बनाओ!

यमुना के सामने गगा तो साकार है, किन्तु सरस्वती रहस्य-वाणी (अन्तर्वाणी) की तरह निराकार है। यमुना क्षुब्ध होकर कहती है—

तुम छाया हो अथवा माया?
मै तुमको समझ न पाती!
तुम सच कहती, क्या तुम बहती?
क्यो प्रकट नही हो जाती?

यमुना यह जानना चाहती है कि सरस्वती केवल अनुभूति है या उसमे प्रगति (बहाव) भी है?

सरस्वती है रहस्यवाद की अन्तश्चेतना। काव्य मे रहस्यवाद की प्रतिष्ठापना तो लोकजीवन ने ही कर दी है। जिस रहस्यमयी चेतना को जनता अपनी सहज श्रद्धा से ग्रहण कर लेती है वह प्रगतिवाद (प्रत्यक्षवाद) के लिए स्वभावत दुर्बोध है। यमुना के विक्षोभ मे मानो रहस्यवाद के प्रति प्रगतिवाद का असन्तोष है।

सरस्वती रूपसी यमुना से तर्क नही करती, उसे गगा की गम्भीर गरिमा से ही प्रभावित करती है, क्योकि सस्कृति मे प्रगति के मिल जाने से वह स्वय सरस्वती की सज्ञा गगा मे पा जायगी।

गगा के प्रभाव से यमुना, सरस्वती के प्रति श्रद्धालु हो जाती है। दोनो उसे 'फेन-हार' पहना कर जीवन का मगल गान गाती है—

भू-मगल हो, भव मगल हो।
जीवन-शोभा से उर्वर जग,
प्रीति-द्रवित जन अन्तस्तल हो।
जन-मगल हो, जग-मगल हो।

• ••

सकल स्रोत मिल एक धार हो,
लोक-समागम आर-पार हो,
ज्ञान शक्ति सञ्चय अपार हो,
युग का युद्ध-अनल शीतल हो।

काशी,
१८।४।५१

लोकायतन

'ग्राम्या' की रचना के बाद सन्' ४२ मे पन्त जी एक सामाजिक अथवा सास्कृतिक रचना का सक्रिय श्रीगणेश करने जा रहे थे, 'लोकायतन' द्वारा। उस समय उन्होंने जो निर्देश-पत्रिका प्रकाशित की थी उसमे लिखा था—

"लोकायतन के नाम से हम एक ऐसा केन्द्र स्थापित करना चाहते है जहाँ लोक-सस्कृति के विकास के लिए हम प्रारम्भिक प्रयोग कर सके।

अपने उद्देश्यो की पूर्त्ति के लिए लोकायतन प्रारम्भ मे चार विभाग खोलेगा—(१) ज्योति-द्वार, (२) सस्कृति-द्वार, (३) जीवन-द्वार, (४) कला-द्वार।"

पन्त जी लोक-जीवन के जिस स्वस्थ निर्म्माण को अपनी रचनाओ मे एक सास्कृतिक स्वप्न के रूप मे रचते आ रहे थे उसे ही वे 'लोकायतन' द्वारा साकार करना चाहते थे। वह सन्' ४२ के आन्दोलन और दूसरे महायुद्ध का आग्नेय युग था। पन्त जी का स्वप्न अपने अनुकूल वातावरण नही पा सका। 'गुञ्जन' के 'नौका-विहार' मे कवि ने लिखा है—

"माँ के उर पर शिशु-सा, समीप, सोया धारा मे एक द्वीप,
उर्म्मिल प्रवाह को कर प्रतीप"

—इसी तरह 'लोकायतन' भी युग-प्रवाह को 'प्रतीप' कर पन्त जी के हृदय मे सोया रह गया।

'उत्तरा' की प्रस्तावना मे, उन दिनो की स्मृति मे पन्त जी लिखते है—"'ग्राम्या सन्' ४० मे प्रकाशित हुई थी। उसके बाद का काल, विशेषकर सन्' ४२ के आन्दोलन का समय, जब कि द्वितीय विश्व-युद्ध का चक्र चल रहा था, मेरी मन स्थिति के लिए अत्यन्त ऊहापोह का युग था।

मेरी कई पिछली मान्यताएँ भीतर ही भीतर ध्वस्त हो चुकी थी और नवीन प्रेरणाएँ उदय हो रही थी, 'ग्राम्या' की 'सास्कृतिक मन' आदि कुछ रचनाओ तथा सन्'४२ के उत्तरार्द्ध मे प्रकाशित मेरी 'लोकायन' की योजना मे उन मानसिक हलचलो का थोडा-बहुत आभास मिलता है।"

'लोकायतन' का स्वप्न लेकर पन्त जी अलमोडा चले गये और वहाँ उदयशकर की सस्था से सम्बद्ध हो गये। जीवन मे शायद पहिली बार वे 'गुन्जन' के विहगकुमार की भाँति अपने काव्य-जगत के एकान्त से निकल कर समुदाय के सम्पर्क मे आये। उदयशकर की मण्डली के साथ-साथ उन्होने भारत-भ्रमण किया। अपने ही स-र-ग-म मे गाने वाले कवि के मनस्तन्तुओ पर बाहय जगत का असन्तुलित दबावपड जाने के कारण उसकी जीवन-वीणा अस्तव्यस्त हो गयी। पन्त जी अत्यन्त रुग्ण हो गये। दिल्ली मे स्वास्थ्य-लाभ कर उन्होने मद्रास मे कुछ विश्राम लिया। 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' उनके इसी विश्राम-काल की रचनाएँ है। इन कविता-पुस्तको मे लोक-जीवन की रचना के लिए उनका सर्वांगीण दृष्टिकोण तो है ही, साथ ही, उनके नवीन स्वास्थ्य की कृतज्ञता भक्ति अथवा आस्तिकता मे अभिव्यक्त हुई है। 'उत्तरा' के एक गीत की ये पक्तियाँ याद आती है—

जब-जब घिरे जगत-घन मुझ पर
करूँ तुम्हारा चिन्तन,
ढँक जावे जब अन्तर्नभ, मैं
करूँ प्रतीक्षा गोपन।

जो बाहर जीवन-सघर्षण,
जो भीतर कटु पीडा का क्षण,
वह तुममे सन्तुलन ग्रहण कर
बने उन्नयन नूतन।

पन्तजी जब-जब नीरुज होकर साहित्य-क्षत्र मे आये तब-तब अपने स्वास्थ्य का नैवेद्य उन्होने प्रभुचरणो मे अर्पित किया। सन्'२९ की अस्वस्थता के बाद 'गुञ्जन' मे भी उनके कवि-कण्ठ ने अपनी आस्तिक आस्था दी थी।

'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' की रचना के बाद सन्' ४७ के ग्रीष्म मे पन्तजी अपने नये अनुभवो के साथ मद्रास से प्रयाग आ गये। इस बार फिर वे 'लोकायतन' के लिए सचेष्ट हुए। फलत 'लोकायतन' ने वैधानिक रूप धारण किया। उसका नाम बदल कर 'लोकायन' कर दिया गया। हमे तो पूर्व-नाम ही अच्छा जान पडता है, क्योकि 'लोकायतन' के 'त' मे एक शक्ति है। नाम शायद इसलिए बदलना पडा कि बौद्धधर्म्म मे लोकायत अच्छे अर्थ मे नही प्रयुक्त हुआ है। किन्तु शब्दो का नव-सस्कार होता रहता है। अतएव, लोकायत से 'लोकायतन' भिन्न अर्थवाची है, उसमे लोक-सगठन और वसुधैव-कुटुम्बकम् की विशद व्यञ्जना है।

'लोकायतन' के नियम और विधान मे पन्तजी की साहित्यिक सुरुचि है, कलात्मक नवीनता है। यो तो अन्य सस्थाओ की तरह 'लोकायतन' के सञ्चालन के लिए भी कई तरह के सदस्य है किन्तु इसकी विशेषता के द्योतक होगे 'शोभा-सदस्य'। 'लोकायतन' के नियमानुसार, "शोभा सदस्य वे स्वभाव-सस्कृत स्त्री-पुरुष होगे जिनके जीवन और व्यक्तित्त्व से सुरुचि, सौन्दर्य्य और पूर्णता की प्रेरणा मिले। इनका प्रवेश विधायिनी सभा के दो या अधिक सदस्यो के समर्थन से हो सकेगा।"

'युगवाणी' मे कवि ने जीवन और व्यक्तित्त्व के जिन रचनात्मक तत्त्वो को 'सगति, सत्त्व, पूर्णता' कहा है उन्ही का सकेत 'सुरुचि, सौन्दर्य्य और पूर्णता' मे है। 'लोकायतन' के 'शोभा-सदस्य' वे 'स्वभाव-सस्कृत स्त्री-पुरुष' है जिनका प्रादुर्भाव 'ज्योत्स्ना' के तीसरे अक मे हुआ है। शोभा-सदस्य ही 'लोकायतन' के वास्तविक कार्य्यकर्त्ता अथवा सस्कृति के स्वयसेवक हो सकते है।

देश मे सस्थाओ की कमी नही है। किन्तु 'लोकायतन' सस्था नही, अन्त सस्थान है। यह मनुष्य के अन्त करण के जागरण का प्रतिष्ठान है। अपने अभ्यन्तर मे जाग्रत एक व्यक्ति भी अपने आप मे जीवित लोकायतन है। 'स्वर्णकिरण' के इन्द्रधनुष मे कवि ने कहा है—

> बहिर्चेतना जाग्रत जग मे, अन्तर्मानव निद्रित,
> बाह्य परिस्थितियाँ जीवित, अन्तर्जीवन मूर्च्छित, मृत।

'लोकायतन' द्वारा पन्त जी निद्रित अन्तर्मानव को जगाना चाहते है, मूर्च्छित अन्तर्जीवन को चेतना देना चाहते है।

कवि ने बहिर्चेतना अथवा बाह्य परिस्थितियो की उपेक्षा नही की है। इस अकाल और आर्थिक विभीषिका के युग मे जब कि मनुष्य पशुओ का भी ग्रास छीन रहा है, 'युगवाणी' मे पन्त जी ने उसके तन-बदन की भी सुध ली है। कवि ने कहा है—

> "हास, अश्रु, आशाऽकाक्षा
> बन जायँ खाद्य, मधु, पानी।"

किन्तु यदि मनुष्य भीतर से रसग्राही नही बनेगा तो उसका खाद्य-मधु-पानी तामसिक हो जायगा। इसीलिए कवि शरीर के साथ ही मनुष्य की आत्मा का भी पोषण करना चाहता है। 'मानव-आत्मा का खाद्य-प्रेम'

ही उसका सास्कृतिक अनुराग है। सच तो यह है कि इसी अनुराग से मनुष्य अपनी बाहरी समस्याओ को भी सुलझा सकता है।

आज का अकाल क्या आर्थिक कारण से ही फैला हुआ है ? युद्ध, शोषण, अपहरण और वीभत्स रहन-सहन का सम्बन्ध क्या हमारे सास्कृतिक ह्रास से नही है ? ये बाह्य विकार किसी आन्तरिक अव्यवस्था के दुष्परिणाम है। अतएव, जब तक मनुष्य भीतर से सुसन्तुलित नही होगा तब तक बाहर का कोई भी तन्त्र-यन्त्र उसे युग-सकट से उबार नही सकेगा।

आज के सभी राजनीतिक प्रयास मनुष्य के बाह्य उपचारो मे लगे हुए है, जब कि आवश्यकता है उसमें चेतना का अन्त सञ्चार करने की। आज नही तो कल इसी ओर सब को प्रयत्नशील होना पडेगा। पन्त जी अपने एक लेख मे लिखते है—"आने वाली क्रान्ति केवल रोटी की क्रान्ति, समान अधिकारो की क्रान्ति ही न होकर जीवन के प्रति दृष्टिकोण की क्रान्ति, मानसिक मान्यताओ की क्रान्ति तथा सामाजिक एव नैतिक आदर्शों की भी क्रान्ति होगी।" अभिप्राय यह कि आगे चल कर राजनीतिक क्रान्तियाँ सास्कृतिक क्रान्ति मे परिणत हो जायँगी। भविष्य के पथ-प्रदर्शक होगे कवि, कलाकार और दार्शनिक।

'लोकायतन' आने वाले युग का सास्कृतिक आवास है, नये युग का 'सस्कृतिपीठ' है।

'युगवाणी' की भूमिका में पन्त जी ने लिखा है—"मनुष्य-स्वभाव को सस्कृत बनाने के लिए रागात्मिका प्रवृत्ति का विकास होना आवश्यक है।" —'लोकायतन' कला के सरस सहयोग से इसी मूल प्रवृत्ति को उज्जीवित और परिष्कृत करना चाहता है।

मनुष्य के 'मूर्च्छित अन्तर्जीवन' मे उसकी 'रागात्मिका प्रवृत्ति' ही मूर्च्छित है। मनुष्य की धारणा-शक्ति निष्क्रिय हो गयी है, केवल उसकी

इन्द्रियाँ ही हिल-डुल रही है। चारो ओर की गन्दगी और कूडा-कर्कट मे मनुष्य के निश्चेतन मन की विकृतियो का ही ढेर लग गया है।

जिस दिन मनुष्य का रागोदय होगा उसी दिन उस सास्कृतिक युग का भी उदय होगा जिसका आभास कवि ने 'उत्तरा' मे दिया है—

"अरुणोदय नव, लोकोदय नव!
मगल - ध्वनि - हर्षित जन-मन्दिर
गूँज रहा अम्बर मे मधुरव!
स्वर्णोदय नव, लोकोदय नव!"

काशी,
५।४।५१

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पक्ति	मुद्रित	सशोधित
१९	१	फलो	फूलो
४२	९	निर्धोष	निर्घोष
५६	५	असन्दर	असुन्दर
५७	५	-तिनाट्य	गीतिनाट्य
६७	१५	फल-पत्ते	फूल-पत्ते
८१	२२	विता	कविता
८४	३	कैशोय	कैशोर्य्य
१०१	१६	मानव	मानवता
११२	५	चन कर	चुन कर
१४९	१७	अन्तता	अन्तत
१५१	१०	मग्धा यवती।	मुग्धा युवती
१५१	१७	मखर	मुखर
१५१	१८	फलो	फूलो
१५१	१८	मधपान	मधुपान
२०५	९	थथक	थपक
२२९	१	सव	सर्व
२५२	१८	उनम	उनमे
२५३	१३	पद्योन्युख	पद्योन्मुख
२६७	७	स्तरो	स्तरो को

पृष्ठ	पंक्ति	मुद्रित	संशोधित
२७४	७	पूव	पूर्व
२८३	९	आआ	आओ
३२९	२४	उर्च्छूंग्वल	उच्छृंखल
३३६	१	ब्रह्मज्ञा न	ब्रह्मज्ञान
३९८	२३	मुक्ति	मुक्त
३९९	१९	कलि यो	कलियो
४१६	१४	ह	है
४२४	१३	आवद	ऑव द

पृष्ठ	पंक्ति	मुद्रित	संशोधित
१६९	१४	छाया में	मैं छाया में
१७३	१८	प्रभावित	प्रधावित
१७५	८	थोड़े	थोडे समय
१७७	३	म्यान	म्लान
१७८	२	दर्शन	दर्शक
१८०	१४	बाह्य	बाह्य जगत्
१८५	५	छवि	छवि से
१८५	१९	देखते	देखता
१८९	४	अन्स्तल	अन्तस्तल
१८९	४	यह	वह
१९३	६	और	भाव और
१९२	१२	छिपाती	छिपती
१९७	१८	बीच	'वीचि-
२०३	१५	-मुख	-सुख
२११	२३	माता	मात
२१२	२५	अंगों	अङ्गों
२१३	९	देव-	देवी-
२१४	९	सत्य प्रवृत्तियाँ	सत्प्रवृत्तियाँ
२१६	१८	भी	अभी
२४८	२	मानवाद	मानववाद
२५०	१२	तु	तुक
२६१	८	अपेक्षा	उपेक्षा
२९२	२२	अकेवा	अकेला
२९५	१०	मानों	नये मानों
३०६	१	कुञ्ज	कञ्चु
३११	६	अपेक्षा	उपेक्षा

पृष्ठ	पंक्ति	मुद्रित	संशोधित
३१४	९	भू-रेखा	भ्रू-रेखा
३१४	१२	भिरत	भरित
३३०	२२	चल-तरंग	जल-तरंग
३३७	९	भी	की
३४१	१	ठूँठ	ठूँठे
३५१	२३	से	में
३६६	७	मयं	भय
३६७	१२	सह	वह
३७१	१३	प्रतिवाद	प्रगतिवाद
३७२	१७	छू	नही छू
३८५	१५	कार्य	काव्य
३८९	१	तुहन	तुहिन
३८९	२	जाल-सी	ज्वाल-सी
३९३	१६	पुलकित से	पुलकित
४०६	२०	ज्वाला	ज्वाल
४२०	१९	कही	ही
४२८	१३	मे	से
४३६	११	मे	से
४४४	८	हो	ही
४५०	४	बक	बने
४५३	१३	सन् '२४	सन् '४२